महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम द्वितीय वर्ष

(सत्र2014-15 हेतु)

MSW-107

सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक क्रिया

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य
अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शिवसिंह बघेल
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य
अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अमोद गुर्जर
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य
अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर
शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादन मंडल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य
अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर
शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड-1
श्री सुशील कुमार पाण्डेय

खंड-2
डॉ. मिथिलेश कुमार

खंड-3
श्री सुशील कुमार पाण्डेय

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग

श्री विनोद वैद्य
अनुभाग अधिकारी, दू.शि. निदेशालय

सुश्री शिल्पा एवं श्री प्रवेश कुमार
सहायक, दू.शि. निदेशालय

डॉ. महेन्द्र प्रसाद
सहायक संपादक, दू.शि. निदेशालय

डॉ. मेघा आचार्य
प्रूफ रीडर, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा
टंकक, दू.शि. निदेशालय

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	खण्ड - 1 - समुदाय की अवधारणाएं और सामुदायिक विकास	3-60
2	खण्ड - 2 - सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक संगठन	61-118
3	खण्ड - 3 - सामुदायिक विकास के लिए सामाजिक क्रिया	119-172

MSW-107 सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक क्रिया

खंड परिचय

प्रिय विद्यार्थियों,

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम के द्वितीय वर्ष के **प्रश्नपत्र MSW-107 'सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक क्रिया'** में आपका स्वागत है। इस प्रश्नपत्र को तीन खंडों में विभाजित किया गया है।

पहला खंड समुदाय की अवधारणा एवं सामुदायिक विकास पर केंद्रित है। इसमें समुदाय की अवधारणा और सामुदायिक कार्य को समझाया गया है। इस खंड में शहरी समुदाय, ग्रामीण समुदाय और जनजातीय समुदाय पर भी प्रकाश डाला गया है और उनकी जानकारी प्रदान की गयी है। अंत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अर्थ और भारत में उसके क्रियान्वयन को रेखांकित किया गया है।

दूसरा खंड सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक संगठन से संबंधित है। इस खंड में सामुदायिक संगठन क्या है? उसका इतिहास क्या है ? इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। समाज कार्य प्रणाली के रूप में सामुदायिक संगठन और सामुदायिक संगठन के विभिन्न प्रारूपों और दृष्टिकोणों का भी उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त भारत में सामुदायिक संगठन में वर्तमान मुद्दों और सामुदायिक संगठनकर्ता की भूमिका को विस्तार से बताया गया है ।

तीसरे खंड में सामुदायिक विकास के लिए सामाजिक क्रिया पर प्रकाश डाला गया है। सामाजिकक्रिया की अवधारणा, अनुप्रयोग, विभिन्न प्रारूपों, रणनीतियों और कौशलों का उल्लेख किया गया है। समाज कार्य के कार्य करने के तरीके के रूप में सामाजिक क्रिया का वर्णन किया गया है।

खंड 1

समुदाय की अवधारणाएँऔर सामुदायिक विकास

इकाई -1
समुदाय की अवधारणाएँ और सामुदायिक कार्य

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 समुदाय का अर्थ एवं परिभाषा
1.3 समुदाय के आवश्यक तत्व
1.4 समुदाय की विशेषताएँ
1.5 समाजकार्य अभ्यास में सामुदायिक कार्य का स्थान
1.6 सारांश
1.8बोध प्रश्न
1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

1. समुदाय की अवधारणा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. समुदाय की परिभाषा एवं उसके आवश्यक तत्वों को रेखांकित कर सकेंगे।
3. समुदाय की विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. समाजकार्य अभ्यास और सामुदायिक कार्य को स्पष्ट कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना -

समुदाय सामान्य भाषा में प्रचलित शब्द है इसका प्रयोग कई बार जाति विशेष, धर्म विशेष या सम्प्रदाय विशेष के लोगों के लिए किया जाता है। जैसे- जैन समुदाय, ब्राह्मण समुदाय, ईसाई समुदाय, हिन्दू समुदाय, मुस्लिम समुदाय इत्यादि। समाजशास्त्र एवं समाजकार्य में किसी भी गाँव, कस्बे, नगर, महानगर तथा देश को समुदाय माना जाता है क्योंकि इन समूहों के साथ निश्चित भौगोलिक क्षेत्र जुड़ा हुआ है। पटना, नागपुर, वर्धा, कानपुर, इंदौर, भोपाल, उज्जैन, मथुरा, ग्वालियर इत्यादि नगरों के अपने-अपने निश्चित भौगोलिक क्षेत्र है जहाँ व्यक्तियों का एक समूह सामान्यत: स्थाई रूप से निवास करता है।

समुदाय एक क्षेत्रीय अवधारणा है। समुदाय में लोग निवास करते हैं। अपना सम्पूर्ण जीवन यापन करते हैं। वे केवल एक उद्देश्य के लिए नहीं बल्कि जीवन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपनी सभी प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समुदाय में रहते हैं । समुदाय सामान्यः अपने आप में आत्मनिर्भर होता है। अपने सदस्यों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ होता है । व्यक्ति किसी आर्थिक संगठन, राजनीतिक दल, क्लब या अन्य किसी समूह का सदस्य अपने किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनता है किंतु समुदाय में व्यक्ति अपने विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए रहता है। व्यक्ति अपने जीवन के समस्त क्रियाकलाप एवं संपूर्ण गतिविधियाँ, समुदाय में ही करता है। इसीलिए समुदाय को संम्पूर्णता का क्षेत्र कहा जाता है। समुदाय एक ऐसा क्षेत्रीय समूह है जिसे जान-बूझकर नहीं बनाया जाता। एक समुदाय में, समुदाय के लोगों के एक-दूसरे के निकट रहने और सामान्य जीवन में भागीदार होने के कारण, हम की भावना पाई जाती है। प्रत्येक समुदाय की अपनी कुछ परम्पराएँ एवं नियम होते हैं जो लोगों के व्यवहारों को निर्देशित और नियंत्रित करने में योगदान देते हैं।

समुदाय शब्द का प्रयोग हम किसी बस्ती, एक गाँव, एक नगर, अथवा एक राष्ट्र आदि के लिए करते हैं। समुदाय मनुष्योंका एक ऐसा समूह है, जो एक भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है, जिसमें हम की भावना होती हैं तथा जिनका एक सामान्य जीवन होता है। एक समुदाय में निवास करने वाले लोगों में, एकता और सामूहिकता की भावना होती है। वे घनिष्ठता के सूत्र में बंधे होते हैं

1.2 समुदाय का अर्थ एवं परिभाषा –

शाब्दिक दृष्टि से समुदाय के अर्थ पर विचार किया जाए तो हम देखते है कि अंग्रेजी का 'Community' (समुदाय) शब्द लैटिन के दो शब्दों - 'Com' तथा 'munis' से मिलकर बना है। Com का अर्थ 'together' अर्थात 'एक साथ' से और 'munis' का अर्थ 'Serving' अर्थात 'सेवा करने' से है। इन शब्दों के आधार पर समुदाय का तात्पर्य साथ-साथ मिलकर सेवा करने से है। दूसरे शब्दों में कहे तो समुदाय का अर्थ व्यक्तियों के ऐसे समूह से है जो निश्चित भू-भाग पर साथ-साथ रहते है और किसी एक उद्देश्य के लिए नहीं बल्कि सामान्य उद्देश्यों के लिए इनमें रहते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन सामान्यत: इसी में व्यतीत होता है।

परिभाषाएँ -

प्रो. डेविस के अनुसार – *"समुदाय सबसे छोटा ऐसा क्षेत्रीय समूह है जिसमें सामाजिक जीवन के समस्त पहलू आ जाते हैं।"*

इस परिभाषा में समुदाय के तीन तत्वों का उल्लेख किया गया है। (1) व्यक्तियों का समूह (2) निश्चित भौगोलिक क्षेत्र एवं (3) सामाजिक जीवन के समस्त पहलुओं का समावेश।**जार्ज लुण्डबर्ग तथा**

अन्य ने समुदाय को परिभाषित करते हुए लिखा है कि एक मानव जनसंख्या, जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करती है और जो सामान्य एवं परस्पर आश्रित जीवन व्यतीत करती है; समुदाय है।

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार – *"जब किसी छोटे या बड़े समूह के सदस्य साथ-साथ इस प्रकार रहते हैं कि वे किसी विशेष हित में ही भागीदार नहीं होकर सामान्य जीवन की मूलभूत दशाओं या परिस्थितियों में भाग लेते है तो ऐसे समूह को समुदाय कहा जाता है।"*

मैकाइवर तथा पेज ने अन्यत्र इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि "समुदाय सामाजिक जीवन का ऐसा क्षेत्र है जिसमें सामाजिक सम्बद्धता कुछ मात्रा में पाई जाती है।" स्पष्टत: हम कह सकते हैं कि इन विद्वानों ने समुदाय को एक ऐसा क्षेत्रीय समूह माना जो एक सामान्यजीवन जीता है।

ऑगबर्न तथा निमकॉफ के अनुसार- *"एक सीमित क्षेत्र में सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण संगठन को समुदाय कहा जाता है।"*

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समुदाय सामान्य सामाजिक जीवन में भागीदार लोगों का एक ऐसा समूह है जो किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है और जिसमें हम की भावना या सामुदायिक भावना पाई जाती है।

1.3 समुदाय के आवश्यक तत्व -

किसी भी समूह के समुदाय कहलाने अथवा समुदाय के निर्माण के लिए तीन आधारों का होना प्रमुखत: आवश्यक माना जाता है जो इस प्रकार है-

I. व्यक्तियों का समूह
II. भौगोलिक क्षेत्र
III. सामुदायिक भावना

I. ***व्यक्तियों का समूह*** – किसी भी समुदाय के लिए व्यक्तियों का समूह प्रथम आवश्यकता है। व्यक्ति के बिना न तो सामान्य सामाजिक जीवन की कल्पना की जा सकती है और न ही सामुदायिक भावना की। अत: व्यक्तियों का समूह समुदाय निर्माण के लिए प्रथम आधार है।

II. ***भौगोलिक क्षेत्र*** – प्रत्येक समुदाय के लिए एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र का होना आवश्यक होता है। जब तक कोई समूह निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास नहीं करता है, तब तक उसे समुदाय नहीं कहा जा सकता। किसी भी गाँव, नगर या राष्ट्र को इसीलिए समुदाय कहा जाता है कि इनमें से प्रत्येक का अपना-अपना निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है। एक क्षेत्र विशेष में लम्बे समय तक साथ-साथ रहने और जीवन की सामान्य गतिविधियों में भाग लेने से लोगों में अपनत्व की भावना पनपती है। लोग इस समूह को अपना समूह समझते हैं। निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में, एक-दूसरे के निकट रहने के कारण ही लोगों में अन्त:क्रिया बढ़ती है, जो सामाजिक संबंधों के निर्माण की दृष्टि से आवश्यक है।

III. ***सामुदायिक भावना*** – सामुदायिक भावना को हम "हम की भावना" के नाम से भी पुकारते है। समुदाय निर्माण के लिए व्यक्तियों के समूह तथा निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के अलावा सामुदायिक भावना का होना भी अत्यंत आवश्यक होता है। सामुदायिक भावना से तात्पर्य 'हम सब एक है', 'यह समुदाय हमारा है', 'यह अन्य समुदायों से भिन्न है', 'इसके सुख दुःख में हम सभी समान रूप से भागीदार हैं', 'हम सब दृढ़ता के सूत्र में बंधे हुए हैं,आदि से है। सामान्यत: प्रत्येक समुदाय अन्य समुदायों के संदर्भ में एक इकाई के रूप में कार्य करता है। जब तक किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों में सामुदायिक भावना नहीं पनपती, तब तक उसे समुदाय नहीं कहा जा सकता। जब कुछ लोग लंबे समय से इकट्ठे साथ-साथ रहते हैं, साथ-साथ कार्य करते है, एक दूसरे के सुख-दुःख में भाग लेते हैं, सामूहिक हितों के प्रति जागरूक रहते है, और आवश्यकता पड़ने पर बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार रहते है तो उनमें हम की भावना या सामुदायिक भावना का पनपना स्वाभाविक ही है। यदि कोई व्यक्ति किसी बड़े नगर में, एकाएक किसी ऐसे आदमी को देखता है, जो उसके गाँव का रहने वाला है तो उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। वे एक-दूसरे से मिलते हैं, समाचार पूछते है, वहाँ आने का कारण पता करते हैं। ऐसा भी हो सकता है पहले कभी मूल गाँव या नगर में उनमें आपस में कोई बातचीत तक नहीं हुई हो। यह सामुदायिक भावना ही है जो उन्हें यहाँ एक-दूसरे से संपर्क, संचार और अंतर्क्रिया के लिए प्रेरित करती है।

सामुदायिक भावना के अन्तर्गत प्रमुखतः तीन बातें पाई जाती हैं :

1. ***हम की भावना की अभिव्यक्ति*** - हम की भावना व्यक्तियों को एक-दूसरे के सुख-दुःख में साथ देने और मिलकर काम करने को प्रोत्साहित करती है। स्थान या क्षेत्र विशेष के साथ लोगों का विशेष लगाव पाया जाता है। वे अपने समुदाय के लोगों को अपना समझते हैं। उनमें भाई-चारे के सम्बन्ध पाए जाते है। हम सब एक हैं, हमारे सबके हित समान हैं और सब एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं इस प्रकार की बलवती भावना समुदाय के सदस्यों को एकता के सूत्र में बांधे रखती है।

2. ***योगदान या दायित्व निर्वाह की भावना*** – सामुदायिक भावना का एक अन्य तत्व सदस्यों में समुदाय के कार्यों में सम्मिलित होने और योग देने की भावना है। समुदाय से सम्बन्धित अनेक ऐसे सामूहिक कार्य होते हैं जिन्हें पूरे समुदाय के सहयोग के बिना पूर्ण नहीं किया जा सकता है। अत विभिन्न सदस्य अपनी-अपनी प्रस्थितियों के अनुसार भूमिका निभाते हुए समुदाय के कार्यों में योगदान देते हैं, अन्य सदस्यों की सहायता करना अपना दायित्व समझते हैं।

3. ***निर्भरता की भावना*** – सामुदायिक भावना के अन्तर्गत निर्भरता की भावना एक आवश्यक तत्व है। व्यक्ति अपने को एक-दूसरे पर और सम्पूर्ण समुदाय पर निर्भर समझते हैं। उन्हेंअपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्यलोगों के सहयोग पर निर्भर रहना पड़ता है। पारस्परिक रूप से निर्भर रहने की भावना सामुदायिक भावना को बढ़ाने में योग दान देती है।

वर्तमान समय में औद्योगीकरण, श्रम-विभाजन, विशेषीकरण, नगरीकरण, यातायात और संचार के साधनों के विकास, भौगोलिक दूरी में कमी, एक ही विश्व-दृष्टिकोण, जनसंख्या की तीव्र वृद्धि एवं

जनसंख्या में विविधता, व्यक्तिगत स्वार्थ का बढ़ना तथा द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता आदि कारणों से सामुदायिक भावना में कमी आती जा रही है और ऐसा विशेषत: नगरीय समुदायों में देखने को मिलता है।

1.4 समुदाय की विशेषताएँ –

उपर्युक्त तीन आधारों पर समुदाय की कुछ प्रमुख विशेषताएं या लक्षणनिम्नानुसार हैं-

(1) स्वत: विकास – समुदाय का निर्माण कुछ लोगों द्वारा जान-बूझकर या नियोजित प्रयत्नों द्वारा नहीं किया जाता। इसका तो समय बीतने के साथ-साथ स्वत: ही विकास होता है। जब कुछ लोग किसी स्थान विशेष पर रहने लगते हैं तो धीरे-धीरे उनमें हम की भावना पनपती है और वे वहां रहने वाले सभी लोगों के समूह को अपना समूह समझने लगते है। इस प्रकार की भावना के विकसित होने पर वह समूह समुदाय का रूप ग्रहण कर लेता है।

(2) स्थायीपन – इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक समुदाय एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में स्थाई रूप से रहता है। किसी भी अस्थाई समूह जैसे भीड़, श्रोता-समूह या खानाबदोश झुण्ड को समुदाय नहीं माना जाता क्योंकि इनके साथ भौगोलिक क्षेत्र स्थाई रूप से जुड़ा हुआ नहीं होता। समुदाय एक ही स्थान पर स्थाई रूप से बना रहता है जब तक कि भूकम्प, तूफान, बाढ़ या युद्ध के कारण वह पूरी तरह से नष्टन हो जाए। हम स्पष्टत: यह जानते है कि कौन-सा समुदाय किस भौगोलिक क्षेत्र में बसा हुआ है। इसका कारण समुदाय के साथ स्थायित्व के तत्व का जुड़ा होना है।

(3) विशिष्ट नाम – प्रत्येक समुदाय का अपना एक विशिष्ट नाम होता है जो उस समुदाय के लोगों में ‘हम की भावना’ जागृत करने और उसे बनाए रखने में योग देता है। प्रत्येक समुदाय के नाम के साथ एक विशिष्ट इतिहास जुड़ा है जो उसे एक व्यक्तित्व प्रदान करता है। उदाहरण के रूप में, दिल्ली एक ऐसा समुदाय है जिनके नाम के साथ लम्बा इतिहास जुड़ा हुआ है जो उसे विशिष्टता प्रदान करता है।

(4) मूर्तता – समुदाय एक मूर्त समूह है। इसका कारण यह है कि एक निश्चित भूभाग पर बसे मनुष्यों के समूह के रूप में हम इसे देख सकते है। यद्यपि समुदाय से सम्बन्धित विभिन्न नियमों को तो नहीं देखा जा सकता, परन्तु मनुष्यों के रूप में इसे अनुभव अवश्य किया जा सकता है।

(5) व्यापक उद्देश्य - समुदाय का विकास किसी एक या कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिए नहीं होता। यह तो व्यक्तियों के जीवन की विभिन्न गतिविधियों का केन्द्र-स्थल है। इसमें अनेक समूह, समितियां एवं संस्थाएं समाहित होती हैं जो समुदाय के व्यापक लक्ष्यों की पूर्ति में योग दान देती हैं। समुदाय के उद्देश्य इस दृष्टि से भी व्यापक हैं कि यह किसी व्यक्ति विशेष, समूह विशेष या वर्ग विशेष के हित या लक्ष्यों की पूर्ति के लिए कार्य न करके सभी व्यक्तियों एवं समूहों के सभी प्रकार के लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कार्य करता है

(6) सामान्य जीवन – प्रत्येक समुदाय के कुछ सामान्य रीति-रिवाज, परम्पराएं, विश्वास, उत्सव, त्यौहार तथा संस्कार आदि होते हैं जो उस समुदाय के लोगों के जीवन में एकरूपता उत्पन्न करने में योगदान देते हैं। समुदाय में ही व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि

आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। यहीं उसका सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता है। इस दृष्टि से समुदाय सामान्यताओं का एक ऐसा क्षेत्र है जहां व्यक्ति किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि अपना सारा जीवन बिताने के लिए रहता है। इस प्रकार समुदाय में सदस्यों का सम्पूर्ण जीवन सामान्य रूप से व्यतीत होता है।

(7) सामान्य नियम-व्यवस्था - गिन्सबर्ग ने नियमों की सामान्य व्यवस्था को समुदाय की एक महत्वपूर्ण विशेषता माना है। सामान्य नियमों के माध्यम से सदस्यों के व्यवहार को निर्देशित किया जाता है, उन पर नियन्त्रण रखा जाता है। सामान्य नियमों से निर्देशित होने के कारण ही एक समुदाय विशेष के लोगों के व्यवहार में बहुत कुछ समानता देखने को मिलती है। सामान्य नियम-व्यवस्था का प्रभाव छोटे समुदायों जैसे ग्राम समुदाय या जनजातीय समुदाय में विशेषत: पाया जाता है जहां अनौपचारिक साधनों या अलिखित नियमों द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों को निर्देशित और नियन्त्रित किया जाता है।

(8) आत्म निर्भरता – समुदाय को एक आत्मनिर्भर समूह माना गया है जो अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं ही कर लेता है। इसका तात्पर्य यह है कि उसे किसी अन्य समुदाय पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। समुदाय की यह विशेषता आदिम समुदायों, जनजातीय समुदायों या छोटे समुदायों में पाई जा सकती है, आज के बड़े समुदाय में नहीं। आज तो छोटे समुदायों जैसे ग्राम तक को अन्य ग्रामीण समुदायों पर निर्भर रहना पड़ता है। अत: किसी समय आत्मनिर्भरता समुदाय की विशेषता थी, परन्तु अब इसका महत्व कम हो गया है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रत्येक समुदाय को कम या अधिक मात्रा में साधारणत: अन्य समुदायों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह कहा जा सकता है कि आज भौतिक दृष्टि से तो समुदाय आत्मनिर्भर नहीं रहे हैं,परन्तु सामाजिक दृष्टि से आत्म-निर्भर अवश्य हैं क्योंकि सामाजिक जीवन के सभी पहलू समुदाय में आ जाते हैं।

(9) अनिवार्य सदस्यता – प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समुदाय का सदस्य अवश्य होता है। वह किसी-न-किसी क्षेत्र विशेष में अन्य लोगों के निकट रहता है, उसके साथ अंतर्क्रिया करता है। उसे अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी-न-किसी क्षेत्रीय समूह अर्थात् समुदाय में रहना पड़ता है। एक क्षेत्र विशेष में लम्बी अवधि तक अन्य लोगों के साथ रहने से उसमें अपने समुदाय के प्रति एक लगाव या अपनत्व का भाव पैदा हो जाता है। आज के युग में भौगोलिक और सामाजिक गतिशीलता के बढ़ जाने से लोग एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चले जाते है, एक समुदाय को छोड़कर किसी अन्य समुदाय में जाकर रहने लग जाते हैं, परन्तु इतना अवश्य है कि सामान्यत: प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी समुदाय का सदस्य अवश्य होता है।

1.5 समाजकार्य अभ्यास में सामुदायिक कार्य का स्थान

भारत में विभिन्न पहलुओं के अंतर्गत सामुदायिक कार्य का अवलोकन समाज की परम्परागत संस्थाओं द्वारा किया जाता है। सामाजिक संरचना में मौजूद असमानता और अन्याय के कारण बहुत-सी

चिंताएं उत्पन्न होती है कि इनका समाधान कैसे किया जाए? ऐसे मानक और मूल्य जो भारतीय समाज पर अपना नियंत्रण स्थापित करते हैं, सामाजिक कल्याण व स्वयं सहायता के कार्य को करने के लिए बाध्य करते हैं, लेकिन उनके ये कार्य विशिष्ट सामाजिक समूहों तक ही सीमित होते है।

सामुदायिक कार्य के विकास को मध्यस्थता की पद्धति के रूप में दो दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। व्यवसाय के रूप में समाजकार्य के इतिहास के साथ संबंध से और दूसरा जो विविध व्यवसायों और गैर व्यावसायिक नागरिकों द्वारा सामुदायिक मध्यस्थता की पद्धतियों से देखा जा सकता है।

समाजकार्य का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य –

हम समाजकार्य अभ्यास और समाजकार्य व्यवसाय की पद्धतियों को इसके स्थान विशेष के संदर्भ में देखकर समझने का प्रयास करेंगे। हम अमेरिका और ब्रिटेन के संदर्भ में, समाजकार्य व्यवसाय पर प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे।

19वीं शताब्दी में समाजकार्य केवल वैयक्तिक कार्य के रूप में ही नहीं विकसित हुआ बल्कि इसका विस्तार बहुत ही व्यापक परिवेश में हुआ। सेटलमेंट हाउस मूवमेंट तथा दान संगठन समिति एवं दान आंदोलनों ने, समाजकार्य को व्यवसाय के रूप में विकसित करने के लिए संदर्भ का कार्य किया और इन आंदोलनों के विकास के साथ ही सामुदायिक अभ्यास की उत्पत्ति एक अनिवार्य संघटक के रूप में हुई।

यह आंदोलन सामुदायिक विकास और संगठनकारी प्रयासों के लिए, पीड़ितों की दशा को बदलने के लिए प्रमुख प्रयास था। अमेरिका में सेटलमेंट हाउस मूवमेंट और दान संठगन समाजों से ही समाजकार्य की शुरूआत होती है, जिनका प्रमुख उद्देश्य समाज सुधार था।

उदाहरण के तौर पर हम देख सकते है कि अमेरिका में सेटलमेंट हाउस मूवमेंट आरंभ में केवल वंचित एवं उपेक्षित समुदायों की शिक्षा और मनोरंजन संबंधी जरूरतों पर ध्यान देता था, लेकिन बाद में यह अनेक क्रियाकलापों की ओर ध्यान देने लगा। जैसे- यह आवास और कानूनी सलाह भी देने लगा। धीरे-धीरे यह क्लबों तथा अन्य रूपों में युवा लोगों के साथ कार्य करने लगा । जिसे वर्तमान में समूह कार्य कहते हैं।

सामुदायिक कोष (community chest) के विकास के साथ-साथ 1920-30 के दशक में योजना परिषद ने सामाजिक नियोजन और सामुदायिक संगठन अभ्यास की संकल्पना निर्मित करने हेतु मार्ग प्रशस्त किया। संसाधनों के संतुलन, स्वास्थ्य और कल्याणकारी कार्यक्रमों तथा समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति में सुधार करने पर अधिक बल दिया गया। समाज के विशिष्टवर्गों तथा विशेषज्ञों द्वारा आंदोलन का आह्ववान किया गया। यह नागरिकों के महत्व को पहचानते हुए स्थानीय तथा विभिन्न स्तरों पर सहभागी था। सामुदायिक संगठन की प्रक्रियाएँ तकनीकी कौशल और ज्ञान के साथ-साथ सामाजिक मूल्य और लक्ष्य संबंधी दृष्टिकोण भी रखतीथी।

सामुदायिक संगठन का उदय इंग्लैंड में दो दृष्टिकोण से हुआ। पहला दृष्टिकोण यह था कि सामुदायिक कार्यकर्ताओं की भूमिका नैतिकता के उन्मूलन में गिरजाघरों की तरह हो गई थी तथा गिरजाघरों की भूमिका सामुदायिक संगठन एवं कार्य से हटने लगी। सामुदायिक कार्य को धार्मिक विश्वास में कमी के कारण, नैतिक प्रयुत्तर के रूप में 19वीं शताब्दी के मध्य तक देखा जाने लगा। साथ ही दूसरा दृष्टिकोण यह था कि गरीबी के कारण गरीबों की खराब दशा नहीं हैं, बल्कि गरीबी एक परिणाम है।

सामुदायिक संगठन की उत्पत्ति, समाज कार्य की प्रणाली के रूप में, ग्रेट ब्रिटेन में हुई। इसके साथ ही समाजकार्य अभ्यास की विधि या प्रणाली के रूप में वैयक्तिक कार्य के प्रति समाज में बढ़ रहा असंतोष भी दिखाई दे रहा था। अगर इसके कारणों को देखा जाए तो यह निम्न प्रकार का था-

1. वैयक्तिक सेवा कार्य की कमियों के कारण सामुदायिक संगठन विकास हेतु प्रमुख शक्ति प्रतीत हुई।
2. समुदाय में काम करने वाली टीमों में नेतृत्व का प्रभाव तथा साथ ही उनके कार्य से लोगों में विश्वास पैदा करना कि उनके द्वारा किया गया कार्य वैकल्पिक समाधान प्रस्तुत करता था।
3. जैसे-जैसे राजनीतिक परिवर्तन हुआ वैसे वैसे विभिन्न कारणों से राजनीति का विकेंद्रीकरण हुआ और इन्होंने स्थानीय नीतियों को लागू करने का समर्थन किया। साथ ही एक तरफ स्वयं सहायता और स्थानीय उत्तरदायित्व को बढ़ावा मिला। इस स्थानीय उत्तरदायित्व से समाजवाद के पुनःउत्पन्न होने की आशा जगी ,जो सेवाओं के स्थानीय वितरण एवं नियंत्रण पर प्रतिनिधियों और निर्वाचन क्षेत्र के बीच नए संबंधों को फिर से जीवित करना चाहता था।
4. बढ़ते हुए ज्ञान के साथ समाज में स्वैच्छिक क्रिया के विविध रूप और अनौपचारिक देखभाल प्रणालियों के स्वरूप की जानकारी तथा विभिन्न सांविधिक सेवाओं का परस्पर संबंध बना।

सामुदायिक कार्य शब्द 1968 ई. में स्थापित जुलबेन्कियन फाउंडेशन के एक अध्ययन समूह द्वारा ईजाद किया गया था। इस अध्ययन समूह ने यह देखा कि सामुदायिक कार्यकलाप के तीन संबंध होते है-

(1) सामुदायिक विकास, (2) सामुदायिक संगठन और(3) सामाजिक नियोजन।

सामुदायिक कार्य अपनी प्रारंभिक अवस्था में समाज कार्य अभ्यास की परंपरागत प्रणालियों जैसे वैयक्तिक कार्य और समूह कार्य का समर्थक था, परंतु जैसे-जैसे समाज को इसके बारे में जानकारी प्राप्त हुई, घटनाओं एवं समुदाय के साथ समाजकार्य के अभ्यास के दौरान मध्यस्थाओं से संबंधित ज्ञान बढ़ता गया, वैसे-वैसे सामुदायिक कार्य अपने आप एक प्रणाली के रूप में स्थापित हुआ।

मध्यस्थता के उद्देश्य –

सामुदायिक कार्य के उद्देश्य, प्रत्येक समुदाय के मुद्दों के साथ बदल जाते हैं जिन पर अधिक बल दिया जाता है। सामुदायिक संगठन के उद्देश्योंकी विविधता ने समाजों के जटिल चरित्र को प्रदर्शित किया

है। अत: सामुदायिक संगठनों के उद्देश्यों के बारे में कहा जा सकता है कि ये एक समान है परंतु समूहों, संगठनों और आंदोलन के उद्देश्यों में विविधता मालूम पड़ती है। भारतीय समाज सांस्कृतिक भिन्नताओं वाला समाज है और यह उस वास्तविकता को अभिव्यक्त करता है जिसमें विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक आंदोलनों से उत्पन्न होने वाली सांप्रदायिक मध्यस्थताओं के अभ्यास को देखा गया था। उन्होंने सामाजिक यथार्थ में परिवर्तन को तथा वंचित वर्गों के लिए बेहतर जीवन को माना है। समूहों की विविधता विभिन्न भू-सांस्कृतिक स्थितियों के साथ जनसंख्या और आजीविका अपने साथ विविध आवश्यकताएँ प्रस्तुत करती हैं, जो सामान्यतया आर्थिक सुधार के लिए केन्द्रित होती है।

भारत में सामुदायिक प्रयास द्वारा ग्रामीण, शहरी और जनजातीय समुदायों दलितों और शक्तिहीनों की स्थिति को सुधारने की कोशिश की जा रही है तथा इन्हें प्रोत्साहन प्रदान किया जा रहा है। ये प्रयास आरंभिक समय से चले आ रहे हैं, इन प्रयासों में, स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविका और राजनीतिक सशक्तिकरण की दृष्टि से लोगों के जीवन और उनके रहन-सहन को पूरी तरह से शामिल किया जाता रहा है।

सामुदायिक कार्य अभ्यास का मुख्य उद्देश्य उन तरीके को सुधारना है जिसके तहत समाज कल्याण सेवाओं की व्यवस्था की जाती है तथा ये सेवाएं लक्षित समूह को प्रदान की जाती है। सामुदायिक कार्य में सहभागिता और स्व-सहायता के माध्यम से लक्षित समूह को अपनी समस्याओं के समाधान में शामिल किया जाता है।

सामुदायिक कार्य के एक भाग के रूप में सामाजिक क्रिया –

इसमें उद्देश्य को विशेष न मानकर समस्या का समाधान सीधे किया जाता है। परंतु संसाधनों की प्राप्ति हेतु उस जनसंख्या के संगठन पर विशेष बल दिया जाता है जिनके पास ये संसाधन उपलब्ध नहीं थे। सामाजिक क्रिया के माध्यम से सामाजिक संस्थाओं पर दबाव बनाया जा सकता है और प्रतिनिधित्व के नए माध्यमों का विकास किया जा सकता है। उन समूहों की आवाज जो पहले दबी हुई थी उसे निर्णयन प्रक्रिया में अथवा नए राजनीतिक और आर्थिक प्रबंधों के सृजन में सुना जासकता है। इससे संसाधनों का हस्तांतरण वास्तविक रूप में लोगों को हो सकेगा।

सामुदायिक अभ्यासकर्ता के लिए अधिकार देने वाली भूमिका पर बल दिया गया था । इस भूमिका ने व्यावसायिक समाजकार्य की सामान्य संरचना के अंतर्गत सामुदायिक कार्य के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करना संभव बना दिया है।

एक सक्षम व्यक्ति के रूप में समुदाय कार्यकर्ता लोगों की समस्याओं को स्पष्ट करने, उनकी आवश्यकताओं को पहचानने और क्षमता विकसित करने में उनकी सहायता करेगा ताकि उनकी समस्याएँ अधिक प्रभावशाली ढंग से सुलझाई जा सके।

सामुदायिक विकास उपागम -

सामुदायिक विकास का अर्थ वार्ता, जागरूकता उत्पन्न करने, शिक्षा और क्रिया की मौजूदा प्रक्रिया से है जिसका उद्देश्य संबंधित लोगों की सहायता करना है जो समुदाय की व्याख्या अपने ढंग से निर्धारित और विकसित करते हैं। समुदाय को निर्मित करने वाला एकमात्र सही सूत्र न कोई है और न ही इसे विकसित करने के लिए कोई एक मात्र सही तरीका है। सामुदायिक विकास एक अधिक जटिल प्रक्रिया हैं, जो संकटों एवं समस्याओं से भरी पड़ी है जिनके लिए बिल्कुल अलग और सृजनात्मक समाधानों की आवश्यकता पड़ती है। सामुदायिक कार्य के मॉडल तब अधिक मूल्यवान होते हैं, जब वे संरचनाएँ प्रदान करते हैं जिनके अंतर्गत इन समस्याओं और संकटों को समझा जा सकता है और सृजनात्मक समाधान प्राप्त किए जा सकते हैं।

समुदाय कार्यक्रम लोगों के वास्तविक जीवन के अनुभवों, पीड़ाओं और अपेक्षाओं में मौजूद रहना चाहिए तथा यह लोगों द्वारा स्वयं व्यक्त किए जाए। साथ ही साथ इन विषय परक अनुभवों को व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं के विश्लेषण के साथ जोड़ा जाना जरूरी होता है। ये संरचनाएँ लोगों के दमन और हानि का कारण होती हैं। जागरूकता उत्पन्न करने में, सामाजिक कार्यकर्ता और सेवार्थी समूहों के संबंधोंके लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ होते हैं। इसमें सामाजिक कार्यकर्ता स्थिति का विशेषज्ञ नहीं होता बल्कि एक संसाधन के रूप में सेवा की भूमिका में होता है, और उनके प्रति उत्तरदायी होता है। संबंध में यह परिवर्तन, व्यावसायिकों और मानव सेवाओं के उपभोक्ताओं के बीच इनके सशक्तिकरण को सरल बनाता है। वर्तमान समय में प्रभुत्व और उत्पीड़न अथवा दमन की संरचनाएं, बुद्धिमता और प्रभावी वैधीकरण में बदल गई है। दमित समूहों की बुद्धिमत्ताओं को मान्यता नहीं दी जाती है। सामुदायिक विकास का एक अनिवार्य घटक न केवल दमितों की बुद्धिमता को स्वीकार करने और उनकी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को अपने ढंग से परिभाषित करने का अधिकार है बल्कि यह मानव जाति के कल्याण के लिए व्यापक समाज में, उस बुद्धिमता की अभिव्यक्ति को सरल बनाता है। इस प्रकार सामुदायिक विकास में जागरूकता उत्पन्न करने की कार्यनीतियां सम्मिलित होनी चाहिए तथा यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि पीड़ितों की आवाज़ सुनी जाए,स्वीकार की जाए और उसे महत्व दिया जाए।

सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य का अर्थ यह है कि समाज के वंचित लोग तब तक वंचित ही रहेगे जब तक कि उन्हें कार्यात्मक संबंध में देखा जाता रहेगा । कार्यात्मक समुदाय स्थानीय समुदायों की कीमत पर होते हैं। अत: इसे हतोत्साहित किया जाना चाहिए और इसके बजाए भौगोलिक समुदायों का समर्थन किया जाना चाहिए।

निचले स्तर पर साधारण लोगों को प्रमुख स्थान देना, और उनकी आवाज को पहचान देना तथा उनकी सामाजिक स्थिति को बदलने का प्रयास करना इस समुदाय आधारित कार्यनीति में शामिल हैं।

1.6 सारांश –

इस अध्याय में हमने समुदाय की अर्थ एवं परिभाषा और यह समुदाय स्थान विशेष और उद्देश्यों से किस प्रकार बंधे है इसके बारे में जानकारी प्राप्त की। समुदाय के आवश्यक तत्वों, जैसे- व्यक्तियों का समूह, भौगोलिक क्षेत्र, सामुदायिक भावना इत्यादि का भी उल्लेख किया गया है। समुदाय की विभिन्न विशेषताओं जैसे स्वत: विकास, स्थायीपन, विशिष्ट नाम, मूर्तता, व्यापक उद्देश्य सामान्य जीवन, नियम व्यवस्था, आत्म निर्भरता अनिवार्य सदस्यता आदि की भी चर्चा की गयी है। लोग समुदाय में अपनी विभिन्न भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं जो सामाजिक और आर्थिक जीवन में योगदान देते हैं। हमने इस अध्याय में उन विभिन्न विधियों को भी समझने की कोशिश की है जिनमें समुदायों को सामाजिक प्रणालियों, परिस्थितिकीय प्रणालियों और शक्ति और संघर्ष के क्षेत्रों में सामाजिक कार्यकर्ता समझते हैं। हमने ग्रेट-ब्रिटेन और अमेरिका में सामुदायिक अभ्यास के स्वरूप और इसकी उत्पत्ति के बारे में भी जानकारी प्राप्त की। उन समुदायों के स्वरूप का भी अध्ययन किया है जिनकी परंपरागत और आधुनिक विशेषताएँ हैं। जो ब्रिटेन और अमेरिका के समुदाय अभ्यास की अपेक्षा भारत में समुदाय अभ्यास को बिल्कुल अलग बनाती है।

1.7 बोध प्रश्न –

1. समुदाय की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. समुदाय के आवश्यक तत्वों को उल्लेख कीजिए।
3. समुदाय की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
4. अमेरिका और ब्रिटेन में समुदाय कार्य के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए?

1.8 संदर्भ ग्रंथ उपयोगी ग्रंथ-

1. भूषण, बिद्या एवं सचदेवा, डी.आर. (2012) *समाजशास्त्र.* नई दिल्ली: डार्लिंग किंग्सले (इंडिया) प्रा.लि.

2. गुप्ता, एम एल एवं शर्मा, डीडी. (1998) *समाजशास्त्र.* आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

3. सिंह, ए.एन. (2002) *सामुदायिक संगठन पंचकूला* : हरियाणा साहित्य अकादमी.

4. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डीडी.(2004) *भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र.* आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

5. Ogburn & Nimkoff (1957) *A Hand Book of Sociology.* London : Rutledge and Kegan pall Limited.

6. Gillin, john Lewis & Gillin, john Philip(1948). *Cultural Sociology.* NewYork: Macmillan Company.

7. Paul, Handershon & David, Jones &David, Thomas N.(1980) *The Boundaries of Change In Community Work*. London: Allen And Anwin Publication.
8. Rozer, Hadley &Mike cooper & Graham Stacy (1987). *A community Social workers handbook*. London: Tevistock Publication

इकाई -2
ग्रामीण एवं शहरी समुदाय

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 ग्रामीण समुदाय की परिभाषा एवं अर्थ
2.3 ग्रामीण समुदाय की विशेषताएँ
2.4 शहरी समुदाय अर्थ एवं परिभाषा
2.5 शहरी समुदाय की विशेषताएँ
2.6 ग्रामीण एवं शहरी समुदाय का तुलनात्मक अध्ययन
2.7 ग्रामीण और नगरी समुदाय में पारस्पारिक अन्तर्क्रिया
2.8 सारांश
2.9 बोध प्रश्न
2.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ग्रामीण समुदाय के अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताओं की जानकारी प्राप्तकर सकेंगे।
- शहरी समुदाय के अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- ग्रामीण एवं शहरी समुदाय की तुलना कर सकेंगे।
- ग्रामीण एवं शहरी समुदाय कीअन्तर्क्रिया को व्याख्यायित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना –

मनुष्य के रहने के स्थानों को समाज वैज्ञानिकों ने उनकी जनसंख्या, मकानों की बनावट, प्रशासन तथा वैधानिक एवं सरकारी आधार पर कई भागों में विभाजित किया है जिनमें पुरवा, गाँव, कस्बा, नगर, महानगर, प्रदेश या क्षेत्र प्रमुख है। इस अध्याय में हम खास तौर से ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों की अवधारणा का उल्लेख करेंगे। मानव के सामाजिक जीवन के दो पहलू के रूप में गाँव और शहर को देखा जाता है। शहर या नगर समाज से निर्मित एक ऐसा वातावरण है जिसमें सामुदायिक जीवन के उद्देश्यों के लिए प्राकृतिक पर्यावरण के अनेक पहलुओं का संपूर्ण संशोधन किया जाता है। वही गाँवों का प्रकृति सेप्रत्यक्ष और निकट का संपर्क पाया जाता है। जहाँ मनुष्यऔर प्रकृति के बीच अन्तर्क्रिया का रूप अधिक निकट,

प्रत्यक्ष और गहन है तथा जहाँ इन दोनों के बीच अप्रत्यक्ष एवं क्षीण संबंध है वह नगर है। इन दोनों के पर्यावरण में पर्याप्त अंतर है। पर्यावरण संबंधी यहअंतर ही दो भिन्न प्रकार के सामाजिक जीवन को जन्म देता है।

2.2 ग्रामीण समुदाय की अर्थ एवं परिभाषा–

विभिन्न विद्वानों ने गांव या 'ग्रामीण' शब्द की अनेक व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। कुछ व्यक्तियों का मत है कि जहां आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोग रहते हों, उस क्षेत्र को गांव कहा जाय। दूसरी ओर कुछ विद्वानों ने गांव या 'ग्रामीण' शब्द उनके लिए उपयुक्त माना है, जहां कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया गया हो। इसी आधार पर कृषक और ग्रामीण को पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। 'ग्रामीण' की एक व्याख्या 'नगरीय' शब्द के विपरीत की गयी है अर्थात् नगरीय विशेषताओं के विपरीत विशेषताओं वाला क्षेत्र ग्रामीण है।'ग्रामीण' को जनसंख्या के आधार पर भी परिभाषित किया जाता है। प्रत्येक देश में एक निश्चित जनसंख्या वाले क्षेत्र को ग्राम कहा गया है और उससे अधिक जनसंख्या होने पर वह नगर की श्रेणी में आ जाता है। कुछ विद्वानों ने 'ग्रामीण' एवं 'नगरीय' की व्याख्या मनुष्य और उसके प्राकृतिक पर्यावरण के बीच अन्तर्क्रिया के आधार पर की है। ग्रामीण अवस्था में मानव के प्रकृति के साथ निकट और प्रत्यक्ष सम्बन्ध होते है। श्रीवास्तव लिखते हैं 'एक ग्रामीण क्षेत्र वह है जहां लोग किसी प्राथमिक उद्योग में लगे हों, अर्थात् प्रकृति के सहयोग से वस्तुओं का प्रथम बार उत्पादन करते हों।'

बरट्राण्ड ने 'ग्रामीणता' के निर्धारण में दो आधारों (1) कृषि द्वारा आय अथवा जीवन-यापन (2) कम घनत्व वाला जनसंख्या क्षेत्र, को प्रमुख माना है। मैरिल और एल्ड्रिज लिखते हैं, "ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत संस्थाओं और ऐसे व्यक्तियों का संकलन होता है जो छोटे से केन्द्र के चारों ओर संगठित होते हैं तथा सामान्य प्राकृतिक हितों में भाग लेते हैं।" ग्रामीण समुदाय में मानव के सभी हितों की पूर्ति होती है।

सेण्डरसन ग्रामीण समुदाय को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, "एक ग्रामीण समुदाय में स्थानीय क्षेत्र में लोगों की सामाजिक अन्तर्क्रिया और उनकी संस्थाएं सम्मिलित हैं जिसमें वह खेतों के चारों ओर बिखरी झोंपडियों तथा पुरवा या ग्रामों में रहती हैं और जो उनकी सामान्य क्रियाओं का केन्द्र है।"

इसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज के अनुसार, "एकाकी परिवार से बड़ा सम्बन्धित एवं असम्बन्धित लोगों का समूह जो एक बड़े मकान अथवा निवास के अनेक स्थानों पर रहता हो, घनिष्ठ सम्बन्धों में आबद्ध हो तथा कृषि योग्य भूमि पर मूल रूप से संयुक्त रूप में कृषि करता हो ग्राम कहलाता है।"

फेयरचाइल्ड के अनुसार, "ग्रामीण समुदाय पड़ोस की अपेक्षा विस्तृत क्षेत्र है जिसमें आमने-सामने के सम्बन्ध पाए जाते हैं, जिसमें सामूहिक जीवन के लिए अधिकांशत: सामाजिक, शैक्षणिक,

धार्मिक एवं अन्य सेवाओं की आवश्यकता होती है और जिसमें मूल अभिवृत्तियों एवं व्यवहारों के प्रति सामान्य सहमति होती है।"

इस प्रकार ग्राम या ग्रामीण समुदाय वह क्षेत्र है जहां कृषि की प्रधानता, प्रकृति से निकटता, प्राथमिक संबंधों की बहुलता, जनसंख्या की कमी, सामाजिक गतिशीलता का अभाव, दृष्टिकोणों एवं व्यवहारों में सामान्य सहमति आदि विशेषताएं पाई जाती हैं। ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं के अध्ययन से हम इनके बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

2.3 ग्रामीण समुदाय की विशेषताएँ –

ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं को हम ग्रामीण जीवन का अंग कह सकते हैं। इन विशेषताओं के आधार पर ही गावों को पहचान और नगरों को पृथक किया जा सकता है।

हम यहां गांव अथवा ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं का उल्लेख करेंगे–

(1) जीवन-यापन प्रकृति पर निर्भर –

गांव के लोगों का जीवन कृषि, पशुपालन, शिकार, मछली मारने एवं भोजन संग्रह करने आदि क्रियाओं पर निर्भर है। इन सभी कार्यों के लिए व्यक्ति को प्रकृति के प्रत्यक्ष और निकट सम्पर्क में रहना होता है। भूमि, मौसम, जंगल सभी प्रकृति के ही अंग हैं। मौसम के अनुरूप व्यक्ति अपने को ढालता है और कृषि ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय है। नगर का जीवन आधार उद्योग है। इसलिए नगरवासियों का प्रकृति से अप्रत्यक्ष सम्पर्क होता है।

(2) समुदाय का छोटा आकार –

प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता समुदाय के आकार को छोटा बनाती है क्योंकि कृषि कार्य अथवा पशुचारण में जीवन-यापन के लिए प्रति व्यक्ति भूमि की मात्रा अधिक चाहिए अन्यथा सभी लोगों का जीवन-निर्वाह सम्भव नहीं हो पाता। नगर उद्योगों पर आश्रित होते हैं। जहां हजारों आदमी एक ही व्यवसाय अथवा कारखाने में काम करते हैं। उनके लिए अधिक भूमि की आवश्यकता नहीं होती। यहीं कारण है कि शहरों का आकार बढ़ता जाता है।

(3) कम जनसंख्या –

गांव में प्रति वर्ग मील जनसंख्या का अनुपात शहरों की अपेक्षा बहुत कम होता है। ग्रामीण लोगों के पास प्रति व्यक्ति भूमि अधिक होती है क्योंकि इसके बिना कृषि कार्य एवं पशु-चारण सम्भव नहीं है। ग्रामीण लोग जीवन-यापन के विभिन्न स्रोतों के इर्द-गिर्द बिखरे रहते हैं। बीमारी, मकानों की कमी आदि से बचे रहते हैं।

(4) प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध -

ग्रामीण समुदाय का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ग्रामवासी प्रकृति की गोद में ही जन्म लेते और मरते हैं। ग्रामीण लोग शुद्ध हवा, पानी, रोशनी, सर्दी, गर्मी आदि का अनुभव करते हैं। खुला एवं

स्वच्छ वातावरण, शीतल सुगन्धित हवा, पेड़-पौधे, लताएं और पशु-पक्षियों आदि से ग्रामीणों का प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है। वे ऋतुओं एवं प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेते हैं जिसके लिए नगरवासी तरसते हैं।

(5) प्राथमिक सम्बन्धों की प्रधानता –

गांव का आकार छोटा होने से व्यक्ति एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानते है। उनमें निकट, प्रत्यक्ष और घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं। ऐसे सम्बन्धों का आधार परिवार, पड़ोस और नातेदारी है। ग्राम में औपचारिक सम्बन्धों का अभाव होता है। वे कृत्रिमता से दूर होते हैं तथा उनमें परिवारिक सहयोग एवं प्राथमिक नियन्त्रण पाया जाता है।

(6) सरल एवं सादा जीवन –

ग्रामीण लोगों का जीवन सरल और सादा होता है। वे नगर की तड़क-भड़क, चमक-दमक, आडम्बर और बनावटी जीवन से दूर होते हैं। उन लोगों की आय भी इतनी नहीं होती कि वे जरूरत की चीजों के अतिरिक्त फैशन और साज-सज्जा पर खर्च कर सकें। साधारण और पौष्टिक भोजन, शुद्ध हवा और मोटा वस्त्र तथा विनम्र और प्रेमपूर्ण व्यवहार ग्रामीण लोगों की पसन्द है। प्रकृति पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भरता उन्हें सरल, छल रहित और सादगी से जीवन व्यतीत करने को प्रेरित करती है।

(7) सामाजिक गतिशीलता का अभाव –

ग्रामीण समाज अपेक्षाकृत स्थिर समाज होते हैं। उनमें सापेक्ष रूप से गतिशीलता का अभाव होता है। वे परिवर्तन के प्रति उदासीन होते हैं तथा जीवन जैसा चल रहा हैं उसमें कोई हेर-फेर नहीं चाहते। ग्रामीण सामाजिक संस्तरण इतना कठोर और अनमनीय होता है कि उसे बदलना बड़ा कठिन है।जाति-व्यवस्था ही सामाजिक संस्तरण का मुख्य आधार है। जाति की अवहेलना करने का अर्थ है सामूहिक जीवन से पृथक् हो जाना। जातिगत व्यवसाय होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने परम्परागत व्यवसाय में लगा रहता है, उसे त्यागकर अन्य व्यवसाय की ओर गति करने का आकर्षण उनमें नहीं होता। आज विभिन्न कारकों के संयुक्त प्रभाव से उनके जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कुछ गतिशीलता दिखाई पड़ने लगी है।

(8) धर्म, प्रथा और रूि ढयों का महत्व

ग्रामों में सामाजिक नियन्त्रण के साधन अनौपचारिक होते हैं। धर्म, प्रथाएं और रूढ़ियाँ उनके जीवन को नियन्त्रित करती हैं। धर्म ग्रामवासियों के जीवन का केन्द्र है। उनके दैनिक और वार्षिक जीवन की अनेक क्रियाएं धर्म से ही प्रारम्भ होती हैं और धार्मिक विश्वासों एवं क्रियाओं के साथ ही समाप्तहोती हैं। वे ईश्वरीय शक्तियों को आदर, भय और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और उनके सन्मुख नत-मस्तक होते हैं।पाप-पुण्य, स्वर्ग, नरक, धर्म-कर्म, अच्छाई-बुराई की भावनाएं उनके जीवन को प्रभावित करती हैं। उनका जीवन प्रथाओं और रूि ढयों से बंधा होता है। वे उन्हें तोड़ने या उनके स्थान पर नवीन कानूनों की स्थापना की बात नहीं सोचते। हर व्यक्ति इनका पालन करता है चाहे उसे इनके पालन से हानि ही उठानी

पड़े। बाल-विवाह, मृत्यु-भोज, विधवा पुनर्विवाह का अभाव, छुआछूत, दहेज आदि की प्रथाएं हानिकारक होते हुए भी अभी तक इनमें प्रचलित हैं।

(9) सामुदायिक भावना –

ग्राम शहर की अपेक्षा छोटा होता है,अत: वहां के लोगों में अपने गांव के प्रति लगाव और सभी में 'हम' की भावना पाई जाती है। शहरी लोगों में व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रधानता होती है जबकि ग्रामीण लोग सारे गांव की भलाई की बात अधिक सोचते हैं। बाढ़, अकाल महामारी और अन्य संकटकालीन अवसरों पर गांव के सभी लोग सामूहिक रूप से इन संकटों का मुकाबला करते हैं। वे ऐसे अवसरों पर देवताओं के यज्ञ, अनुष्ठान और पूजा करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का अभिमान होता है कि वह किसी एक गांव का सदस्य है।

(10) संयुक्त परिवार–

भारतीय गांवों की सर्वप्रमुख विशेषता है, संयुक्त परिवारों की प्रधानता। यहां पति-पत्नी व बच्चों के परिवार की तुलना में ऐसे परिवार अधिक पाए जाते हैं जिनमें तीन या अधिक पीढ़ियों के सदस्य एक स्थान पर रहते हैं। इनका भोजन, सम्पत्ति और पूजा-पाठ साथ-साथ होता है। ऐसे परिवारों का संचालन परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति द्वारा होता है। वह परिवार के आन्तरिक और बाह्य कार्यों के लिए निर्णय लेता है। परिवार के सभी सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, उसका आदर और सम्मान करते हैं।

(11) कृषि मुख्य व्यवसाय –

भारतीय ग्रामों में निवास करने वाले लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। 70 से 75 प्रतिशत तक लोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि द्वारा ही अपना जीवन-यापन करते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि गांवों में अन्य व्यवसाय नहीं है। चटाई, रस्सी, कपड़ा, मिट्टी के एवं धातु के बर्तन बनाना, वस्त्र बनाना, गुड़ बनाना, आदि अनेक व्यवसायों का प्रचलन गांवों में है।

(12) जाति प्रथा –

जाति प्रथा भारतीय समाज की मुख्य विशेषता है। जाति के आधार पर गांवों में सामाजिक संस्तरण पाया जाता है। जाति एक सामाजिक संस्था और समिति दोनों ही है। जाति की सदस्यता जन्म से निर्धारित होती है। प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है। जाति के सदस्य अपनी ही जाति में विवाह करते हैं, जाति की एक पंचायत होती है जो अपने सदस्यों को नियन्त्रित करती है। जाति अपने सदस्यों के लिए खान-पान से बहिष्कार, दण्ड अथवा जुर्माना जैसा प्रावधान करती है। जाति-व्यवस्था में सर्वोच्च स्थान ब्राह्मणों का है और सबसे नीचा स्थान अस्पृश्य जातियों का। इन दोनों के बीच क्षत्रिय और वैश्य जातियाँ हैं। जातियों के बीच परस्पर भेद-भाव और छुआछूत की भावना पाई जाती है।

(13) जजमानी प्रथा –

जाति प्रथा की एक विशेषता यह है कि प्रत्येक जाति एक निश्चित परम्परागत व्यवसाय करती है। सभी जातियां परस्पर एक-दूसरे की सेवा करती है। ब्राह्मण विवाह, उत्सव एवं त्यौहार के समय दूसरी

जातियों के यहां अनुष्ठान करवाते हैं तो नाई बाल काटने, धोबी कपड़े धोने, ढोली ढोल बजाने, चर्मकार जूते बनाने, जुलाहा कपड़े बनाने का कार्य करतेहैं। जजमानी प्रथा के अन्तर्गत एक जाति दूसरी जाति की सेवा करती है और उसके बदले में सेवा प्राप्त करने वाली जाति भी उसकी सेवा करती है अथवा वस्तुओं में भुगतान प्राप्त करती है। एक किसान परिवार में विवाह होने पर नाई, धोबी, ढोली, चर्मकार, सुनार सभी अपनी-अपनी सेवाएं प्रदान करेंगे। बदले में उन्हें कुछ नकद, कुछ भोजन, वस्त्र और फसल के समय अनाज दिया जाता है। भारतीय जजमानी प्रथा का अध्ययन करने वालों में ऑस्कर लेविस प्रमुख है। जजमानी प्रथा में दो प्रकार की जातियां होती हैं। एक को 'जजमान' और दूसरे की 'कमीन' कहां जाता है। सेवा प्राप्त करने वाली जातियां 'जजमान' है तो सेवा प्रदान करने वाली 'कमीन' किन्तु होता यह है कि जिस परिवार के घर पर विवाह, मृत्यु, जन्म और उत्सव, आदि के अवसर पर अन्य जातियां द्वारा सेवाएं प्रदान की जाती हैं, उस दौरान वह परिवार जजमान कहलायेगा, लेकिन सेवा प्रदान करने वाले परिवार के घर पर भी ऐसे ही अवसरों पर पहले वाले परिवार से सेवा प्राप्त करने पर वह उसका जजमान होगा। उदाहरणार्थ, एक नाई परिवार के घर विवाह होने पर यदि ढोली बजाने जाती है तो नाई जजमान है, किन्तु ढोली के यहां विवाह होने पर नाई बाल काटने जाता है तो ढोली जजमान कहलायेगा। इस प्रकार प्रत्येक परिवार जजमान भी है और सेवाकारी भी।

(14) ग्राम पंचायत –

प्रत्येक गांव में एक गांव पंचायत होती है। इसका मुखिया गांव का मुखिया होता है। ग्राम पंचायत अति प्राचीन काल से भारत में विद्यमान रही है। ग्राम पंचायत का मुख्य कार्य गांव की भूमि का परिवारों में वितरण, सफाई, विकास कार्य और ग्रामीण विवादों का निपटाना है। डॉ. राधाकमल मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'डेमोक्रेसीज ऑफ द ईस्ट' में पंचायत को मूलतः मुण्डा–द्राविड़ संस्था माना है। ब्रिटिश शासन से पूर्व ग्राम समुदाय राजनीतिक दृष्टि से आन्तरिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्र थे। चार्ल्स मेटकाफ ने इन्हें छोटे-छोटे गणराज्य कहा है। यद्यपि गांवों को केन्द्रीय शासक को कर देना होता था, किन्तु वह गांव के आन्तरिक कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं करता था। आन्तरिक कार्यों को निपटाने का भार ग्राम-पंचायतों पर ही था।

(15) जनमत का अधिक महत्व –

ग्रामवासी जनमत का सम्मान करते हैं और उससे डरते हैं। वे जनमत की शक्ति को चुनौती नहीं देते, वरन् उसके सम्मुख झुक जाते हैं। पंच लोग जो कुछ देते हैं उसे वे शिरोधार्य करते हैं। जनमत की अवहेलना करने वाले की निन्दा की जाती है। ऐसे व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा गिर जाती है। कोई भी ग्रामीण इस प्रकार की स्थिति को पसन्द नहीं करता।

(16) स्त्रियों की निम्न स्थिति –

भारतीय ग्रामीण समुदायों में नारी की स्थिति अत्यन्त निम्न है। उन्हें दासी के रूप में समझा जाता है। कन्या भ्रूण हत्या, बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, विधवा पुनर्विवाह का अभाव, आर्थिक दृष्टि से पुरूषों पर

निर्भरता, पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार न होना, विवाह विच्छेद का अभाव आदि ऐसे अनेक कारण हैं जो भारतीय ग्रामीण नारियों की सामाजिक स्थिति को शहरी स्त्रियों की तुलना में निम्न बनाए रखने में योग दान देते हैं।

(17) अशिक्षा –

गांवों की अधिकांश जनसंख्याअशिक्षित है। आजादी के करीब 50 वर्षों के बाद भी हमारी शिक्षा का प्रतिशत 52.21% से ऊंचा नहीं हो पाया है। पुरूषों की तुलना में स्त्रियों में शिक्षा का प्रतिशत तो और भी निम्न है। उच्च तकनीकी शिक्षा का उनमें अभाव है। अज्ञानता और अशिक्षा के कारण उनकी स्थिति बिगड़ी है।

(18) आत्म निर्भरता –

भारतीय गांवों को आत्मनिर्भर इकाई के रूप में पारिभाषित किया गया है। यह आत्मनिर्भरता केवल आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं, वरन् सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से भी थी। जजमानी प्रथा द्वारा जातियां परस्पर एक-दूसरे के आर्थिक हितों की पूर्ति करती थीं। राजनीतिक दृष्टि से ग्राम पंचायत और ग्राम का मुखिया सभी विवादों को निपटाता था। प्रत्येक गांव की अपनी एक संस्कृति और कुछ विशिष्टताएं पाई जाती थीं जिन्हें स्वयं ग्रामवासी और दूसरे ग्राम के लोग जानते थे, किन्तु वर्तमान में यातायात के साधनो के विकास, केन्द्रीय शासन की स्थापना, औद्योगीकरण आदि के कारण गांवों की आत्मनिर्भरता समाप्त हुई है। अब वे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और राजनैतिक व्यवस्था के अंग बन गये हैं। दिनों-दिन अन्योन्याश्रितता बढ़ रही है।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त भारतीय ग्रामीण समुदाय एक सामुदायिक एकता के रूप में विद्यमान रहे हैं। बाढ़, अकाल, क्रान्ति और अन्य संकटों के समय सभी लोग मिलकर उनका मुकाबला करते हैं। गांवों में सामाजिक गतिशीलता का अभाव रहा है। वहां विशेषीकरण नहीं पाया जाता, वरन् हर व्यक्ति छोटा-मोटा सभी प्रकार का कार्य कर लेता है। यहां सीमित आय के कारण गरीबी एवं निम्नजीवन स्तर पाया जाता है।

2.4 शहरी समुदाय अर्थ एवं परिभाषा

बर्गल का कहना है कि, "प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि शहर या नगर क्या है, किन्तु किसी ने भी सन्तोषजनक परिभाषा नहीं दी है।" नगर केवल एक निवास का स्थान ही नहीं वरन् एक विशिष्ट पर्यावरण का सूचक भी है। यह जीवन जीने का एक विशिष्ट ढंग और एक विशिष्ट संस्कृति का सूचक भी है। नगरों की जनसंख्या अधिक होती है, वहां जनघनत्व भी अधिक पाया जाता है। व्यवसायों की बहुलता एवं भिन्नता, औपचारिक व द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता, भोगवाद, भौतिकवाद, कृत्रिमता, जटिलता, व्यस्तता, गतिशीलता आदि नगरीय जीवन की प्रमुख विशेषताएं हैं। नगरों में हमें बेकारी, भिक्षावृत्ति, अपराध, नशाखोरी एवं वेश्यावृत्ति की अधिकता देखने को मिलती है। वहां परिवार, नातेदारी एवं पड़ोस

का अधिक महत्व नहीं होता। वहां व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक द्वैतीयक संगठनों का सदस्य बनता है।

यदि हम शब्द की रचना की दृष्टि से देखें तो 'शहर' या 'नगर' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'सिटी' (City) का हिन्दी अनुवाद है। स्वयं 'सिटी' शब्द लैटिन भाषा के 'सिविटाज' (Civitas) से बना है जिसका तात्पर्य है नागरिकता। अंग्रेजी भाषा का 'Urban' शब्द लैटिन भाषा के 'Urbanus' से बना है जिसका अर्थ है 'शहर'। लैटिन भाषा के 'Urbs' का अर्थ भी 'City' अर्थात् शहर ही है।

नगर की परिभाषा जनसंख्या के आधार पर भी की गई है। अमरीका के जनगणना ब्यूरो ने नगर ऐसे स्थान को माना है जहां की जनसंख्या 25,000 या उससे अधिक हो। फ्रांस में 2,000 तथा मिस्र में 11,000 जनसंख्या वाले क्षेत्र को नगर माना है। विलकाक्स ने ऐसे क्षेत्र को जहां का जनघनत्व 1,000 व्यक्ति प्रति वर्ग मील तथा जेफरसन ने 10,000 प्रति वर्ग मील आबादी वाले क्षेत्र को नगर कहा है।

व्यवसाय के आधार पर भी नगर की परिभाषा की गई है। विलकाक्स के अनुसार, जहां मुख्य व्यवसाय कृषि है, उसे गांव तथा जहां कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय प्रचलित है, उसे शहर (नगर) कहेंगे।

बर्गल लिखते हैं, 'नगर ऐसी संस्था है जहाँ के अधिकतर निवासी कृषि कार्य के अतिरिक्त अन्य उद्योगों में व्यस्त हों।'

कुछ विद्वान ऐसे क्षेत्र को नगर कहते हैं जहां अपरिचितता अधिक हो, अर्थात् जहां लोग एक-दूसरे से परिचित कम हों।

लुईसवर्थ नगर को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक नगर की परिभाषा सामाजिक भिन्नता वाले व्यक्तियों के बड़े, घने बसे हुए एवं स्थाई निवास के रूप में की जा सकती है। यह संस्थात्मक प्रक्रिया, सामाजिक प्रक्रियाओं का मंच और सामूहिक एकता का एक सौन्दर्यात्मक प्रतीक है।

थियोडोरसन के अनुसार, "नगरीय समुदाय एक ऐसा समुदाय है जिसमें उच्चजनघनत्व, गैर-कृषि व्यवसायों की प्रमुखता, जटिल श्रम-विभाजन से उत्पन्न उच्च मात्रा का विशेषीकरण और स्थानीय सरकार की औपचारिक व्यवस्था पाई जाती है। नगरीय समुदायों की विशेषता जनसंख्या की विभिन्नता, अवैयक्तिक एवं द्वितीयक सम्बन्धों का प्रचलन तथा औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण पर निर्भरता आदि हैं।"

इन परिभाषाओं से स्प्ष्ट है कि नगर वह क्षेत्र है जहां जनसंख्या की बहुलता एवं विविधता पाई जाती है। गैर-कृषि व्यवसाय, श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण, द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता एवं औपचारिकता आदि नगरीय केन्द्रों की प्रमुख विशेषताएं हैं।

2.5 शहरी समुदाय की विशेषताएँ

विभिन्न विद्वानों ने शहर अथवा नगरीय समुदाय एवं जीवन की विशेषताओं का उल्लेख किया है इन विशेषताओं को हम इस प्रकार स्फ्ट कर सकते हैं -

(1) जनसंख्या की बहुलता – ग्राम एवं नगर का भेद प्रमुखत जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। शहरों में जनसंख्या एवं जनघनत्व अधिक पाया जाता है। जनसंख्या की अधिकता के आधार पर ही नगरों का विभिन्न श्रेणियों में जैसे नगर एवं महानगर आदि में वर्गीकरण किया जाता है। जनसंख्या की अधिकता ने शहरों में गन्दी बस्तियों, अपराध, प्रशासन, आवास, बेकारी एवं गरीबी आदि से सम्बन्धित अनेक समस्याएं पैदा की हैं।

(2) जनसंख्या की विभिन्नता – नगरों में विभिन्न धर्मों, मतों, सम्प्रदायों,जातियों, वर्गों, प्रजातियों, भाषाओं एवं प्रान्तोंसे सम्बन्धित लोग निवास करते हैं। अत: यहां की जनसंख्या में विभिन्नता पाई जाती है। इस कारण शहरी लोगों के रहन-सहन, प्रथाओं, परम्पराओं, वेश-भूषा एवं जीवन-स्तर आदि में भिन्नताएं देखने को मिलती हैं।

(3) व्यवसायों की बहुलता एवं विभिन्नता – नगर में कार्यों की बहुलता होती है। वहां अनेक प्रकार के व्यवसाय पाए जाते हैं। सिगरेट, माचिस, दवाओं, कपड़ा, चमड़ा, ऊन, मशीन निर्माण, प्लास्टिक, बारूद, सीमेण्ट, लकड़ी, लोहा, ईं ट्रकागज आदि से सम्बन्धित एवं अन्य हजारों प्रकार के व्यवसाय शहरों में देखने को मिलते हैं।

(4) श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण - शहर में कार्य का बंटवारा देखने को मिलता है। यहां व्यक्ति अलग-अलग व्यवसायों में लगे होते हैं। साथ ही एक व्यक्ति किसी एक ही कार्य का विशेषज्ञ होता है। श्रम-विभाजन और विशेषीकरण के कारण पारस्परिक निर्भरता भी पैदा होती है।

(5) द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता – चूंकि नगरों की जनसंख्या अधिक होती है अत: यहां सभी लोगों से प्राथमिक व आमने-सामने के घनिष्ठ सम्बन्ध कायम करना कठिन होता है। नगर के लोगों में औपचारिक एवं द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता पाई जाती है।

(6) कृत्रिमता – नगरीय लोगों का जीवन बनावट एवं आडम्बरयुक्त होता है। वे दिखावे में अधिक विश्वास करते हैं।

(7) गतिशीलता – नगरों में सामाजिक एवं भौगोलिक गतिशीलता अधिक पायी जाती है। शहरी लोग एक स्थान छोड़कर लाभ के लिए अन्य स्थानों पर जाने के लिए तैयार होते हैं। उनमें स्थान के प्रति कम लगाव पाया जाता है।

(8) विभिन्नता – नगर विभिन्नताओं का केन्द्र होता है। धर्म भाषा, संस्कृति, प्रथा, रीति-रिवाज, व्यवसाय, पहनावा, रूचि, हित आदि के आधार पर नगर में अनेक भिन्नताएं पाई जाती है।

(9) व्यक्तिवादिता – नगर में सामूहिक एवं सामुदायिक जीवन की अपेक्षा व्यक्तिवादिता अधिक पाई जाती है। प्रत्येक व्यक्ति समुदाय की अपेक्षा स्वयं की अधिक चिन्ता करता है।

(10) सामाजिक समस्याएं – वर्तमान में नगर अपराध, बाल-अपराध, वेश्यावृत्ति, बेकारी, गन्दी-बस्तियां, पागलपन, निम्न स्वास्थ्य, कु-पोषण, वर्ग-संघर्ष, वायु प्रदूषण एवं बीमारी आदि अनेक समस्याओं के केन्द्रबन गए हैं।

(11) शिक्षा एवं संस्कृति के केन्द्र – नगर में विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाएं, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय तथा प्रशिक्षण संस्थान होने से सभी विषयों की शिक्षा उपलब्ध होती है। कला, संगीत, चिकित्सा, विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी एवं मशीन से सम्बन्धित ज्ञान देने वाली शिक्षण संस्थाएं नगरों में ही पाई जाती हैं। नगर विभिन्न प्रकार की भाषा, साहित्य एवं ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे मानव सभ्यता के विकास की कहानी को प्रकट करते हैं। नगर का पर्यावरण व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सहायक है।

(12) राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्र – नगर राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। नगर में ही सरकार के विभिन्न विभाग एवं कार्यालय होते हैं। वहां पर राज्योंकी राजधानियां, सैनिक छावनियां एवं विभिन्न राजनीतिक दलों के मुख्यालय होते हैं। अत: सरकार एवं राजनीतिक दल भी अपनी नीति एवं भावी कार्यक्रमों का निर्धारण नगरीय महत्व को ध्यान में रखकर करते हैं। अधिकांश राजनीतिक आन्दोलन नगरों से ही प्रारम्भ होते हैं। इस प्रकार नगर लोगों को राजनीतिक प्रशिक्षण एवं जागरूकता प्रदान करते हैं।

(13) सुरक्षा – नगर में पुलिस, गुप्तचर, जेल, न्यायालय, आदि होने के कारण लोगों के जीवन के खतरों, चोरी, हत्या, लूट-पाट आदि से सुरक्षा प्राप्त होती है। आर्थिक संकट में भी रोजगार के विभिन्न अवसर उपलब्ध होने के कारण वहां आर्थिक सुरक्षा एवं मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है। अत: व्यक्ति अपना जीवन रचनात्मक कार्यों में लगा सकता है और जीवन के संकटों के प्रति निश्चिन्त हो सकता है।

(14) स्वास्थ्य एवं मनोरंजन की सुविधा – नगर में विभिन्न प्रकार की चिकित्सा एवं दवाओं की सुविधा उपलब्ध होने से लोगों को रोग की रोकथाम एवं मुक्ति में सहायता मिलती है। नगर में सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, नाट्यशाला, संगीत, नृत्य एवं कला केन्द्रों के कारण लोगों को मनोरंजन की पर्याप्त सुविधाएं उपलब्धहोती हैं जिससे वे दिन भर की थकान से मुक्ति पाकर ताजगी प्राप्त कर सकते हैं। नगर में ही बाग-बगीचे, उद्यान एवं विभिन्न प्रकार के खेलकूद की सुविधाएं उपलब्धहोती हैं जो स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यावश्यक हैं। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव को रोगमुक्त करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है और ये सुविधाएं नगरों में ही उपलब्धहैं।

(15) मानव सभ्यता के पोषक – नगरों में विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएं होने के कारण वहां सभ्यता का विकास होता रहा है। विश्व की उच्च एवं विकसित सभ्यताएं नगरों में ही फली-फूली हैं। नगर ही सभ्यता के निर्माता एवं पोषक रहे हैं। अत: वे मानव-समाज के विकास के प्रतीक हैं। नगरों के विकास की कहानी सभ्यता के विकास की कहानी भी है।

(16) धर्म एवं परिवार का महत्व– शिक्षा के कारण लोग नगरों में कर्म-काण्ड, पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन और अनुष्ठानों में अधिक रूचि नहीं रखते। वे ईश्वर के बजाय अपनी स्वयं की शक्ति में विश्वास करते हैं। परिवार की तुलना में वे व्यक्ति को अधिक महत्व देते हैं।

(17) प्रतिस्पर्द्धा – नगरों में हमें गांवों की अपेक्षा जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में प्रतिस्पर्द्धा दिखायी देती है। हर व्यक्ति जीवन की आगे बढ़ने की होड़ में भागता दिखाई देता है।

(18) आर्थिक विषमता – नगरों में हमें गरीब और अमीर के बीच गहरी खाई दिखाई देगी। एक तरफ ऐसे लोगों की बहुलता है जो भोजन, वस्त्र और मकान की सुविधाएं भी पूरी तरह नहीं जुटा पाते तो दूसरी तरफ बहुत सम्पन्न लखपति व करोड़पति नगरों में ही होते है।

(19) यातायात एवं सन्देश की सुविधाओं की बहुलता भी नगरों में ही पई जाती है।

(20) फैशन के प्रति लगाव नगरों की विशेषता है।। मकान, वस्त्र, केशविन्यास व कला के क्षेत्र में नगरों में कई प्रकार का फैशन देखा जा सकता है।

2.6 ग्रामीण एवं शहरी समुदाय का तुलनात्मक अध्ययन

ग्रामीण और नगरीय सामाजिक जीवन में भेद प्रकट करने के लिए विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अनेक कसौटियां निर्धारित की हैं।विभिन्न कसौटियों के आधार पर हम यहां ग्रामीण एवं नगरीय समुदायों एवं शहरी समुदाय में भेद स्पष्ट करेंगे -

(1) जनसंख्या के आधार पर अंतर –

ग्रामीण एवं नगरीय समुदायों के बीच सबसे बड़ा अंतर जनसंख्या का है। गांवों की अपेक्षा नगरों में अधिक जनसंख्या पाई जाती है। यही कारण है कि गांवों का आकार छोटा व नगरों का बड़ा होता है। चूंकि नगरों में शिक्षा, व्यापार, व्यवसाय, बैंक, यातायात, मनोरंजन एवं सुरक्षा आदि कीसुविधाएं होती हैं, अत: गांवों से लोग नगरों की ओर गमन करते है और नगरों की जनसंख्या बढ़ती जाती है।

(2) *सामाजिक संगठन में अंतर* –

ग्रामीण एवं नगरीय समुदायों की सामाजिक संगठन की प्रकृति एवं आधारों में भेद पाया जाता है

(अ) परिवार – परिवार सामाजिक संगठन की एक महत्वपूर्ण इकाई है। गांवों में परिवार अधिकांशत संयुक्त होते हैं जिनमें मुखिया की सत्ता परिवार में सर्वोपरि एवं महत्वपूर्ण होती है। परिवार ही व्यक्ति की सामाजिक स्थिति निर्धारित करता है, वही व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, मनोरंजनात्मक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं शैक्षणिक क्रियाओं का केन्द्रहोता है। गांवों में व्यक्ति पर परिवार के सदस्यों का प्रभाव एवं नियन्त्रण अधिक होता है।

दूसरी ओर नगरों में व्यक्तिवाद की प्रबलता के कारण एकाकी परिवार की बहुलता पई जाती है। परिवारिक दबाव एवं नियन्त्रण की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अधिक पाई जाती है। यहां अपने जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण निर्णय व्यक्ति स्वयं ही लेता है। यहां पति-पत्नी एवं परिवार के अन्य सदस्यों

के पारस्परिक सम्बन्धों में भी अधिक घनिष्ठता नहीं होती, त्याग के स्थान पर व्यक्तिगत हितों को अधिक महत्व दिया जाता है। गांवो की अपेक्षा नगरों में वंश का महत्वभी कम होता है।

(ब) विवाह – गांवों में विवाह दो परिवारों को जोड़ने वाली कड़ी होता है। विवाह के निर्धारण में परिवार के सदस्यों एवं रिश्तेदारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गांवमें अधिकांशत: व्यक्ति अपनी ही जाति में विवाह करता है। इसके विपरीत, नगरों में विवाह दो व्यक्तियों का मामला समझा जाता है और विवाह तय करने में लड़के व लड़की की इच्छा को अधिक महत्व दिया जाता है। नगरों में प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, तलाक तथा विधवा पुनर्विवाह की संख्या गांवों की अपेक्षा अधिक है।

(स) स्त्रियों की स्थिति – गांवो में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति निम्न होती है, वे पर्दा प्रथा का पालन करती हैं तथा उनकी दुनिया घर की चार दीवारी तक ही सीमित होती है। स्त्री-शिक्षा का गांवों में अभाव पाया जाता है। दूसरी ओर नगरों में स्त्रियाँ अधिक शिक्षित एवं स्वतन्त्र होती हैं। स्वयं आय अर्जन करने के कारण वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होती हैं। अत: अपने जीवन के अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लेने में वे समर्थ होती हैं। नगरों की स्त्रियां गांवोंकी स्त्रियों की तुलना में कम अन्धविश्वासी होती है।

(द) पड़ोस – गांवों में पड़ोस का अधिक महत्व होता है। आपत्ति के समय पड़ोसी एक-दूसरे की सहायता करते हैं। नगरों में पड़ोस अधिक महत्वपूर्ण नहीं होता यहां तक कि कई पड़ोसी तो एक-दूसरे को जानते तक नहीं, नगरों में पड़ोसी के सम्बन्ध आत्मीय एवं घनिष्ठ न होकर औपचारिक होते है।

(य) सामाजिक स्तरीकरण – गांवों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार जाति है। यहां अधिकांश लोग कृषि करते हैं। अत: स्तरीकरण का एक आधार कृषि-व्यवस्था भी है जिसमें एक तरफ किसान और दूसरी तरफ जमींदार होते हैं। शहरों में जाति अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। वहां वर्ग-व्यवस्था के आधार पर स्तरीकरण पाया जाता है। एक तरफ श्रमिक एवं मजदूर वर्ग है तो दूसरी तरफ पूंजीपति वर्ग। नगरों में विषमता अधिक है। बोगार्डस कहते हैं कि, “अत्यधिक वर्ग-विषमता नगर का लक्षण हैं।” ग्रामों में नगरों की भांति वर्ग-विषमता नहीं हैं, अत: वहां आए दिन मालिक और मजदूर के बीच संघर्ष नहीं होते।

(3) सामाजिक नियन्त्रण में अंतर – ग्रामीण एवं नगरीय समुदायों में सामाजिक नियन्त्रण के साधनों के प्रकारों एवं प्रकृति में भी अंतर पाया जाता है। गांवों में सामाजिक नियन्त्रण बनाये रखने में अनौपचारिक साधनों जैसे परिवार, जाति, पंचायत, पड़ोस, प्रथा, धर्म, नैतिकता एवं जनमत आदि की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्तिगत एवं आमने-सामने के सम्पर्क के कारण वहां हर व्यक्ति और रूढि ढया अधिकतर व्यवहार को नियन्त्रित करती हैं। नगर में नियन्त्रण् बनये रखने के लिए औपचारिक साधनों जैसे पुलिस, जेल, कानून, न्यायालय गुप्तचर विभाग, सरकार, संविधान एवं द्वितीयक समूहों आदि का सहारा लिया जाता है। नगर अपरिचित हैं, वह (नगरवासी) जब भी यह चाहे अपरिचितों के सागर में विलीन होकर किसी प्राथमिक समूह के कठोर नियन्त्रण से बच सकता है।

(4) सामाजिक सम्बन्धों में अंतर –

गांवों में जनसंख्या की कमी के कारण सभी लोग परस्पर एक-दूसरे को जानते हैं। उनमें प्रत्यक्ष, प्राथमिक, अनौपचारिक एवं वैयक्तिक सम्बन्ध पाए जाते हैं। वहां व्यक्ति को महत्व दिया जाता है। नगरों में स्थिति विपरीत हैं। गिस्ट और हेलबर्ट लिखते हैं, 'नगर वैयक्तिक सम्बन्धों की अपेक्षा अवैयक्तिक सम्बन्धों को अधिक प्रोत्साहन देता है।' नगरों में जनसंख्या की बहुलता के कारण व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव पाया जाता है, वहां व्यक्ति को महत्व नहीं दिया जाता। नगरीय जीवन यन्त्रवत् चलता है। अत: वहां अप्रत्यक्ष, औपचारिक, अवैयक्तिक एंव द्वितीयक सम्बन्ध पाए जाते हैं। गांवों में सम्बन्ध सरल एवं सच्चे होते हैं, किन्तु नगरों में बनावटी एवं ऊपरी; गांवों में व्यक्ति का सम्बन्ध अधिकतर प्राथमिक समूहों, जैसे परिवार, पड़ोस, मित्र-मण्डली एवं नातेदारी समूहों से होता है जबकि नगरों में प्रमुखत: द्वितीयक समूहों से। गांवों में व्यक्ति अपनी आवश्कयताओं की पूर्ति के लिए प्राथमिक समूहों पर निर्भर होता है जबकि नगरों में उसे अनेक द्वितीयक समूहों एवं समितियों का सहारा लेना होता है।

(5) सामाजिक अन्तर्क्रिया में अंतर -

गांवों एवं नगरों में सामाजिक अन्तर्क्रिया के आधार पर भी भेद पाया जाता हैं। गांवों में प्राथमिक एंव प्रत्यक्ष सहयोग अधिक पाया जाता है। नगरों में श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण् के कारण द्वितीयक एवं अप्रत्यक्ष सहयोग पाया जाता है। गांवों में प्रतिस्पर्द्धा बहुत कम अथवा नहीं पाई जाती है क्योंकि वहां व्यक्ति का समाज में स्थान निर्धारण परिवार, जाति एवं वंश के आधार पर होता है। नगर में धन एवं काम का अधिक महत्व होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्थिति को ऊंचा उठाने के लिए प्रतिस्पर्द्धा करता है। गांवों में प्रत्यक्ष संघर्ष पाया जाता है और लोग शीघ्र ही मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं। वहां भूमि, स्त्री व सम्पत्ति को लेकर संघर्ष अधिक होते हैं। कभी-कभी परिवार, जाति व ग्रामों में भी परस्पर संघर्ष देखने को मिलता है। नगरों में अप्रत्यक्ष संघर्ष अधिक पाया जाता है। अत: वहां मानसिक संघर्ष एवं शीत युद्ध की स्थिति अधिक देखने की मिलती है। गांवों की अपेक्षा नगरों में सहिष्णुता अधिक होती है। अत: वहां विभिन्न व्यक्तियों एवं समूहों के बीच सामंजस्यअधिक पाया जाता है। ग्रामीण लोग रूढ़िवादी एवं परम्परावादी होते हैं। अत: वे नए कानून एवं परिवर्तन को शीघ्र स्वीकार नहीं करते हैं। नगरों में नए कानून एवं आविष्कार स्वीकार कर लिए जाते हैं। ग्रामों की अपेक्षा नगरों में आत्मसात् की प्रक्रिया तीव्र होती है। वहां विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के बीच आदान-प्रदान एवं व्यवस्थापन की प्रक्रिया अधिक चलती है।

(6) सामाजिक दृष्टिकोण में अंतर -

गांवों की तुलना में नगरों में सामाजिक विघटन अधिक पाया जाता है। गांव के लोग भाग्यवादी अधिक होते हैं। वे प्रकृति तथा ईश्वर में विश्वास करते हैं। नगरवासी अपने श्रम को अधिक महत्व देते हैं। जहां नगरवासी धर्म के स्थान पर बुद्धि एवं तर्क को अधिक महत्व देते हैं वहां ग्रामवासी धर्म को। गांव कृत्रिमता से दूर और आडम्बर की भरमार है। बोगार्डस लिखते है, 'गांव के लोग स्पष्ट बोलने वाले निष्कपट और सत्यनिष्ठ होते हैं। वे नागरिक जीवन के बहुत से पक्षों की कृत्रिमता से घृणा करते हैं।' नगरों में गांवों की अपेक्षा राजनीति में अधिक रूचि पाई जाती है। गांव यथास्थितिवादी होते हैं, तो नगर

प्रगतिशील। न्यूमेयर कहते हैं कि "ग्रामीण संस्कृति रूढ़िवादिता की ओर झुकी रहती है।" रॉस का मत है कि 'नगर जगत मित्र होता है, जबकि गांव राष्ट्रवादी और स्वदेशाभिमानी होता है।'

(7) सामाजिक गतिशीलता और स्थायित्व में अंतर –

ग्रामीण जीवन स्थायित्व का प्रतीक है तो नगरीय जीवन गतिशीलता का। सोरोकिन और जिमरमैन लिखते हैं, 'ग्रामीण समुदाय एक घड़े में शान्त जल के समान है और नगरीय समुदाय केतली में उबलते पानी के समान.... स्थायित्व एक का विशेष लक्षण है, गतिशीलता दूसरे का गुण है।' नगरवासी साहसी होते हैं और किसी भी प्रकार का जोखिम उठाने को तैयार होते हैं। अत: वे नवीनता, विकास एवं प्रगति के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन करते हैं, जबकि गांव के लोग स्थान त्यागना नहीं चाहते। बाढ़, भूकम्प, महामारी और प्राकृतिक विपदाओं के आने पर ही वे अपना स्थान छोड़ने को तैयार होते हैं।

(8) आर्थिक जीवन में अंतर -

नगरीय एवं ग्रामीण आर्थिक जीवन में भी बहुत अंतर है। सिम्स लिखते हैं, जीविकोपार्जन की दो मौलिक रूप से भिन्न रीतियों ने ग्रामीण और नगरीय संसार को अलग कर दिया है। गांव मुख्यरूप से कृषि पर निर्भर हैं तो नगर व्यवसायों पर। गांववासियों का जीवन-स्तर नगरवासियों की तुलना में निम्न होता है। नगर के लोग गांव वालों की अपेक्षा अधिक खर्चीले होते हैं। रॉस ने सही कहा कि, 'ग्रामीण जीवन सुझाव देता है 'बचाओ', नागरिक जीवन सुझाता है 'खर्च करो'।' नगर में ग्राम की अपेक्षा खर्च के अवसर भी अधिक हैं। आराम और विलासिता पर नगर वाले अधिक खर्च करते हैं तो ग्राम वालों की खर्च की सीमा आवश्यकताओं तक ही होती है। गांव की अपेक्षा नगरों में श्रमविभाजन एवं विशेषीकरण अधिक पाया जाता है।

(9) सांस्कृतिक जीवन में अंतर -

गांवों में सांस्कृतिक स्थिरता पाई जाती है, जबकि नगर की संस्कृति परिवर्तनशील है। नजमुल करीम भारतीय गांवों के बारे में लिखते हैं, "एक राजवंश के बाद दूसरा राजवंश खत्महोता गया, क्रान्ति के बाद क्रान्ति होती गयी... परन्तु ग्रामीण समुदाय वैसे के वैसे ही हैं।" सांस्कृतिक परिवर्तनशीलता प्रगति की परिचायक हैं। ग्रामीण संस्कृति में परम्परा का अधिक महत्व है, जबकि नगरों में नवीनता एंव फैशन की अधिक महत्व दिया जाता है।

(10) सामाजिक विघटन में अंतर -

गांवों में वैयक्तिक विघटन कम है , जबकि नगरों में व्यक्ति मानसिक संघर्ष और निराशा से पीड़ित हैं। नगर में आए दिन आत्महत्याएं, हत्याएं चोरी, डकैती, बलात्कार, विवाह-विच्छेद, पृथक्करण आदि घटनाएं होती रहती हैं। ग्रामीण समाज में अपराध और बाल-अपराध नगरों की तुलना में कम ही पाए जाते हैं।

(11) मनौवैज्ञानिक अंतर – ग्रामीण लोग सामुदायिक भावना को अधिक महत्व देते हैं। उनमें सहनशीलता एवं प्रेम अधिक पाया जाता है। नगर के लोगों में व्यक्तिवादी भावना प्रबल होती है। वे सामूहिकता के स्थान पर व्यक्तिगत हितों को अधिक महत्व देते हैं।

(12) अन्य अंतर –

इनके अतिरिक्त ग्रामीण एवं नगरीय समुदायों में कुछ अन्यअंतर इस प्रकार हैं:

I. गांव की अपेक्षा नगरों में फैशन का प्रचलन अधिक पाया जाता है।
II. गांवों में धर्म की प्रधानता होती है नगरों में कर्म की।
III. गांवों की अपेक्षा नगरों में तर्क एवं विज्ञान में अधिक विश्वास किया जाता है।
IV. गांवों में निरक्षरता अधिक है तो नगरों में साक्षरता।
V. गांवों की अपेक्षा नगरों में राजनीतिक चेतना अधिक पाई जाती है।

ग्रामीण एवं नगरीय समुदाय में इन विभिन्नताओं को देखकर ही कुछ विद्वान यह प्रश्नकरते हैं कि क्या गांव और नगर एक-दूसरे से बिल्कुल पृथक् समुदाय हैं? किन्तु वास्तविकता यह है कि इनमें भेद मात्रा का है। ऐसा नहीं हो सकता है कि जो विशेषताएं गांवों में पाई जाती हैं, वे नगरों में नहीं होगी। दोनों ही समुदाय परस्पर निकट आ रहे हैं और एक की विशेषता को दूसरा अपना रहा है। इस सन्दर्भ में मैकाइवर एवं पेज उचित ही लिखते हैं, 'गांव एवं नगर दोनों ही समान हैं, इनमें से न तो कोई दूसरे से अधिक प्राकृतिक है और न ही कृत्रिम।'

2.7 ग्रामीण और नगरी समुदाय में पारस्पारिक अन्तर्क्रिया

गांव एवं नगर के बीच उपर्युक्त अंतरों के होने के बाबजूद भी ये दोनों जीवन एक-दूसरे से पूर्णत पृथक् नहीं हैं। इन दोनों में परस्पर आदान-प्रदान और अन्तर्क्रिया होती रहती है जिसके परिणामस्वरूप दोनों का ही जीवन परिवर्तित होता रहता है। ग्राम एवं नगर के पारस्परिक प्रभाव ने ग्रामीणीकरण, नगरीकरण, ग्राम्य–नगरीकरण, ग्राम-नगरीय नैरन्तर्य आदि प्रक्रियाओं को जन्मदिया है।

इन प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप ग्राम एवं नगर की विशेषताओं का मिलाजुला रूप प्रकट हुआ है। औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास ने ग्रामों की आत्मनिर्भरता को समाप्त किया। अब नगरों की कच्चे माल के लिए ग्रामों पर निर्भरता बढ़ी है। नगरों की प्रबलता और वहां उपलब्ध साधनों की विपुलता ने ग्रामवासियों को नगरों की ओर आकर्षित किया है। दूसरीओर नगरवासी भी ग्राम की अनेक विशेषताओं को अपना रहे हैं। इसे ग्रामीणीकरण कहते है। ग्राम एवं नगर के सम्पर्क और अन्तर्क्रिया के परिमाणस्वरूप एक समन्वय-युक्त अवस्था उत्पन्न हो जाती है। बड़े-बड़े नगरों के चारों ओर आस-पास बसे उप-नगरों में दोनों का मिश्रित जीवन देखने को मिलेगा। शहर में लोग शहर से दूर खुली हवा में अपने बंगले बनाते हैं। वे बंगलों में बगीचा आदि लगाकर प्राकृतिक वातावरण उपस्थित करने का प्रयास करते हैं। इनमें आधुनिक नगरों की सारी सुविधाएं उपलब्धहोती हैं। बिजली, नल, फ्रिज, गैस का चूल्हा, टी.वी., सोफा,

आधुनिक फर्नीचर, कार सभी इनमें उपलब्ध होते हैं। इनमें निवास करने वाले लोग शहरी व्यवसाय पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार आज ग्राम एवं नगर आदर्श रूप में विद्यमान नहीं हैं वरन् गांव नगरों की विशेषताओं को ग्रहण करते जा रहे हैं और आज नगर भी ग्रामीण जीवन की कई बातों को नवीन रूप में स्वीकार कर रहे हैं। इन दोनों में परस्पर यह लेन-देन की प्रक्रिया ही ग्राम-नगर नैरन्तर्य के नाम से जानी जाती है।

2.8 सारांश

प्रस्तुत अध्याय में हमने ग्रामीण समुदाय और शहरी समुदाय के परिभाषाओं, विशेषताओं को समझने की कोशिश की। ग्रामीण समुदाय वह क्षेत्र है जहां कृषि की प्रधानता, प्रकृति से निकटता प्राथमिक संबंधों की बहुलता, जनसंख्या की कमी, सामाजिक गतिशीलता का अभाव आदि विशेषताएं पाई जाती है। वहीं शहरी समुदाय या नगर वह क्षेत्र है जहां जनसंख्या की बहुलता, गैर कृषि व्यवसाय, श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण, द्वितीयक संबंधों की प्रधानता इत्यादि पाई जाती है। इसके साथ ही ग्रामीण एवं शहरी समुदाय का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इनकी परस्पर अन्तर्क्रिया को समझाने की भी कोशिश की गई है।

2.9 बोध प्रश्न

1. ग्रामीण समुदाय की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं को समझाएं।
3. शहर से क्या तात्पर्य है?स्पष्ट कीजिए।
4. शहरी समुदाय की विशेषता बतलाइए।
5. ग्रामीण एवं शहरी समुदाय में अंतर स्पष्ट कीजिए।

2.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. भूषण, बिद्या एवं सचदेवा, डी.आर. (2012). *समाजशास्त्र.* नई दिल्ली : डार्लिंग किंग्सले (इंडिया) प्रा.लि.

2. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी. (1998). *समाजशास्त्र.* आगरा : साहित्य भवन पब्लिकेशन.

3.सिंह, ए.एन. (2002). *सामुदायिक संगठन.* पंचकूला : हरियाणा साहित्य अकादमी.

4. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2004). *भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र.* आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

5. Ogburn & Nimkoff (1957). *A Hand Book of Sociology.* Landon : Routledge and Kegan Pall Limited.
6. Gillin, john Lewis & Gillin, john Philip (1948). *Cultural Sociology.* NewYork: Macmillan Company.
7. Majumdar, D.N. (1944).s *Races and Cultures of India*. NewYork : Taplinger Publishing Company.

इकाई – 3
जनजातीय समुदाय

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 जनजाति का अर्थ एवं परिभाषा
3.3 जनजातीय समुदाय की विशेषताएँ
3.4 जनजातियों का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन
3.5 जनजाति हेतु संवैधानिक प्रावधान
3.6 सारांश
3.7 बोध प्रश्न
3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- जनजातीय समुदाय की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- भारतीय जनजातीयों की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन की व्याख्या कर सकेंगे।
- जनजातियों के लिए संवैधानिक प्रावधानों को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

प्राचीन समय से ही भारत अनेक धर्मों, मतों, सम्प्रदायों, संस्कृतियों, प्रजातियों, जातियों और जनजातियों की कर्मभूमि रहा है। इन सबने मिलकर, यहाँ की सामाजिक व्यवस्था और संगठन के निर्माण में, महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है और उन्हें एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है।

वन्यजाति या जनजाति को आदिवासी, आदिम, वनवासी तथा अनुसूचित जनजाति इत्यादि नामों से संबोधित किया जाता है। इन्हें आदिम या आदिवासी कहने के पीछे का कारण यह है कि ये भारत के प्राचीनतम निवासी माने जाते हैं। वेरियर एल्विन जैसे विद्वान भी इनको आदिम जाति के नाम से संबोधित करते हैं। वेरियर एल्विन ने आदिवासियों के संदर्भ में लिखा है कि आदिवासी भारत वर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज है, जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है। ये वे प्राचीन लोग है, जिनके नैतिक अधिकार और दावे हजारों वर्ष पुराने हैं। वे सबसे पहले यहाँ आए। ठक्कर बापा, जो आदिवासियों के

मसीहा के नाम से मशहूर हैं, ने इन्हें आदिवासी के नाम से संबोधित किया है। वहीं डॉ. घुरिये इन्हें भारत के आदिवासी नहीं मानते बल्कि वे इन्हें पिछड़े हिन्दू कहते है। घुरिये ने ऐतिहासिक प्रमाण देकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि अधिकांश जनजातियाँ हिन्दू धर्म को मानती हैं। अत: वे हिन्दू समाज का ही अंग हैं। कुछ विद्वान इन्हें भाषा के आधार पर जनजातियाँ कहते हैं, क्योंकि इनके द्वारा बोली जाने वाली भाषाएँ जनजाति भाषा की श्रेणी में आती हैं।

भारतीय संविधान में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के उत्थान और कल्याण के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। इसी आशय से जिन-जन जनजातियों के नाम संविधान की अनुसूची में सम्मिलित किये गये हैं, उन सभी को अनुसूचित जनजाति के नाम से पुकारा जाता है।

2011 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या लगभग 10.50 करोड़ है। जो देश की कुल जनसंख्या का 8.6% है।यह 8 प्रतिशत जनसंख्या देश के भौगोलिक क्षेत्र के 20 प्रतिशत से अधिक भाग पर निवास करती है और देश के कुल प्राकृतिक संसाधनों का 70 प्रतिशत इसी क्षेत्र में उपलब्ध है। अनुसूचित जनजातियों का विस्तार वैसे तो संपूर्ण देश में है किन्तु मध्य भारत इनका गढ़ है। भारत में सर्वाधिक अनुसूचित जनजाति जनसंख्या मध्यप्रदेश में पायी जाती है जो राज्य की समस्त जनसंख्या का 21.1% है। केन्द्र शासित प्रदेशों में अनुसूचित जनजाति जनसंख्या प्रतिशत लक्ष्यद्वीप में सबसे अधिक पाई जाई है जो लगभग 94.8% है। गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश, आंधप्रदेश, बिहार, झारखण्ड एवं उड़ीसा में जनजातीय जनसंख्या का लगभग 82 प्रतिशत से भी अधिक हिस्सा निवास करता है। पूर्वोत्तर क्षेत्रों में देश की जनजातीय जनसंख्या का 12 प्रतिशत निवास करता है, बाकी बचे जनजातीय समुदाय दक्षिण में नीलगिरी पर्वत के आस-पास के क्षेत्रों एवं उत्तर पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में बसे हुए हैं।

जनजातीय समुदाय विविध नृजातीय, धार्मिक एवं भाषाई समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जनजातियों के विकास के स्तर में कोई एकरूपता नहीं है। जहाँ मिजोरम के जनजातीय लोगों में साक्षरता लगभग 100 प्रतिशत है। वहीं अंड़मान एवं निकोबार द्वीप समूहों के जारवा एवं शोक्पर अभी भी प्राकृतिक तौर तरीके से जीवन बसर करते हैं। सभी जनजातियों में सामान्य रूप से कुछ विशेषताएँ पाई जाती है जिनमें उनकी कठोर सांस्कृतिक परंपराएँ, आपसी बंधुता, दूर दराज के स्थानों में निवास, बुनियादी सुविधाओं का अभाव एवं तकनीकी प्रगति का निम्न स्तर आदि हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार पुडुचेरी, दिल्ली, चण्ड़ीगढ़, हरियाणा तथा पंजाब में कोई भी अनुसूचित जनजाति नहीं पई जाती है।

3.2 जनजाति का अर्थ एवं परिभाषा

जनजाति का अर्थ –

जनजाति एक मानवशास्त्रीय संकल्पना है। कुछ विद्वानों ने इन्हें जड़ात्मवादी अथवा आदिवासी कहा है। वर्तमान में, जनजातियों के लिए आदिवासी शब्द अधिक लोकप्रिय हुआ है। ऐसा समझा जाता है कि जनजाति लोग पहाड़ों एवं जंगलो में रहते हैं अथवा यह कृषकों का एक विशेष समूह माना जाता है। सामान्यत: जनजाति की परिभाषा ऐसे सामाजिक समूह के रूप में की जाती है जो एक निश्चित स्थान में रहता है, उसकी अपनी एक बोली होती है, उसमें सांस्कृतिक एकरूपता होती है एवं यह एक सामाजिक संगठन के रूप में एकजुट होता है।

परिभाषा –

जनजाति को परिभाषित करते हुए **गिलिन एवं गिलिन** ने लिखा है कि *स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी समूह को जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता हों, एक विशेष भाषा बोलता हों, और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो उसे एक जनजाति कहते है।*

डॉ. रिवर्स के अनुसार –

जनजाति एक ऐसा सरल प्रकार का सामाजिक समूह है जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते है। तथा युद्ध आदि सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।

डॉ. मजूमदार के अनुसार –

एक जनजाति परिवारों या परिवारों के समूह का संकलन होता है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग में रहते है, समान भाषा बोलते हैं और विवाह व्यवसाय या उद्योग के विषय में निषेधात्मक नियमों का पालन करते हैं और सामाजिक कर्तव्यों की एक सुविकसित व्यवस्था को मानते हैं।

चार्ल्स विनिक ने जनजाति की परिभाषा देते हुए लिखा है कि *एक जनजाति में क्षेत्र, भाषा, सांस्कृतिक समरूपता तथा एक सूत्र में बंधने वाला सामाजिक संगठन आता है। यह सामाजिक उपसमूहों जैसे- गोत्रों या गांवो को सम्मिलित कर सकता है।*

रॉल्क पिडिंगटन के अनुसार – *'हम एक जनजाति की व्यक्तियों के एक समूह के रूप में व्याख्या कर सकते है जो कि एक समान भाषा बोलता हो समान भू-भाग में निवास करता हो, तथा जिसकी संस्कृति में समरूपता पाई जाती हो।'*

हाबल *का कहना है कि जनजाति एक सामाजिक समूह है जो एक विशेष भाषा बोलता है तथा एक विशेष संस्कृति रखता है जो उन्हें दूसरे जनजाति समूहों से पृथक करती है।यह अनिवार्य रूप से राजनीतिक संगठन नहीं है।*

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जनजाति एक ऐसा क्षेत्रीय मानव समूह है जिसकी एक सामानूय संस्कृति,भाषा,राजनीतिक संगठन एवं व्यवसाय होता है तथा जो सामान्यत: अन्त र्विवाह के नियमों का पालन करता है।

3.3 जनजातीय समुदाय की विशेषताएँ

(1) सामान्य भू-भाग - एक जनजातीय समुदाय एक निश्चित-भू-भाग में ही निवास करता है। इसके परिणामस्वरूप उसका उस भू-भाग से लगाव एवं उसके सदस्यों में दृढ़ सामुदायिक भावना का विकास हो जाता है। सामान्य भू-भाग में रहने के कारण ही उनमें सामान्य जीवन की अन्य विशेषताएँ विकसित हो जाती है।

(2) बड़ा आकार – एक जनजाति में कई परिवारों का संकलन होता है। इसमें कई वंश,समूह एवं गोत्र तथा भातृ दल होते हैं यही कारण है कि इसकी संख्या अन्य क्षेत्रीय समुदायों से अधिक होती हैं।

(3) सामान्य भाषा - एक जनजाति के लोग अपने विचारों का आदान-प्रदान एक सामान्य भाषा के प्रयोग से करते हैं। भाषा के माध्यम से ही, वह अपनी संस्कृति का हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को करता है किन्तु सभ्यता के संपर्क के कारण कई जनजातियाँ द्विभाषी हो गई है।

(4) अन्तर्विवाह- एक जनजाति के सदस्य अपनी ही जनजाति में विवाह करते हैं।

(5) एक नाम – प्रत्येक जनजाति का कोई नाम अवश्य होता है जिसके द्वारा वह पहचानी जाती है। उसके सदस्य अपना परिचय जनजाति के नाम के आधार पर ही देते हैं।

(6) सामान्य संस्कृति – एक जनजाति के सभी सदस्यों की संस्कृति सामान्य होती है। उनके रीति-रिवाज, प्रथाएँ, लोकाचार, नियमों, कला, धर्म, जादू-संगीत, नृत्य, खान-पान, भाषा, रहन-सहन, विचारों, विश्वासों, मूल्यों आदि में समानता पाई जाती है।

(7) आर्थिक आत्मनिर्भरता – एक जनजातीय समुदाय अपनी सभी आर्थिक आवश्यकताओं को स्वयं ही पूरा कर लेने में सक्षम होता है। शिकार, फल-फूल एकत्रित करने, पशुचारण, कृषि एवं गृहउद्योग आदि द्वारा अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ जनजाति समुदाय के लोग स्वयं ही जुटा लेते है। फिर भी कभी-कभी वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में अपने पड़ोसी समाजों एवं अन्य समुदायों से भी विनिमय करना पड़ता है।

(8) राजनीतिक संगठन – एक जनजाति समुदाय का अपना राजनीतिक संगठन होता है। इसमें अधिकांशत: एक वंशानुगत मुखिया होता है जो परम्पराओं का पालन कराने, नियंत्रण बनाए रखने एवं नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था करता है। कहीं-कहीं मुखिया की सहायता के लिए एक परिषद भी पाई जाती है।

(9) सामान्य निषेध – एक जनजाति खान-पान, विवाह, परिवार, व्यवसाय, धर्म आदि से संबंधित सामान्य निषेधों का पालन करती है।

3.4 जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन

सामाजिक जीवन – जनजातियों का सामाजिक जीवन भी विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से संचालित होता है। जनजाति भी गोत्र, विवाह, परिवार, नातेदारी इत्यादि संस्थाओं से बंधीहुई है। ये

विभिन्न प्रकार की संस्थाएं ही जनजातीय सामाजिक संरचना का निर्माण करते हैं या सामाजिक संस्था के ढाँचे का निर्माण करते हैं।

गोत्र – भारत की अन्य जातियों के समान ही जनजातियों में भी गोत्र परम्परा विद्यमान है। एक गोत्र के सदस्य से जब यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने गोत्र से बाहर विवाह संबंध ढूँढे। अगर व्यक्ति गोत्र से बाहर विवाह करता है तो उस विवाह को बर्हिविवाह कहते हैं। एक गोत्र के सदस्य मानते हैं कि वे एक ही पूर्वज के वंशज हैं। अत: इसलिए वह एकता की भावना से बंधे हुए हैं। वंशज का सांकेतिक अस्तित्व, किसी जानवर अथवा पौधे अथवा किसी अन्य चीज में देखा जाता है जिसे सामान्यत: 'टोटैम' (गण चिन्ह) कहा जाता है। टोटेम के प्रति किसी गोत्र की भावना अथवा व्यवहार, एक जनजाति से दूसरी जनजाति में भिन्न-भिन्न हो सकता है। गोत्रों के नाम संबंधित 'टोटैम' से निकाले जाते हैं।

गोत्रों के सदस्यों से टोटेम के पौधे को काटने की अथवा टोटेम के जानवर को मारने की मनाही होती है।वह अपने टोटेम की मृत्यु का शोक मनाते हैं। टोटेम की जाति अथवा किस्म के विकास एवं विस्तार के लिए धार्मिक अनुष्ठान भी किए जाते है।

विवाह – जनजातीय समुदायों में विभिन्न प्रकार के विवाह प्रचलन में हैं। विवाह सामान्यत: लड़के एवं लड़कियों के सगे संबंधियों की सहमति से होता है। विवाह विधि-विधान से समारोह के साथ तथा विभिन्न आमोद प्रमोद के माध्यमों से सम्पन्न किया जाता है। अगर लड़की के माता-पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती तथा वे विवाह में अधिक व्यय करने की सामर्थ्य नहीं रखते, तो वे अपनी लड़कियों को ऐसे लड़कों के साथ जाने की अनुमति प्रदान कर देते है जो उनसे विवाह करना चाहते है। विवाह के तरीके के बारे में लड़के के संबंधियों को पहले से जानकारी होती है। इस तरह के मामलों में लड़की का लड़के के साथ चले जाना, दोनों परिवारों के बीच कोई मतभेद उत्पन्न नहीं करता। कई बार लड़का-लड़की जो एक दूसरे से प्रेम करते है, वे अपने घर से भाग जाते है तथा किसी दूसरी जगह जाकर रहने लगते है जब तक कि उन्हें दोबारा स्वीकार नहीं कर लिया जाता। एक लड़का जो दुल्हन-मूल्य चुकाने में भी असमर्थ होता है वह अपनी होने वाली पत्नी के घर परिवार का काम कर सकता है और अंतत: उससे विवाह करने में सफल हो जाता है।

विधवा विवाह लगभग सभी जनजातीय समुदायों में प्रचलित है। एक विधवा अपने दिवंगत पति के भाई से विवाह करती है तो इसे 'नियोग' कहते हैं। कई बार पत्नी की मृत्यु के पश्चात पति अपनी पत्नी की बहन से विवाह करता है। इस तरह के विवाह को 'सोरोरेट' भगिनी संघ विवाह कहते हैं। अधिकतर जनजातीय समुदायों में एक आदमी एक समय पर एक ही पत्नी रखता है इसे मोनोगैमी कहते हैं। लेकिन ऐसी कुछ जनजातियाँ हैं जैसे गोंड, बैगा, नागा इत्यादि जहाँ एक व्यक्ति एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करता हैं। एक स्त्री अगर एक से अधिक पुरूष या पति रखती है तो उसे बहुपतित्व कहते हैं। ऐसा टोड़ा कोटा एवं मोट इत्यादि जनजातियों में होता है।

परिवार –

विवाह परिवार के संगठन का मार्ग निर्धारित करता है। विवाह के बाद पति एवं पत्नी को एक स्थान पर एक साथ रहना होता है। अधिकांशत: देखा जाता है कि विवाह के बाद पत्नी अपने पति के माता-पिता के साथ रहती है। इस व्यवस्था को पैतृक (पैट्रिलोकल) कहते हैं। इसके विपरीत अगर पति अपने माता-पिता के साथ न रहकर पत्नी के माता-पिता के साथ रहता है तो इसे मेट्रीलोकल अर्थात मातृ गृह निवासी कहते हैं। खासी जनजाति में सामान्यत: परिवार में, पति, अविवाहित बच्चे एवं उसकी विवाहित पुत्रियाँ तथा उनके पति उनके साथ होते है। इस परिवार व्यवस्था में उनकी संपत्ति पर महिलाओं का अधिकार वंशानुक्रम व्यवस्था से चलता है। जैसे- माँ से पुत्री को, पुत्री से दोहाती को, इसी तरह से परिवार आगे बढ़ता है। इस व्यवस्था को मातृवंशानुक्रम व्यवस्था कहा जाता है। पैतृक गृह निवासी के परिवारों में, उत्तराधिकार पुरूष वंशानुक्रम से मिलता है। जैसे पिता से पुत्र पुत्र से पोते एवं यह इसी तरह से आगे बढ़ता है। इसे पितृ वंशानुक्रम कहते हैं।

जनजातियों में सबसे छोटी सामाजिक इकाई एकल परिवार मानी जाती है। इस एकल परिवार में पुरूष, उसकी पत्नी एवं उसके अविवाहित बच्चे सम्मिलित होते हैं। जनजातियों में परिवार उत्पादन तथा उपभोग करने वाली इकाई है। स्त्रियों और बच्चों समेत सभी सदस्य पारिवारिक आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेते है।

***नातेदारी* –**

संसार के सभी भागों तथा सभी समाजों में चाहे उनका प्रौद्योगिक स्तर कुछ भी हो विभिन्न प्रकार के बंधनों में, एक साथ बंधे रहते हैं। इन बंधनों में से सबसे विश्वव्यापी, सबसे अधिक बुनियादी बंधन वह है जो जनन पर आधारित है तथा जिसे नातेदारी या बंधुत्व कहते है; किन्तु नातेदारी के मामलों में देखा जाता है कि सामाजिक मान्यता जैविक तथ्यों पर हावी हो जाती है। विशेष तौर पर, पूरे विश्व के आदिम समाजों में।

भारत के अन्य लोगों की तरह जनजातियों में भी नातेदारी को मान्यता प्राप्त है। जनजातीय लोगों में मुख्यत: दो प्रकार की नातेदारी पाई जाती है पहला समरक्त नातेदारी तथा वैवाहिक नातेदारी। समरक्त नातेदारी में उन सभी को शामिल किया जाता है जो रक्त द्वारा अथवा जैविक बंधनों के द्वारा संबंधित होते हैं। जबकि वैवाहिक नातेदारी में वे लोग शामिल होते है जिन्हें विवाह के माध्यम से मान्यता प्राप्त होती है।

***धार्मिक जीवन* –**

प्रत्येक जनजातीय समुदाय का अपना धार्मिक विश्वास होता है। जनजातीय लोग दैवी शक्तियों, भूत-प्रेतों एवं आत्माओं के अस्तित्वपर विश्वास करते हैं। आत्मा का आर्शीवाद प्राप्त करने के लिए कई अनुष्ठान किए जाते हैं। आधिदैविक शक्तियों एवं आत्मा में विश्वास जनजातीय धर्म का एक महत्वपूर्ण पहलू है अत: इसे जड़ात्मवाद कहा जाता है।

जनजातीय लोगों की यह मान्यता है कि बादल की गड़गड़ाहट, बिजली का चमकना, बाढ़, वर्षा इत्यादि आधिदैविक शक्तियों द्वारा लाए जाते हैं। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि प्रत्येक वस्तु जैसे- वन,

नदी, पर्वत इत्यादि को कोई न कोई आत्मा संरक्षित करती है। वे आत्मा के अस्तित्व तथा पुर्नजन्म में विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि मृत्यु के पश्चात भी आत्मा के माध्यम से मनुष्य का अस्तित्व बना रहता है तथा वे संतान के रूप में पुनः जन्म लेते है। रोगों को आत्माओं का दुष्परिणाम माना जाता है। जनजातीय समुदाय यह मानते हैं कि उपयुक्त धार्मिक अनुष्ठान द्वारा रोगों से छुटकारा मिल सकता है।

प्रकृति की पूजा करना जनजातियों के धर्म का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है। संथाल, मुंडा, होस एवं बिहार के बिरहोर सूर्य को सिंग बोंगस कहते हैं जिसका अर्थ है, 'सर्वशक्तिमान ईश्वर' गारो सूर्य, चांद एवं सितारों को स्वर्ग में रहने वाली आत्माएँ मानते हैं। केरल के कणिकर भी सूर्य को भगवान के रूप में पूजते हैं। इसके लिए वे अपने झोपिड़यों के सामने एक दिया जलाकर रखते हैं और कुछ फल एवं चावल साथ में रखते हैं।

कुछ जनजातियों में औरतों को कुछ चीजें छूने की अनुमति नहीं होती है तथा उनका पवित्र स्थलों में प्रवेश निषेध माना जाता है। इस पवित्र विश्वास को टैबू कहा जाता है। उनकी मान्यता है कि टैबू का टूटना उनकी जाति पर कहर ला सकता है। उदाहरण के लिए खदिया स्त्रियों को हल छूने तथा छप्पर ड़ालने की अनुमति नहीं होती।

धार्मिक रस्मों को पूरा करने के लिए अलग-अलग व्यक्ति होते है, जिन्हें भिन्न-भिन्न नामों से जानते हैं। खारिया जनजाति के लोगों में गाँव का मुखिया एवं धार्मिक प्रमुख एक ही व्यक्ति होता है। हो जनजाति में धार्मिक कर्मकाण्ड 'ड्युरी ' द्वारा निष्पादित किया जाता है जो धार्मिक प्रमुख भी होता है। वह गांव के मुख्य देवता को बलिदान समर्पित करता है। दुष्टआत्माओं का निदान डियोनूयरा ओझा द्वारा किया जाता है। मुण्ड़ा एवं ओरांव अपने धार्मिक मुखिया को 'पहान' कहते हैं। गांव की देख-रेख गांव का मुखिया करता है। जिसे महतो कहते हैं। पहान का काम है, गांव के देवता को प्रसन्न रखना ताकि रोग एवं दु:ख ,विपत्तियाँ गांव से दूर रहें।

आर्थिक जीवन –

जनजातियों का आर्थिक जीवन भी भिन्न-भिन्न प्रकार का है। इन जनजातियों में कुछ जनजातियाँ वनों में शिकार या आखेट करके अपना जीविकोपार्जन करती है, तो कुछ जनजातियां पहाड़ी कृषि आदि में संलग्न है। कुछ जनजातियां सरल कारीगर या शिल्पी का भी कार्य करती है।कुछ लोक कलाकार तो कुछ नौकरी तथा व्यापार में भी संलग्न है।

जो जनजातियाँ वनों में आखेट करके अपना जीवन व्यतीत करती है वे अपनी जीविका का निर्वाह खाद्य जड़ों तथा फलों के संग्रह, शिकार तथा मछली पकड़ने द्वारा करती है। जनजातियों का यह वर्ग अधिकतर दक्षिण भारत में पाया जाता है। इस श्रेणी में आंध्रप्रदेश, केरल, तमिलनाडु, अण्ड़मान तथा निकोबार द्वीप समूह, उत्तरप्रदेश की राजी, मेघालय के हिलगारों, इत्यादि इसके उदाहरण है।

भारतीय जनजातियों का एक बहुत बड़ा वर्ग उत्तरी, पूर्वी तथा मध्य अथवा, केन्द्रीय भारत के पहाड़ी हिस्से पर झूम कृषि में आबद्ध है। झूम कृषि प्रणाली के तहत झाडियाँ तथा वृक्ष काट कर जला दिए

जाते है। इसके पश्चात राख पर बीज छिड़क दिया जाता है तथा शेष प्रकृति पर छोड़ दिया जाता है। असम, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम और त्रिपुरा की लगभग सभी जनजातियाँ झूम कृषि द्वारा फसल उत्पादन करती है।

अधिकतर जनजातियों ने स्थाई कृषि को अपने जीवन-यापन का साधन चुन लिया है। उनकी कृषि प्रविधियाँ तथा तरीके अन्य कृषक समूहों के समान है तथा वे बैलों, हल तथा अन्य कृषि उपकरणों का भी प्रयोग करते हैं। किंतु उनकी अधिकांश भूमि असिंचित है अत वे प्रकृति की अनिश्चितता का शिकार होते हैं। वर्षा पर पूर्ण रूप से निर्भरता के अतिरिक्त कृषि के अन्य कारक जैसे उर्वरक, उच्च पैदावार वाले अनाजों, कीटाणुनाशकों आदि के अभाव में उन्हें निम्न एवं कम उपज से संतुष्ट रह जाना पड़ता है। संख्या की दृष्टि से बड़ी जनजातियों में ओराँव, मुण्डा, हो तथा संथाल सफल कृषक हैं।

कुछ जनजातियाँ कुटीर उद्योगों द्वारा अपना जीवन-यापन करती हैं। वे टोकरी तथा चटाई बनाने वाले, कपड़ा बुनने तथा लोहारी कार्य में आबद्ध हैं तथा अपने जनजातीय तथा गैरजनजातीय पड़ोसी समाजों की आवश्यकताओं को पूरा करती है। कश्मीर के गुज्जर, हिमाचल प्रदेश के किन्नोर लकड़ी का काम करते हैं। बिहार के असुर तथा मध्यप्रदेश के अगरिया लोहे को गलाने में दक्ष हैं। तमिलनाडु के हरूला बॉस की सुन्दर चटाईयाँ तथा टोकरियाँ बनाते हैं।

जनजातियों का एक वर्ग नृत्य करके, कालाबाजी दिखा कर तथा साँप नचाने आदि कार्यों द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता है। इसलिए उन्हें लोक कलाकार कहा जा सकता है। उत्तर प्रदेश के नट तथा सपेरे इस श्रेणी के अच्छे उदाहरण हैं। उड़ीसा के मुण्ड़प्पटू कुशल नट हैं। तमिलनाडु के कोटा सपेरे हैं। मध्यप्रदेश के गोंड़ों के कुछ समूह गोदना गोदनें वाले तथा नर्तक हैं तथा पूर्वी भारत और दक्षिणी भारत की कुछ जनजातियाँ भी इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

कृषि मजदूरी में लगी जनजातियाँ वे हैं जो पारंपरिक दृष्टि से कृषक हैं किंतु भूमि हीनता के कारण कृषि मजदूरों के रूप में दूसरों की भूमिपर कार्य करते है। संपूर्ण जनजातीय जनसंख्या का पाँचवां भाग कृषि में श्रमजीवी के रूप में लगा है। अकृषक जनजातीय श्रमबल में वे सम्मिलित हैं, जो बिहार, उड़ीसा पश्चिम बंगाल के स्थनीय कारखानों, खानों में तथा असम व पड़ोसी क्षेत्रों में चाय बगानों में काम करते हैं।

संवैधानिक प्रावधानों के प्रयोग के फलस्वरूप अपेक्षाकृत, छोटी संख्या में जनजातीय लोग सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी पदों पर भी कार्यरत हैं। इस प्रकार की जनजातियों में मेघालय, मिजोरम तथा नागालैंड और मुख्यत: छोटा नागपुर की जनजातियाँ शामिल है।

3.5 जनजाति हेतु संवैधानिक प्रावधान

जनजातियों के लिए भारत के संविधान में विशेष प्रावधान किया गया है जिससे उनका सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक अर्थात सर्वांगीण विकास किया जा सके। संविधान के प्रावधानों ने राज्य

के लिए यह अनिवार्य कर दिया है कि वह अनु.जनजाति के हितों का ध्यान रखे। अनुच्छेद 15 एवं 16 में (जो कि नागरिकों के मूल अधिकारों से संबंधित हैं) यह सुनिश्चित करने के लिए कि जो भी आवश्यक है, वह किया जाए ,अपवादों की भी व्यवस्था की गई है। उदाहरण के लिए अवसर की समानता राज्य की नीति है लेकिन आरक्षण इसका अपवाद है। अनुच्छेद 244 राज्य को यह शक्ति देता है कि वह अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए विशेष प्रबंध करे। अनुच्छेद 275-1 राज्य, विशेष रूप से केन्द्र सरकार, जनजाति के विकास के लिए ऐसे विशेष आर्थिक उपाय जो उनके विकास में काम आएं। अगर केन्द्र सरकार, राज्य सरकार की ऐसी किसी योजना से सहमत है तो केन्द्र सरकार को उस योजना को आर्थिक मदद भी अवश्य देनी होगी। इस तरह हमें राज्य से वैधानिक एवं आर्थिक उपायों के रूप में सभी सुविधाएं उपलब्ध हो जाती हैं। राज्य यह बहाना नहीं कर सकते कि उन्हें पर्याप्त अधिकार नहीं हैं। संविधान की पांचवीं अनुसूची में राज्यपाल को एक अनोखा अधिकार दिया गया है जिसके अनुसार अगर उन्हें यह लगता है कि संसद या राज्य विधान सभा का कोई अधिनियम अनुसूचित जनजाति के हित में नहीं है तो वह इसके अमल पर रोक लगा सकते हैं। यही नहीं वे ऐसा पिछली तारीख से भी कर सकते हैं। संविधान में इस तरह का प्रावधान कहीं और नहीं मिलता। छठी अनुसूची में ऐसे जिलों में जिला स्तरीय स्वायत्त निकाय बनाने का अधिकार दिया गया है जहां जनजातीय समुदाय के लोग बड़ी संख्यामें हैं। उनके पास बहुत सारी आर्थिक, वैधानिक, कार्यकारी एवं न्यायिक शक्तियां हैं।

भारत का संविधान अनुसूचित जनजातियों के लिए बहुत सारे उपायों का प्रावधान करता है जिसका मुख्य उद्देश्य अनुच्छेद 46 में दिए गए उन नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने की सुविधाएं उपलब्ध कराना है, जो इस प्रकार हैं:

''राज्य समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचितजनजातियों के लोगों की शिक्षा एवं उनके आर्थिक हितों का विशेष ध्यान रखेगा एवं उन्हें सामाजिक अन्याय तथा हर प्रकार के शोषण से संरक्षण प्रदान करेगा।''

संविधान में किए गए प्रमुख सुरक्षात्मक प्रावधान : अनुच्छेद 46 (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को प्रोत्साहित करना); अनुच्छेद 244 (अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन); 275 (कुछ राज्यों को केन्द्र द्वारा अनुदान); 330 (लोक सभा में अनु. जाति एवं अनु. जनजाति के लिए सीटों का आरक्षण); 332 (अनु. जाति एवं जनजाति के राज्यों की विधान सभाओं में सीटों का आरक्षण); 335 (अनु. जाति एवं अनु. जनजाति के नौकरी एवं पदों के लिए दावे); 338 (अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष अधिकार इत्यादि); 339 (अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण पर केन्द्र का नियंत्रण)।

अनुच्छेद 46, राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकारों को अनु. जनजाति के शैक्षिक हितों के प्रोत्साहन के लिए आवश्यक नियम बनाने का अधिकार देता है जिसमें व्यावसायिक कॉलेजों में सीटों का आरक्षण भी सम्मिलित है।

अनुच्छेद 164 में बिहार, मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा में, जिनमें अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या अधिक है, जनजाति कल्याण मंत्रालय के गठन का प्रावधान हैं। ये मंत्रालय संबंधित राज्योंमें अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए काम करेंगे।

अनुच्छेद 244 में ऐसे राज्यों में जिनमें जनजातीय जनसंख्या बहुत अधिक है (असम को छोड़कर) अनुसूचित क्षेत्रों तथा राज्योंकी जनजातियों के प्रशासन के प्रावधानों को शामिल करने के लिए संविधान में पांचवीं अनुसूची जोड़ने की व्यवस्था की गई है।

अनुच्छेद 275 केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को अनुसूचित जनजाति के कल्याण को प्रोत्साहित करने एवं उन्हें बेहतर प्रशासन मुहैया कराने के लिए विशेष अनुदान देने का प्रावधान करता है।

संविधान 338 अनुच्छेद के अनुपालन में जिनमें यह व्यवस्था की गयी है कि राष्ट्रपति अनु. जाति एवं अनु. जनजाति के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त करेंगे, केन्द्र सरकार द्वारा अनु. जाति एवं अनु. जनजाति के लिए आयुक्त नियुक्त किया जाना जरूरी है। आयुक्त संविधान द्वारा अनु जनजातियों को प्रदान की गई सुरक्षाओं से संबंधित सभी मामलों की जांचपड़ताल करता है। वह सुरक्षा के इन उपायों पर अमल के बारे में राष्ट्रपति को वार्षिक रिपोर्ट भेजता है। उसकी रिपोर्ट पर संसद के दोनों सदनों में चर्चा होती है। आयुक्त के काम में सहायता के लिए विभिन्न राज्यों में नियुक्ति भी की गई है। इस प्रकार बहुत सारे प्रावधान जनजातीय समुदाय के लिए की गई है लेकिन इनका लाभ उन तक तभी पहुँच पाएगा जब वे जागरूक एवं शिक्षित हों। यह सामाजिक कार्यकर्ता का यह उतरदायित्व बनता कि वह इन समुदायों को इनसे अवगत कराकर उसे पाने का प्रयत्न कराए।

3.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय में जनजातीय समुदाय की चर्चा की गई है। जनजातीय समुदाय को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जनजाति की परिभाषा सामान्यत: ऐसे सामाजिक समूह के रूप में की जाती है जो एक निश्चित स्थान पर रहता है, उसकी अपनी एक बोली होती है, उसमें सांस्कृतिक एकरूपता होती है तथा ये एक सामाजिक संगठन के रूप में एकजुट होते हैं। जनजातीय समुदाय की विशेषताओंको विभिन्न सदंर्भो में स्पष्ट करने की कोशिश की गई है। तत्पश्चात जनजातियों के सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है। सामाजिक जीवन के अंतर्गत गोत्र,विवाह, परिवार, नातेदारी इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। धार्मिक जीवन के अंतर्गत जनजातियों के विभिन्न देवी, देवताओं, पहाड़ो, जंगलों इत्यादि की पूजा को दर्शाया गया है। आर्थिक जीवन के अंतर्गत विभिन्न जनजातियों के जीविकोपार्जन के

तौर-तरीकों की चर्चा की गयी है। साथ ही साथ संविधान के अंतर्गत जनजातियों हेतु किये गये संवैधानिक प्रावधानों की भी व्याख्या की गई है।

3.7 बोध प्रश्न

1. जनजाति को परिभाषित कीजिए।
2. जनजातीय समुदाय की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को रेखांकित कीजिए।
4. जनजातियों हेतु संवैधानिक प्रावधानों काउल्लेख कीजिए।

3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. हसनैन, नदीम (2007) *समकालीन भारतीय समाज :एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य.* लखनऊ : भारत बुक सेंटर.

2. हसनैन, नदीम (2007) *जनजातीय भारत.* नई दिल्ली : जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्री ब्युटर्स.

3. पाण्डेय, गया (2007) *भारतीय जनजातीय संस्कृति.* नई दिल्ली : कंसैप्ट पब्लिशिंग कंपनी.

4. उपाध्याय, विजयशंकर एवं शर्मा, विजयप्रकाश (2007) *भारत की जनजातीय संस्कृति.* भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ आकादमी.

5. भूषण, बिद्या एवं सचदेवा, डी.आर. (2012) *समाजशास्त्र.* नई दिल्ली : डार्लिंग किंग्सले (इंडिया)प्रा.लि.

6. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी. डी. (1998) *समाजशास्त्र*. आगरा : साहित्य भवन पब्लिकेशन.

7. सिंह, ए. एन (2002): *सामुदायिक संगठन* पंचकूला : हरियाणा साहित्य अकादमी

8. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी.(2004) *भारतीय ग्रामीण* समाजशास्त्र. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

9. Ogburn & Nimkoff (1957) *A Hand Book of Sociology.* London : ROutledge and Kegan Pall Limited.

10. Gillin, John Lewis & Gillin, John Philip (1948) *Cultural Sociology.* NewYork : Macmillan Company.

11. Majumdar, D.N. (1944) *Races and Cultures of India*. NewYork : Taplinger Publishing Company.

12. Hoebel, E.A. (1949) *Man in the Primitive World.* NewYork: Mcgrawhill.

इकाई -4
सामुदायिक विकास कार्यक्रम

इकाई की रुपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 सामुदायिक विकास की अवधारणा
4.4 सामुदायिक विकास योजना के उद्देश्य
4.5 योजना का संगठन
4.6 सामुदायिक विकास योजना की उपलब्धियां
4.7 योजना की प्रगति का मूल्यांकन
4.8 सारांश
4.9 बोध प्रश्न
4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- सामुदायिक विकास की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सामुदायिक विकास योजना के उद्देश्यों को रेखांकित कर सकेंगे।
- योजना के संगठन की व्याख्या कर सकेंगे।
- योजना की प्रगति का मूल्यांकन कर सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

सामुदायिक विकास अर्द्धविकसित एवं विकासशील देशों की एक प्रमुख प्रक्रिया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत में भी 1950 से सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारंभ किया गया लेकिन सुचारु रूप से इसकी शुरुआत वर्ष 1952 से मानी जा सकती है। प्रारंभ में 1952 ई. में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत लगभग 55 परियोजनाएं चलाई गई। प्रत्येक परियोजना में 3500 गांव थे। प्रत्येक परियोजना को 3 विकास खण्डों में पुन: विभाजित किया गया । प्रत्येक विकास खण्ड में 100 गांव थे। एक विकास खण्ड में कृषि व उससे संबंधित क्षेत्र जैसे ग्राम उद्योग, सहकारिता, सड़कों, कुओं,

पाठशालाओं, सामुदायिक केन्द्रों आदि का निर्माण, समाजसेवा, महिला व युवा कल्याण कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम सम्पूर्ण समुदाय के चहुँमुखी विकास की एक ऐसी पद्धति है जिसमें जन सहभागिता द्वारा समुदाय के जीवनस्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया जाता है। भारत में लम्बी राजनीतिक पराधीनता ने ग्रामीण जीवन को पूर्णतया जर्जरित कर दिया था। अधीनता की इस अवधि में न केवल आपसी सहयोग एवं सहभागिता की भावना विलुप्त हो चुकी थी बल्कि सरकार और जनता के बीच एक ऐसी दृढ़ दीवार खड़ी हो गयी थी जो संदेह पर आधारित थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय समाज में व्याप्त विषम परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए टेलर ने लिखा है कि "भारत में व्याप्त निर्धनता के कारण प्रति व्यक्ति आय दूसरे देशों की तुलना में इतनी कम थी कि भोजन के अभाव में लाखों लोगों की मृत्यु हो रही थी कुल जनसंख्या का 84 प्रतिशत भाग प्राकृतिक तथा सामाजिक रुप से एक दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग था। जातियों का कठोर विभाजन सामाजिक संरचना को विषाक्त कर चुका था, ग्रामीण उद्योग धंधे बर्बाद हो चुके थे, भाषाई विभिन्नता के कारण विभिन्न समूहों के बीच की दूरी निरंतर बढ़ती जा रही थी। यातायात और संचार की व्यवस्था बिगड़ गई थी तथा अंग्रेजी शासन पर आधारित राजनीतिक नेतृत्व किसी भी प्रकार का परिवर्तन ला पाने में पूर्णतया असमर्थ था।" ऐसी दशा में भारत के ग्रामीण जीवन का पुनर्निमाण किए बिना सामाजिक पुनर्निमाण की कल्पना करना पूर्णतया व्यर्थ था।

भारत की लगभग 74% जनसंख्या आज भी गावों में निवास करती है। गावों की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का प्रभावपूर्ण समाधान किए बिना हम कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते। यही कारण है कि भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद से ही एक ऐसी वृहत योजना की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जो ग्रामीण समुदाय में व्याप्त अशिक्षा, निर्धनता, बेरोजगारी, कृषि के पिछड़ेपन, बीमारी तथा रुढ़िवादिता जैसी समस्याओं का समाधान किया जा सके। भारत में ग्रामीण विकास हेतु यह आवश्यक था कि कृषि की दशाओं में सुधार किया जाए। सामाजिक तथा आर्थिक संरचना को बदला जाए। आवास की दशाओं में सुधार किया जाए, कृषकों को कृषि योग्य भूमि प्रदान की जाए, जन स्वास्थ्य तथा शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाया जाए तथा दुर्बल वर्गों को विशेष संरक्षण प्रदान किया जाए। इस प्रकार के बड़े लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु सर्वप्रथम सन 1948 में उत्तर प्रदेश के इटावा तथा गोरखपुर जिलों में एक प्रायोगिक योजना क्रियान्वित की गई। इस योजना की सफलता पर 1952 में भारत एवं संयुक्तराज्य अमेरिका में समझौता हुआ जिसके तहत भारत में ग्रामीण विकास के चतुर्दिक तथा व्यापक विकास के लिए अमेरिका के फोर्ड फांउडेशन द्वारा आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया गया। ग्रामीण विकास की इस योजना का नाम 'सामुदायिक विकास योजना' रखा गया तथा 1952 में महात्मा गांधी के जन्मदिन पर 2 अक्टूबर से 55 विकास खण्डों की स्थापना कर इस योजना पर कार्य आरंभ कर दिया गया।

इस प्रकार अन्य विकासशील देशों की भांति भारत में भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को प्रधानता दी गई। कृष्णामाचारी ने *'कम्युनिटी डेवलपमेन्ट इन इंडिया'* (1958) नामक अपने प्रतिवेदन में सामुदायिक विकास जैसे समन्वित कार्यक्रम के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा कि, ग्रामीण जीवन में न तो आर्थिक पक्ष को किसी प्रकार सामाजिक पक्ष से अलग किया जा सकता है और न ही कृषि विकास को किसी भी प्रकार से सामाजिक पक्ष से अलग किया जा सकता है। कृषि विकास भी सामाजिक समस्याओं से पूर्णतयासम्बद्ध है। ग्रामीण जीवन के समस्त पहलू एक-दूसरे से संबंधित है तथा प्रत्येक पहलू के लिए अलग-अलग प्रयास करने से कोई स्थाई कार्य नहीं हो सकता। पंडित जवाहर लाल नेहरु ने भी एक बार कहा था कि भारत के विस्तृत ग्रामीण क्षेत्रो में सामुदायिक विकास सबसे महत्वपूर्ण प्रयास है।

4.3 सामुदायिक विकास की अवधारणा

सामुदायिक विकास देश के लगभग साढ़े छः लाख से अधिक गॉवों में निवास करने वाली 74 प्रतिशत जनसंख्या के सोचने-विचारने और कार्य करने के तरीकों को बदलने का एक विशाल प्रयत्न और परीक्षण है। सामुदायिक विकास का तात्पर्य सम्पूर्ण समुदाय का क्किास करने और उसे आत्म निर्भर बनाने से है। सामुदायिक विकास एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा ग्रामीण समुदाय के लोग अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सर्वांगीण विकास के लिए सरकार के साथ मिलकर सहयोग करते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से सामुदायिक विकास एक योजना मात्र नहीं है बल्कि यह स्वयं में एक विचारधारा तथा संरचना है। इसका तात्पर्य यह है कि विचारधारा के रूप में यह एक ऐसा कार्यक्रम है जो व्यक्तियों को उनके उत्तरदायित्वों का बोध कराता है तथा एक संरचना के रूप में यह विभिन्न क्षेत्रों के पारस्परिक संबंधों और उनके पारस्परिक प्रभावों को स्पष्ट करता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते है कि सामुदायिक विकास एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा ग्रामीण समाज की संरचना, आर्थिक साधनों, नेतृत्व के स्वरूप तथा जनसहभाग के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए समाज का चहुँमुखी विकास करने का प्रयत्न किया जाता है।

शाब्दिक रूप से सामुदायिक विकास का अर्थ है समुदाय का विकास या प्रगति। इसके पश्चात भी सामुदायिक विकास की अवधारणा इतनी व्यापक और जटिल है कि इसे परिभाषाओं द्वारा भी स्पष्ट करना कठिन है। जो परिभाषाएँ दी गई है उनमें किसी के द्वारा एक पहलू पर अधिक जोर दिया गया है तो किसी में दूसरे पहलूपर। इसके बाद भी विभिन्न विद्वानों, आयोगों एवं सम्मेलनों में दी गई परिभाषाओं के आधार पर हम सामुदायिक विकास को स्पष्ट कर सकते हैं-

कैम्ब्रिज में एक सम्मेलन में सामुदायिक विकास को स्पष्ट हुए कहा गया था कि *''सामुदायिक विकास एक ऐसा आंदोलन है जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण समुदाय के लिए एक उच्चतर जीवन स्तर की व्यवस्था करना है। इस कार्य में प्रेरणा शक्ति समुदाय की ओर से आनी चाहिए तथा प्रत्येक समय इसमें जनता का सहयोग होना चाहिए।''*

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि सामुदायिक विकास ऐसा कार्यक्रम है जिसमें लक्ष्य प्राप्ति के लिए समुदाय द्वारा पहल करना तथा जन सहयोग होना आवश्यक है। इस आंदोलन का मूल उद्देश्य सिर्फ वर्ग विशेष के हितों तक सीमित रहना ही नहीं है बल्कि संम्पूर्ण समुदाय के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है।

योजना आयोग के अनुसार *'सामुदायिक विकास स्वयं जनता के प्रयत्नों द्वारा ग्रामीण जीवन के सामाजिक एंव आर्थिक रुपांतरण का एक प्रयास है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुसार सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल उद्देश्य ग्रामीण जीवन के संपूर्ण स्तर को ऊँचा उठाने हेतु स्थानीय मानव शक्ति को क्रियाशील बनाने का एक संयुक्त और समन्वित प्रयत्न* है।

आर.एन.रैना के अनुसार *'सामुदायिक विकास एक एकीकृत कार्यक्रम है जो ग्रामीण जीवन के समस्त पक्षों को प्रभावित करता है तथा यह धर्म, जाति, सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को बिना कोई महत्व दिए सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय पर लागू होता है।*

प्रो. ए.आर. देसाई के अनुसार :- *सामुदायिक विकास योजना एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजना ग्रामों में सामाजिक और आर्थिक जीवन के रुपांतरण की प्रक्रिया प्रारंभ करना चाहती है।*

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्फ्ष्ट है कि सामुदायिक विकास एक समन्वित प्रणाली है जिसके माध्यम से ग्रामीण जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु प्रयास किया जाता है। इस योजना का आधार जन-सहभाग तथा स्थानीय साधन है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत जहाँ एक ओर शिक्षा, प्रशिक्षण,स्वास्थ्य, कुटीर उद्योगों के विकास, कृषि संचार तथा समाज सुधार पर बल दिया जाता है वहीं दूसरीओर यह ग्रामीणों के विचारों, दृष्टिकोण तथा रुचियों में भी परिवर्तन लाने का प्रयत्न करती है जिससे ग्रामीण जनता अपना विकास स्वयं कर सके।

अत: कहा जा सकता है कि सामुदायिक विकास ग्रामीण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन के रुपांतरण की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें स्थानीय लोगों द्वारा पहल की जाती है और सरकार प्रौद्योगिकी मार्गदर्शन द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान करती है। यह एक समन्वित परिवर्तन का प्रयास है जिसका लक्ष्य ग्रामों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को परिवर्तित करना है।

4.4 सामुदायिक विकास कार्यक्रम के उद्देश्य

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण भारत के सभी स्तरों के लोगों का सर्वागींण विकास करना है। इस कार्यक्रम का अन्य उद्देश्य विशाल ग्रामीण जनसमुदाय की शक्ति को गतिशील बनाना अर्थात उन्हें अपने स्वयं के विकास के लिए प्रेरित करना और आगे लाना है ताकि उनमें स्वयं सहायता की भावना उत्पन्न हो सके।

प्रो. एस.सी. दुबेने सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मुख्यतः दो उद्देश्य बतलाए हैं-

1) देश के कृषि उत्पादन में पर्याप्त बढ़ोतरी करना, संदेशवाहन व यातायात के साधनों का विकास करना तथा ग्रामीण स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के साथ ही साथ शिक्षा में उन्नति करना।

2) एक ऐसी सुव्यवस्थित सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रारंभ और निर्देशित करना जिससे गावों के सामाजिक और आर्थिक जीवन को परिवर्तित किया जा सके।

प्रो. ए. आर. देसाई ने सामुदायिक विकास योजना के उद्देश को स्पष्ट करते हुए कहा है कि सामुदायिक विकास योजना का उद्देश ग्रामीणों में एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन उत्पन्न करना है साथ ही साथ ग्रामीणों में नई आकांक्षाओं, प्रेरणाओं, प्रविधियों, विश्वासों एवं मूल्यों को ध्यान में रखते हुए विशाल मानव शक्ति को देश के आर्थिक विकास हेतु लगाना है।

डेग हैमरशोल्ड ने संयुक्त राष्ट्र संघ के अपने प्रतिवेदन में बताया कि सामुदायिक योजनाओं और राष्ट्रीय प्रसार सेवाओं का उद्देश्यकेवल लोगों को पर्याप्त भोजन, वस्त्र, आवास तथा गांवों में स्वास्थ्य एवं सफाई की सुविधाओं की व्यवस्था करना ही नहीं है बल्कि इन भौतिक संसाधनों के विकास से अधिक महत्वपूर्ण लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना है। ग्रामवासियों में अधिक समृद्धशाली और पूर्ण जीवन की महत्वाकांक्षा जागृत करना और व्यक्ति की क्षमताओं का विकास करना है ताकि वह अपने जीवन से संबंधित मामलों को स्वयं सुलझा सके।

भारत सरकार के सामुदायिक विकास मंत्रालय द्वाराइस कार्यक्रम के सात उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया है -

1) ग्रामीण जनता के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना।
2) गांवो में उत्तरदायीं एवं क्रियाशील नेतृत्व का विकास करना।
3) सभी ग्रामवासियों को आत्मनिर्भर एवं प्रगतिशील बनाना।।
4) कृषि का आधुनिकीकरण तथा ग्रामीण उद्योगों का विकास करना जिससे समस्त ग्रामीण जनता के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाया जा सके।
5) राष्ट्र के भावी नागरिकों के विकास हेतु प्रयास करना जिसमें उनके व्यक्तित्व का विकास भी शामिल है।
6) ग्रामीण शिक्षा एवं शिक्षकों के हितों की रक्षा करना।
7) ग्रामीण समुदाय के स्वास्थ्य का स्तर उन्नत करना और बीमारी से उनकी रक्षा करना।।

इन प्रमुख उद्देश्यों के अथवा कुछ अन्य उद्देश्यों का उल्लेख भी किया जा सकता है-

(अ) ग्रामीण समुदाय को श्रेष्ठतर सामाजिक एवं आर्थिक जीवन प्रदान करना।

(ब) ग्रामीण जनता का आत्मविश्वास तथा उतरदायित्व बढ़ाकर उन्हें और बेहतर नागरिक बनाने का प्रयत्न करना।

(स) ग्रामीण युवाओं को संकीर्ण दायरे के बाहर निकलकर सोचने और कार्य करने की क्षमता का विकास करना।

व्यापक तौर पर कहा जाए तो सामुदायिक विकास कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण जनता के अंदर सुषुप्तावस्था में पड़ी उस क्रांतिकारी शक्ति को जगाना है जिससे कि ग्रामीण समुदाय के लोग अपने बारे में

स्वयं सोच सके एवं अपने कार्य करने के तरीकों को बदलकर अपनी सहायता स्वयं करने की शक्ति विकसित कर सकें।

4.5 योजना का संगठन

सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरूआत में भारत सरकार के योजना मंत्रालय से संबंद्ध था परंतु इसके व्यापक क्षेत्र तथा महत्व को देखते हुए इसे एक नये निर्मित मंत्रालय सामुदायिक विकास मंत्रालय से संबंद्ध कर दिया गया। वर्तमान में सामुदायिक विकास योजना कृषि तथा ग्रमीण विकास मंत्रालय के अधीन कार्यरत है। अगर वास्तविक रूप में देखा जाए तो सामुदायिक विकास योजना का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया है तथा यह केन्द्र स्तर से लेकर ग्राम स्तर तक में विभाजित है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के संगठन के प्रत्येक स्तर निम्नानुसार है-

(1) केन्द्र स्तर – केन्द्रीय स्तर पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम कृषि एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय से संबंद्ध है। इस कार्यक्रम की प्रगति तथा नीति-निर्धारण के लिए एक विशेष सलाहकार समिति का गठन किया गया है। जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं। कृषि मंत्रीतथा नीति आयोग के सदस्य इस समिति के सदस्य होते हैं। इसके अलावा अनौपचारिक रूप से गठित एक परामर्शदात्री समिति भी होती है जिसके सदस्य लोकसभा के कुछ मनोनीत सदस्य होते हैं। सलाहकार समिति योजना की प्रगति एवं नीति के विषय में इस औपचारिक समिति से परामर्श करती है।

(2) राज्य स्तर – सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सफल बनाने का वास्तविक उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का है। राज्य स्तर पर प्रत्येक राज्य में एक समिति होती है। समिति का अध्यक्ष उस राज्य का मुख्यमंत्री तथा समस्त विकास विभागों के मंत्री इसके सदस्य होते है। विकास आयुक्त समिति का सचिव होता है जो ग्रामीण विकास से संबंधित सभी विभागों के कार्यक्रमों तथा नीतियों के बीच समन्वय स्थापित करता है। विकास आयुक्त का कार्य पहले की अपेक्षा वर्तमान समय में अधिक महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि सामुदायिक विकास योजना के लिए वित्तीय साधनों का प्रबंध 1969 के बाद से राज्य के अधीन हो गया है। विकास आयुक्त को परामर्श देने के लिए राज्यों में विधान सभा तथा विधान परिषद के कुछ मनोनीत सदस्यों की एक अनौपचारिक सलाहकार समिति होती है जो योजना की नीति एवं प्रगति के विषय में परामर्श देती है।

(3) जिला स्तर –

जिला स्तर पर योजना के समन्वय और क्रियान्वयन का पूरा उत्तरदायित्व जिला परिषद का है। जिला परिषद में जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि होते हैं, जिसमें खण्ड पंचायत समितियों के सभी अध्यक्ष तथा उस जिले के लोकसभा के सदस्य एवं विधान सभा के सदस्य भी शामिल होते हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रम को संचालित करने का कार्य जिला नियोजन समिति का है जो परिषद की नीतियों के

आधार पर इस कार्य को करती है। जिला नियोजन समिति का अध्यक्ष जिलाधीश होता है। जिला स्तर पर जिलाधीश अथवा उपविकास आयुक्त कार्यक्रम की प्रगति के लिए उत्तरदायी होता है।

(4) खण्ड स्तर – एक विकास खण्ड की स्थापना 100 से लेकर 120 गांवों अथवा 1 लाख 20 हजार ग्रामीण जनसंख्या को लेकर की जाती है। विकास खण्ड के प्रशासन को संभालने के लिए खण्ड विकास अधिकारी नियुक्त किया जाता है। खण्ड विकास अधिकारी की सहायता के लिए आठ प्रसार अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जो कृषि, पशुपालन, सहकारिता, पंचायत, ग्रामीण उद्योग, सामाजिक शिक्षा, महिला तथा शिशु कल्याण आदि विषयों से संबंधित होते हैं। क्षेत्र पंचायत खण्डस्तर पर नीतियों का निर्धारण तथा संचालन करती है। सरपंच, ग्राम पंचायतों के अध्यक्ष, स्त्रियां, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों का प्रतिनिधत्व करने वाले लोग इस समिति के सदस्य होते हैं। प्रत्येक खण्ड में विकास योजना को कार्यान्वित करने के लिए 5-5 वर्ष के दो मुख्य चरण निर्धारित किये जाते हैं।

(5) ग्राम स्तर –

गांव स्तर पर योजना के क्रियान्वयन का दायित्व ग्राम पंचायत का होता है। ग्राम पंचायत का अध्यक्ष ग्राम प्रधान होता है। लेकिन गांव स्तर पर ग्राम सेवक या ग्राम विकास अधिकारी की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जो सरकारी अधिकारियों तथा ग्राम पंचायत के बीच कड़ी का कार्य करता है। ग्राम सेवक किसी क्षेत्र का विशेषज्ञ नहीं होता लेकिन उसे सामुदायिक विकास योजना के सभी कार्यक्रमों की जानकारी होती है। साधारणतया 10 गांवों के ऊपर एक ग्राम सेवक को नियुक्त किया जाता है। ग्राम सेवक सभी नये कार्यक्रमों की जानकारी से ग्राम पंचायत को अवगत कराता है। ग्रामीणों की प्रतिक्रिया से वह अधिकारियों को अवगत करता है तथा विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के बीच समन्वय बनाए रखने का प्रयत्न करता है। ग्राम सेवक के अतिरिक्त गांव स्तर पर प्रशिक्षित दाईयाँ तथा ग्राम सेविकाएँ भी महिला तथा शिशु कल्याण के लिए कार्य करती हैं।

इस प्रकार सामुदायिक विकास योजना का संपूर्ण संगठन पांच प्रमुख स्तरों में विभाजित हैं। प्रोफेसर ए.आर. देसाई का मानना है कि पांच स्तरीय संगठन की शक्ति का प्रवाह एवं नियंत्रण नौकरशाही द्वारा ऊपर से नीचे की तरफ होता है। इसके बाद भी विभिन्न समितियों द्वारा नौकरशाही व्यवस्थाओं के प्रभावों को कम करने के सुझाव एवं प्रयत्न हमेशा से किए जाते हैं। बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर सामुदायिक विकास को स्वायत्तशासी संस्थाओं तथा पंचायतीराज संस्थाओं से जोड़ने की कोशिश की गई। वर्तमान समय में, ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, क्षेत्र या खण्ड स्तर पर क्षेत्र पंचायत, तथा जिला स्तर पर जिला पंचायत का इस योजना के क्रियान्वयन में विशेष महत्व है। इस कार्यक्रम को व्याख्यायित करने के लिए अब्राह्म लिंकन की वह उक्ति उपयुक्त बैठती है कि *जनतंत्र, जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन* है। ठीक इसी प्रकार सामुदायिक विकास कार्यक्रम जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम में विभिन्न स्तरों पर जनसहयोग को महत्व दिया गया है क्योंकि नौकरशाही एवं लालफीताशाही के दोषों से बचा जा सके।

4.6 सामुदायिक विकास योजना की उपलब्धियाँ

भारत के ग्रामीण समुदाय के चहुँमुखी विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम को आवश्यक शर्त के रूप में देखा जा रहा है। यद्यपि विगत कुछ सालों से इस कार्यक्रम की सफलता के बारे में तरह-तरह की आशंकाएँ सताने लगी थी। लेकिन इस योजना की उपलब्धि को देख कर ऐसी आशंकाओं का समाधान भी हो गया। इस बात की सत्यता इस कथन से आंकी जा सकती है कि सन् 1952 में सिर्फ कुछ विकास खण्डों में सामुदायिक विकास योजना की विभिन्न सुविधाएं प्रदान की जा रही थी लेकिन आज देश की लगभग समस्त ग्रामीण जनसंख्या को विविध एवं विभिन्न सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के वर्तमान स्वरूप में पहले की अपेक्षा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर पांचवी पंचवर्षीय योजना की अवधि तक इस कार्यक्रम को ग्रामीण विकास के पृथक एवं स्वतंत्र कार्यक्रम के रूप में ही क्रियान्वित किया गया था। तत्पश्चात ग्रामीण विकास हेतु समय-समय पर इतने अधिक व्यापक एवं विस्तृत कार्यक्रम प्रारंभ किए गए जिन्हें समुचित रूप से लागू करने और उनके बीच समन्वय स्थापित करने में कठिनाई महसूस होने लगी। इस स्थिति में यह अनुभव किया गया कि सामुदायिक विकास खण्डों के माध्यम से ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू करके इनका अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इसी संदर्भ में ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के वर्तमान उतरदायित्वों तथा उपलब्धियों को समझना आवश्यक है। इनका वर्णन इस प्रकार से है-

1) समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम –

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम एक ऐसा कार्यक्रम है जो कि प्राकृतिक संसाधनों के श्रेष्ठतम रूप में उपयोग करने हेतु अधिक विस्तृत एवं क्रमबद्ध वैज्ञानिक तथा समन्वित तरीकों को अपनाने पर जोर देता है। यह प्रत्येक व्यक्ति को समाजोपयोगी तथा उत्पादक व्यवसायों में इस प्रकार लगाने योग्य बनाना चाहता है कि वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु, पर्याप्त आय कमा सके। इस कार्यक्रम के अंतर्गत परम्परागत सिद्धान्तों, व्यवहारों तथा प्राथमिकता को काफी कुछ बदला गया है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम ग्राम विकास संबंधी बिखरे हुए कार्यक्रमों को समन्वित करने का एक व्यापक कार्यक्रम है।

'समन्वित ग्रामीण विकास' नामक अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम विश्व बैंक द्वारा एक अध्ययन के दौरान किया गया। इसका प्रयोग इस अर्थ में किया गया कि ग्रामीण जीवन का विकास इस प्रकार किया जाए कि ग्रामीणों का सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन समन्वित रूप से उन्नत हो सके।

पहले सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत 'लघु किसान विकास एजेन्सी' तथा सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम का स्थान प्रमुख था लेकिन बाद में यह महसूस किया गया कि इन कार्यक्रमों से ग्रामीण जनता के जीवन स्तर में कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हो सका है। इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए

1978-79 से ग्रामीण विकास का एक व्यापक कार्यक्रम आरंभ किया गया जिसे हम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम कहते हैं। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण बेरोजगारी को कम करना तथा ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधारात्मक प्रयास करना था जिससे वे गरीबी की सीमा रेखा से उपर उठ सके। भारत में आज भी लगभग 28 करोड़ लोग ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की सीमा रेखा से नीचे हैं। गरीबी की सीमा रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए आवश्यक सुविधाएं देने के लिए प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड द्वारा यह निश्चय किया गया है कि लगभग 600 गरीब परिवारों का चयन कर उन्हें लाभ प्रदान किया जाए। इनमें से 400 परिवारों का कृषि से सम्बंधित सुविधाओं द्वारा, 100 परिवारों को कुटीर-उद्योग धंधों द्वारा शेष 100 को अन्य सुविधाओं द्वारा लाभ दिया जाएगा। इस बड़े लक्ष्य की प्राप्ति हेतु 5 वर्ष की अवधि में 3000 परिवारों को लाभ प्रदान करने हेतु 35 लाख रूपये की धनराशि निर्धारित की गई। यह योजना देश के सभी विकास खंडों में लागू है। इस योजना व्यय में 50% हिस्सा केन्द्र तथा 50% हिस्सा राज्य सरकार का होता है। सातवीं तथा आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान यह देश का सबसे बड़ा कार्यक्रम रहा तथा इस पर लगभग 19000 करोड़ से भी अधिक रूपये का व्यय किया गया तथा इसके द्वारा 3.15 करोड़ ग्रामीण परिवारों के जीवन स्तर को गरीबी की सीमा रेखा से ऊपर उठाया जा सका।

(2) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम –

ग्रामीण गरीबी, बेकारी एवं अर्द्ध बेकारी को समाप्त करने के लिए यह योजना प्रारंभ की गई थी। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान करना जिससे इस वर्ग में आय एवं उपभोग का पुनर्वितरण किया जा सके। यह योजना अक्टूबर, 1980 से प्रारंभ की गयी। इसके अंतर्गत नए रोजगार सृजित करना, समुदाय में स्थाई संपत्ति का निर्माण करना तथा ग्रामीण गरीबों के पोषाहार के स्तर को ऊँचा उठाना तथा प्रत्येक ग्रामीण भूमिहीन, श्रमिक परिवार के कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन का रोजगार गारंटी देना आदि लक्ष्य रखा गया है। इस योजना में आधा-आधा खर्च राज्य सरकारें एवं केन्द्र सरकारें उठाती हैं। इस योजना के अंतर्गत काम करने वाले मजदूरों को न्यूनतम वेतन अधिनियम के आधार पर भुगतान किया जाता है। इससे गाँवो में रोजगार के अवसर बढ़े, लोगों के पोषाहार स्तर में सुधार हुआ तथा गांवों में सड़कों, स्कूलों एवं पंचायत के भवनों आदि का निर्माण हुआ।1 अप्रैल, 1989 से इसे जवाहर रोजगार योजना में मिला दिया गया। जवाहर रोजगार योजना का मुख्य उद्देश्य अत्यधिक निर्धन तथा गांवों के भूमिहीन किसानों के परिवारों में किसी एक सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन का रोजगार देना है। सन 1989 से 1998 तक इस योजना पर केन्द्र और राज्य सरकारों ने लगभग 30 हजार करोड़ रूपये से अधिक विनियोजन द्वारा बड़ी संख्या में रोजगार के अवसर निर्धन परिवारों को प्रदान किए गए।

बाद में ये योजनाएँ आगे चलकर राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी के नाम से जानी गई लेकिन 2 अक्टूबर 2009 को इसका पुन: नामकरण कर महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम कर दिया गया।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा/MNREGA) भारत में लागू एक रोजगार गांरटी योजना है। जिसे 25 अगस्त 2005 को विधान द्वारा अधिनियमित किया गया। यह योजना प्रत्येक वित्तीय वर्ष में किसी भी ग्रामीण परिवार के उन वयस्क सदस्यों को 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराती है जो 220 रूपये प्रतिदिन की सांविधिक न्यूनतम मजदूरी पर सार्वजनिक कार्य संबंधित अकुशल मजदूरी करने के लिए तैयार है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों की क्रयशक्ति को बढ़ाना था। मुख्य रूप से ग्रामीण भारत में रहने वाले लोगों के लिए अर्द्ध कौशलपूर्ण कार्य चाहे वे गरीबी रेखा से नीचे हो या न हों। नियत कार्यबल का करीब एक तिहाई भाग महिलाओं से निर्मित है।

मनरेगा ग्रामीण विकास और रोजगार के दोहरे लक्ष्य को प्राप्त करता है। मनरेगा यह उल्लेख करता है कि कार्य को ग्रामीण विकास गतिविधियों के एक विशिष्ट सेट की ओर उन्मुख होना चाहिए जैसे जल संरक्षण और संचयन, वनीकरण, ग्रामीण संपर्क तंत्र, बाढ़ नियंत्रण और सुरक्षा तटबंधों का निर्माण और मरम्मत आदि।/नए टैंक/तालाबों की खुदाई, रिसाव टैंक, और छोटे बांधो के निर्माण को भी महत्व दिया जाता है। कार्यरत लोगों को भूमि समतल, वृक्षारोपण जैसे कार्य भी प्रदान किये जाते हैं।

(स्त्रोत – http:hi.Wikipedia.org/wiki - महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम)

(3) सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए कार्यक्रम –

भारत में अनेक हिस्से ऐसे हैं जहां अक्सर सूखे की समस्या उत्पन्न होती रहती है। ऐसे हिस्सों के लिए उपर्युक्त कार्यक्रम इस उद्देश्य से प्रांरभ किए गए हैं कि किसानों को ऐसे फसलों की जानकारी दी जा सके जो कम पानी में भी उत्पन्न हो सकें। जल स्त्रोतों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सके। वृक्षारोपण में वृद्धि की जा सके तथा पशुओं की अच्छीनस्ल को विकसित करके ग्रामीण निर्धनता को कम किया जा सके। इस समय 74 जिलों के 557 विकास खण्ड़ों में इस कार्यक्रम को चलाया जा रहा है।

(4) जनजातीय विकास की अग्रगामी योजना –

इस योजना के तहत बिहार, झारखण्ड़, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश तथा उड़ीसा के कुछ आदिवासी बहुल क्षेत्रों में जनजातीय विकास के प्रयत्न किए गए हैं। इस योजना द्वारा संचार प्रशासन, आर्थिक विकास, कृषि तथा संबंधित क्षेत्रों में जनजातीय समस्याओं का गहन अध्ययन करके कल्याण कार्यक्रमों को लागू किया जा रहा है। विकास खण्ड़ों के माध्यम से लोगों को पशु खरीदने, भूमि सुधार करने, बैलगाि डयों की मरम्मतकरने और दस्तकारी से संबंधित कार्यों हेतु ऋण दिलवाने में मदद की जाती है।

(5) पर्वतीय विकास की अग्रगामी योजना –

पर्वतीय क्षेत्रों के किसानों के चहुँमुखी विकास तथा उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए हिमाचल प्रदेश उत्तराखंण्ड (तत्कालीन उत्तर प्रदेश) तथा तमिलनाडु में यह कार्यक्रम आरंभ किया गया। प्रारंभ में इसे केवल पाँचवी पंचवर्षीय योजना की अवधि तक ही चालू रखने का प्रावधान था। लेकिन बाद में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में इसकाविस्तार होता चला गया।

(6) मरूस्थल विकास कार्यक्रम –

मरूस्थल विकास कार्यक्रम की शुरूआत भारत में 1977-78 से की गई। इसका उद्देश्य सामुदायिक विकास खण्ड़ों के माध्यम से रेगिस्तानी, बंजर तथा बीहड़ क्षेत्रों की भूमि पर अधिक से अधिक वन लगाना, जल स्रोतों को ढूँढ़कर उनका उपयोग करना, गांव में बिजली की व्यवस्था कर ट्यूबवेल को प्रोत्साहन देना तथा पशुधन और बागवानी का विकास करना है। इस योजना के प्रारंभ से लेकर सन् 1997 तक सामुदायिक विकास खण्ड़ों के द्वारा कुल 982 करोड़ रूपया खर्च किया जा चुका था।

(7) पौष्टिक आहार कार्यक्रम –

यह कार्यक्रम विश्वस्वास्थ्य संगठन तथा यूनिसेफ की सहायता से केन्द्र सरकार द्वारा संचालित किया जाता है। इसका उद्देश्य प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर स्कूली बच्चों के लिए दिन में कम से कम एक बार पौष्टिक आहार की व्यवस्था करना है। आँगनवाड़ी केन्द्रों तथा आशामित्रों के माध्यम से गर्भवती महिलाओं के पौष्टिक आहार की व्यवस्था की जा रही है। पौष्टिक आहार की समुचित जानकारी देने के लिए ग्राम पंचायतों, युवक तथा महिला मण्डलों की भी सहायता ली जाती है। भारत में लगभग अब तक 2556 विकास खण्ड़ ग्रामीण समुदाय के लिए यह सुविधा प्रदान कर रहे है तथा भविष्यमें इस कार्यक्रम का प्रसार और अधिक खण्ड़ों में करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं।

(8) पशुपालन –

ग्रामीण गरीबी और बेरोजगारी को दूर करने हेतु पशुपालन को बढ़ावा दिया जा रहा है। पशुओं की नस्लों में सुधार करने, ग्रामीणों के लिए अच्छी नस्ल के पशुओं की आपूर्ति करने में भी विकास खण्ड़ोंका योगदान निरंतर बढ़ता जा रहा है। अब प्रत्येक विकास खण्ड़ द्वारा औसतन एक वर्ष में उन्नत किस्म के 20 पशुओं तथा400 मुर्गियों की आपूर्ति की जाती है तथा वर्ष में औसत 530 पशुओं का गर्भाधान उन्नत तरीके से कराया जाता है। साथ ही साथ बकरी पालन, मत्स्य पालन, भेड़पालन इत्यादि को भी सरकार द्वारा (निरंतर) प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में दुग्धउत्पादन, मांस उत्पादन इत्यादि बढ़ा है जिससे कृषि क्षेत्र से संबंधित आय में भी बढ़ोतरी हुई है।

(9) ऐच्छिक संगठनों को प्रोत्साहन –

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की सफलता का मुख्य पहलू इस योजना में ऐच्छिक संगठनों की सहभागिता हैं। सामुदायिक विकास खण्ड़ों द्वारा विभिन्न मण्डल जैसे महिला मंडल, युवा मंडल, स्वयं सहायता समूह, क्लबों इत्यादि जैसे ऐच्छिक संगठनों पर विशेष बल दिया जा रहा है। इस कार्य हेतु इन

संगठनों के पंजीकरण के नियमों को आसान बनाना, सदस्यों को प्रशिक्षण देना, विशेष कार्यक्रमों के निर्धारण में सहायता देना, इनकी कार्य प्रणाली का अवलोकन करना, रखरखाव हेतु अनुदान देना, महिला मण्डलों को प्रेरणा पुरस्कार देना, कुछ ग्रामीण महिलाओं का चुनाव कर नेतृत्व का प्रशिक्षण प्रदान करना आदि सुविधाएं हैं जिनके माध्यम से ऐच्छिक संगठन ग्रामीण विकास में अपनी महती भूमिका निभा सकते हैं।

(10) स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन –

भारत में स्वास्थ्य एवं पोषण की प्रमुख समस्या है साथ ही साथ जनसंख्या में वृद्धि हुई है। अन्य देशों की तुलना में भारत में आज भी नागरिकों को प्राप्त भोजन, निवास, मनोरंजन, शिक्षा एवं चिकित्सा की सुविधाएँ कम हैं। यही कारण है कि यहाँ लोगों में असमय ही वृद्धावस्था के लक्षण प्रकट होने लगते हैं और वे दुर्बल, रुग्ण और क्षीणकाय दिखाई देते हैं। केन्द्रीय स्वास्थ्य क्षेत्र में मलेरिया, क्षयरोग, कुष्ठरोग तथा एड्स जैसे संक्रामक रोगों पर नियंत्रण चिंता का प्रमुख विषय बना हुआ है। मृत्युदर में गिरावट आई है, औसत उम्र बढ़ी है और महामारियाँ भी समाप्ति की ओर हैं। मगर संक्रामक-असंक्रामक रोगों जैसे हृदयरोग, कैंसर, मोतियाबिन्द से पैदा होने वाली नेत्रहीनता तथा मधुमेह इत्यादि में वृद्धि हुई हैं। संक्रामक-असंक्रामक रोगों की इस विभीषिका से निपटने के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय ने मलेरिया, क्षय, कुष्ठ रोग, नेत्रहीनता, एड्स और कैंसर इत्यादि से निपटने हेतु देश में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन तथा शहरी स्वास्थ्य मिशन जैसे कार्यक्रम चलाए गए हैं। संक्रामक रोगों पर नजर रखने और उन्हें फैलने से रोकने के लिए भी योजनाएँ लागू की जा रही हैं। केन्द्रीय अस्पतालों की आपात सेवाओं के विस्तार की योजना तैयार की गई है जो क्रियान्वयन के विभिन्न चरणों में हैं। केन्द्रीय स्वास्थ्य क्षेत्र में संस्थानों और संगठनों के नवीकरण और आधुनिकीकरण की योजनाएँ, औषधि के गुणवत्ता नियंत्रण और भोजन की सुरक्षा को लक्ष्य करके तैयार की गई हैं। चिकित्सकीय और अर्द्ध चिकित्सकीय शिक्षा अनुसंधान और रोगियों की देख-रेख में लगे केन्द्रीय संस्थानों को सशक्त बनाया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने और वायु प्रदूषण रोकने, गंदी बस्तियों के सुधार जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

(11) शिक्षा तथा प्रशिक्षण –

सामुदायिक विकास योजना द्वारा ग्रामीण शिक्षा के व्यापक प्रयत्न किए गए हैं। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन 1988 में शुरू किया गया। जिसका उद्देश्य पूर्णसाक्षरता अर्थात् सन् 2005 तक 75% के न्यूनतम स्थाई स्तर को प्राप्त करना है। इसके अतिरिक्त सर्व शिक्षा अभियान, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ, शिक्षा का अधिकार, मेक इन इंडिया, कौशल विकास जैसे मिशन, साक्षरता तथा प्रशिक्षण के लिए कार्य कर रहे हैं। वर्तमान में तकनीकी शिक्षा पर विशेष बल दिया जा रहा है। समय-समय पर प्रदर्शनियों तथा ग्रामीण नेताओं के लिए प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन कर उन्हें कृषि और दस्तकारी की व्यावहारिक शिक्षा दी

जा रही है। वर्तमान में सामुदायिक विकास खण्ड़ों द्वारा प्रौढ़ शिक्षा का विस्तार करके ग्रामीण साक्षरता में वृद्धि करने का प्रयास किया जा रहा है।

ग्रामीण समुदाय के अतिरिक्त विद्यालय के शिक्षकों, पंचायत के सदस्यों तथा ग्रामीण युवकों के लिए भी विशेष गोष्ठियों और शिविरों का आयोजन किया जाता है। जिससे लोगों में शिक्षा के प्रति चेतना उत्पन्न करके विभिन्न योजनाओं से लोगों को परिचित कराया जा सके।

उपर्युक्त विवरणों एवं तथ्यों से सूपष्ट है कि विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की उपलब्धियाँ न केवल संतोषप्रद है बल्कि अनेक क्षेत्रों में निर्धारित लक्ष्य से भी अधिक है।

4.7 योजना की प्रगति का मूल्यांकन

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के अगर समस्त पहलुओं को देखा जाए तो एक प्रश्न उठता है कि क्या भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम सफल हुआ है? और यदि इसका उत्तर है नहीं तो इसके प्रमुख कारण क्या हैं? इस प्रश्न की वास्तविकता को समझने के लिए योजना के प्रत्येक पहलू को ध्यान में रखकर इसका निष्पक्ष मूल्यांकन करना होगा।

सामुदायिक विकास योजना से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों का मूल्यांकन समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने किया है। इन अध्ययनों से एक बात यह निश्चित हो जाती है कि इस कार्यक्रम ने हीनता की ग्रंथि से ग्रस्त करोड़ों ग्रामीण के मन:स्थल को विकास के प्रति जागरूक ही नहीं किया है बल्कि उनके मन में उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य की भावना को प्रबल किया है। इस दृष्टिकोण से इस कार्यक्रम को पूर्णत: असफल कह देना उचित और न्यायपूर्ण नहीं होगा। फिर भी इस योजना पर जितना धन व्यय किया गया तथा जो लक्ष्य निर्धारित किए गए थे उनकी अपेक्षा में हमारी सफलताएँ बहुत कम हैं। योजना के शुरूआत में ही यह स्पष्ट कर दिया गया था कि कार्यक्रम में प्रत्येक स्तर पर जन सहभागिता को महत्व देना होगा। लेकिन व्यावहारिक तौर पर योजना के शुरूआत से ही इसमें जनसहभागिता का नितान्त अभाव रहा है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के माध्यम से समाज के सभी वर्गों तथा स्तरों के लोगों को विकास के समान अवसर प्रदान करते हुए सांस्कृतिक आधुनिकीकरण का दर्शन सामने रखा गया। आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के क्षेत्र में किसी प्रकार का भेदभाव न हो इस आधार पर यह दर्शन आधारित था। लेकिन इसकी सत्यता यह है कि इस योजना के अंतर्गत जिन लोगों को लाभ प्राप्त हुआ वे अधिकांशत: समाज या ग्राम के अभिजात वर्ग के लोग हैं। इसका अर्थ यह है कि यह कार्यक्रम जिन मूलभूत सिद्धान्तोंको लेकर प्रारंभ किया गया था उन्हें व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सका है। कार्यक्रम में ग्रामीण समुदाय के लिए कृषि एवं उससे संबंधितक्षेत्रों में विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी थी क्योंकि इसके अभाव में ग्रामीणों के जीवन स्तर में वांछित परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। लेकिन फिर भी कृषि एवं इससे संबंधित क्षेत्रों पर ध्यान नहीं दिया जा सका। इसका कारण अधिकारियों तथा ग्राम सेवकों का किसानों के प्रति घोर उदासीनता का होना है। इसके अलावा इस कार्यक्रम की

असफलता के पीछे कार्यक्रम से संबंधित अधिकारियों तथा कर्मचारियों में ग्रामीण अनुभव तथा दूरदर्शिता का स्पष्ट अभाव देखने को मिला।

विभिन्न विद्वानों तथा मूल्यांकन समितियों ने इस योजना की समीक्षा की है प्रो. ए.आर. देसाई ने आठ मुख्य परिस्थितियों के आधार पर समीक्षा करने की कोशिश की है जो इस प्रकार है-

1) इसकी प्रकृति नौकरशाही जैसी विशेषताओं से युक्त है।
2) सभी निर्णय उच्च स्तर से निम्न स्तर के लिए प्रशासकीय आदेशों के तहत संप्रेषित किए जाते हैं।
3) संगठन के किसी भी स्तर पर आधारभूत सिद्धान्तों के क्रियान्वयन का अभाव रहा है।
4) सरकारी विभागों की तरह ही सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रशासन के प्रति जनमानस में अधिक विश्वास पैदा नहीं हो सका।
5) कार्यकर्ताओं में सेवाभाव का अत्यधिक अभाव रहा।
6) विभिन्न विभागों के कर्मचारियों के अधिकारों एवं कार्यों को उनके स्तर और प्रतिष्ठा से जोड़ना एक बड़ी भ्रांति रही है।
7) अनेक प्रशासकीय विभागों में कार्यों के दोहरीकरण की वजह से न केवल कार्यों का बोझ बढ़ा है अपितु विभिन्न कार्यों के प्रति कार्यकर्ताओं में कार्य दायित्व का विभाजन भी समुचित रूप से नहीं हो पाया।
8) कर्मचारियों में सामाजिक सेवा की निपुणता कम होने के साथ उनके साधन भी बहुत सीमित हैं।

यह दोष योजना के मॉडल (प्रारूप) से संबंधित है न कि अधिकारियों की निष्ठा या कार्य कुशलता से। सामुदयिक विकास कार्यक्रम का सम्पूर्ण मॉडल (प्रारूप) मुख्य रूप से जनता की सहभागिता पर आधरित है। इसके अलावा जनसामान्य में उदासीनता के कारण एवं शिक्षा की कमी की वजह से सरकारी तंत्र को ग्रामीण समुदाय से कोई सहयोग प्राप्त नहींहो सका।

डॉ. श्यामाचरण दुबे ने सामुदायिक विकास योजना का वैज्ञानिक मूल्यांकन करते हुए इसकी संरचना से संबंधित चार मुख्य दोषों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है-

i. ग्रामीण समुदाय के अधिकांश भागों की सामान्यउदासीनता ।
ii. योजना के क्रियान्वयन में अधिकारियों तथा बाहरी व्यक्तियों के प्रति संदेह तथा अविश्वास।
iii. संचार के साधनों की विफलता।
iv. परम्पराओं तथा सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव।

भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता अथवा धीमी प्रगति के लिए उत्तरदायी कारकों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

(1) जन सहभागिता का अभाव -

सामुदायिक विकास कार्यक्रम हेतु जनसहभागिता अत्यंत आवश्यक थी, इसे कार्यक्रम के प्रत्येक स्तर पर लागू किया गया था। लेकिन व्यावहारिक रूप से इसका क्रियान्वयन नहीं किया जा सका। इस कार्यक्रम में श्रमदान पर अत्यधिक जोर दिया गया था लेकिन भारतीय गांवों की आर्थिक और सांस्कृतिक विविधता के कारण तथा टुकड़ों में विभाजित ग्रामीण समुदाय से अपेक्षित जनसहयोग प्राप्त नहीं हो सका। डॉ. श्यामाचरण दुबे का कहना है कि गांवों में ऊँची सामाजिक और आर्थिक स्थिति वाले लोगों ने श्रमदान द्वारा सड़कों के निर्माण और मरम्मत की योजना में काफी रूचि ली लेकिन स्वयं इस वर्ग ने कोई योगदान नहीं किया। गांव के निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले लोगों ने शारीरिक श्रम के रूप में श्रमदान किया। श्रमदान की अवधि में यह वर्ग उतने समय की मजदूरी से भी वंचित रह गया जबकि योजना से इस वर्ग को कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं पहुँच सका। इसलिए श्रमदान को भी कुछ लोगों द्वारा बेगार प्रथा की पुनरावृति माना जाने लगा। इसके विपरीत समाज के उच्च आर्थिक वर्ग को जिसने श्रमदान में योगदान नहीं किया था उसे आर्थिक रूप से अत्यधिक लाभ प्राप्त हुआ। साथ ही इस वर्ग को अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने, नेतृत्व को दिखाने का अवसर मिला। इससे यह स्पष्ट है कि विकास कार्यक्रमों में जब तक समाज के निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले वर्गों को वास्तविक लाभ नहीं मिलेगा तब तक इस योजना को अधिक प्रभावपूर्ण नहीं बनाया जा सकता।

(2) **कार्यक्रम क्रियान्वयन में जल्दबाजी** – सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सफलता बहुत हद तक उसके संगठनात्मक पहलू से संबंधित थी। देश में इस योजना को सम्पूर्ण विस्तार देने की जल्दबाजी की गई तथा योग्य एवं कुशल कार्यकर्ताओं के अभाव में इस कार्यक्रमके क्रियान्वयन की जिम्मेदारी सामान्य कार्यकर्ताओं के हाथों में सौंप दी गई। कार्यक्रम का विस्तार उच्च स्तर से निम्न स्तर तक था लेकिन उच्च स्तर के अधिकारी जनसामान्य की भावनाओं तथा आवश्यकताओं से अनभिज्ञ ही बने रहे। इसके फलस्वरूप नीति निर्माण में ही दोष उत्पन्न हो गया। सम्पूर्ण योजना फाइलों और कागजों में सिमटकर रह गई। जनसाधारण को इससे कोई लाभ नहीं मिला और न ही इन्होंने इसमें कोई सहयोग देना उचित समझा।

(3) कार्यक्रम में नौकरशाही का वर्चस्व – सामुदायिक विकास योजना के प्रत्येक स्तर पर नौकरशाही का बोलबाला रहा। योजना में कार्यरत उच्च स्तर के अधिकारी निम्नस्तरीय अधिकारियों को तो आदेश देते रहे लेकिन अपने नीचे कार्यरत ग्रामीण स्तर के अधिकारियों की अनुभवसिद्ध तथा विश्वसनीय बातें सुनने को तैयार नहीं थे। फलस्वरूप ग्राम विकास अधिकारी या ग्राम सेवक जिन पर योजना की सफलता निर्भर थी, वे गांव के प्रभावशाली व्यक्तियों की चाटुकारिता में लग गए।

(4) प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं का अभाव– इस योजना में शुरूआत से ही प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं का नितांत अभाव रहा। सरकार ने कुछ कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण केन्द्र खोले तथा विशेष शिविरों का आयोजन किया लेकिन यह व्यवस्था अपर्याप्त थी। इसका कारण यह था कि जितनी तेजी से विकास खण्ड़ों की संख्या में वृद्धि हो रही थी उतनी तेजी से कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षितनहीं किया जा रहा

था। जिसके कारण विभिन्न स्तरों पर नियुक्त अधिकारी, कार्यकर्ता तथा कर्मचारी अपने दायित्वों का निर्वहन सही तरीके से नहीं कर पाए।

(5) स्थानीय नेतृत्व का अभाव – सामुदायिक विकास कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य स्थानीय नेतृत्व का विकास करना था। लेकिन प्रांरभ से ही इसकी तरफ ध्यान नहीं दिया गया। वास्तव में ग्रामीण समुदाय में व्याप्त अशिक्षा, अज्ञानता, सामाजिक-आर्थिक असमानता, भाषागत भिन्नताएं, उच्च जातियों द्वारा किए गए शोषण के कारण नियोजित प्रयास किए बिना स्थाई नेतृत्व का विकास नहीं हो सका तो जनसहभागिता प्राप्त होने का कोई प्रश्न ही नहीं था। सहभागिता की अनुपस्थिति में थोड़े-से प्रशिक्षित और कुशल कार्यकर्ता भी विभिन्न कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी ढंग से लागू नहीं कर सके।

(6) सांस्कृतिक कारक – भारतीय गांवों में कुछ ऐसी सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी मौजूद रही हैं जिनके कारण सामुदायिक विकास कार्यक्रम की प्रगति बहुत सीमित हो गई। उदाहरण के लिए उदासीन तथा भाग्य प्रधान स्वभाव, कार्य करने के पंरपरागत तरीके, धार्मिक विश्वास ,तरह-तरह के कर्मकाण्ड और सरकारी अधिकारियों के प्रति अविश्वास आदि ऐसे कारक रहे हैं जो जन सहभागिता को कमजोर बनाते रहे।

(7) प्रभावशाली संचार का अभाव – सामुदायिक विकास योजना के अंतर्गत संचार के परम्पागत तथा आधुनिक दोनों तरीकों को साथ-साथ उपयोग किया गया लेकिन कार्यक्रम को सफल बनाने में ये अधिक प्रभावपूर्ण सिद्ध नहीं हो सके। इसका कारण संचार का दोष पूर्ण उपयोगकिया गया।

4.8 सारांश -

प्रस्तुत अध्याय में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की अवधारणा को स्फ्ट करते हुए इसके उद्देश्यों की चर्चा की गई है। सामुदायिक विकास योजना के विकेन्द्रीकरण की चर्चा करते हुए इसके संगठन को केन्द्र स्तर, राज्य स्तर, जिला स्तर, क्षेत्रस्तर तथा ग्राम स्तर तक विभाजित किया गया है। तत्पश्चात अबतक हुए सामुदायिक क्किास कार्यक्रमों की उपलब्धियों की भी चर्चा की गई है। इसके बाद योजना के प्रगति का मूल्यांकन भी किया गया है। सामुदायिक विकास योजना की संरचना तथाइसके क्रियान्वयन में हुए आधारभूत दोष के कारण ही इस योजना को आशातीत सफलता नहीं मिल पाई। इस असफलता के पीछे कोई एक कारण जिम्मेदार नहीं है। भारतीय ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए योजना का प्रमुख उत्तरदायित्व, उन अभिकर्ताओं का था, जिनके ऊपर योजना के निर्देशन तथा क्रियान्वयन का भार था। इन्हीं लोगों की अदूरदर्शिता, संगठनात्मक कमजोरियों तथा नौकरशाही प्रवृतियों के कारण यह योजना ग्रामों का सर्वांगीण विकास करने में असफल रही। इसकी असफलता के बावजूद यह कहा जा सकता है कि इस कार्यक्रम के परिणामस्वरूप ग्रामीण समुदाय की मनोवृत्तियों और दृष्टिकोण में परिवर्तन भी सामने आया है। भविष्य में यदि योजना को सफल बनाना होगा तो योजना के लिए उत्तरदायी स्थानीय कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करनी होगी। नीति निर्माण में स्थानीय

आवश्यकताओं को प्रमुख स्थान दिया जाए तथा संचार व संप्रेषण में अत्यधिक वृद्धि की जाए जिससे ग्रामीण समुदाय की सहभागिता में वृद्धि होसके। योजना के लक्ष्यों को भी व्यावहारिक रूप से प्राप्त किया जा सके। वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस बात का ध्यान रखना होगा कि योजना के क्रियान्वयन का निर्देश नीचे से ऊपर की ओर हो न कि ऊपर से नीचे की ओर। इसी पर सामुदायिक विकास योजना की सफलता निर्भर है।

4.9 बोध प्रश्न -

1. सामुदायिक विकास की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के उद्देश्यों को रेखांकित कीजिए।
3. भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की असफलता के कारणों की विवेचना कीजिए।
4. योजना के संगठन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

4.10 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

1. गुप्ता, एम.एल एवं शर्मा, डी.डी (2004). *भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र.* आगरा : साहित्य भवन पब्लिकेशन.

2. तेज, संगीता. एवं पाण्डेय, तेजस्कर (2006). *समाजकार्य.* लखनऊ: जुबली एच फाउंडेशन.

3. Agarwal, Amit (2007). *Rural Society In India.* Delhi : Vivek Prakashan.

4. Dube, S.C. (1967). *India`s Changing Villages.* Bombay : Allied Publishers Private Limited.

5. Patnaik, N. (1969). *Caste and Social Change.* Hyderabad : National Institute of Community Development.

6. Ministry of Community Devolpment *A guide to Community development.* New Delhi: GoI.

खंड 2

सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक संगठन

इकाई-1

सामुदायिक संगठन: संकल्पना

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 सामुदायिक संगठन: अर्थ तथा परिभाषाएं
1.3 सामुदायिक संगठन के प्रमुख चरण
1.4 सामुदायिक संगठन की मान्यताएं
1.5 समाज कार्य में सामुदायिक संगठन
1.6 सारांश
1.7 बोध प्रश्न
1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप –

- सामुदायिक संगठनके अर्थ, परिभाषा से परीचित हो सकेंगे।
- सामुदायिक संगठन केप्रमुख चरण एवं मान्यता को स्पष्ट कर सकेंगे।
- समाज कार्य में सामुदायिक संगठन की भूमिका को विर्श्लेषित का सकेंगे।

1.1 **प्रस्तावना**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक प्राणी होने के नाते समुदाय का प्रत्येक मनुष्य के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समुदाय का सदस्य अवश्य होता है। समुदाय लोगों का एक समूह होता है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है एवं उनमें 'हम की भावना' पायी जाती है। समाज कार्य की वह प्राथमिक प्रणाली तथा प्रमुख प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत समुदाय के सदस्यों को आपस में एकत्रित कर उनकी सामुदायिक कल्याण व विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को खोज निकालने तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिएआवश्यक साधनों को जुटाने की योग्यता का उनमें विकास किया जाता है जिसके फलस्वरूप वे अपनी समस्याओं का निरूपण कर प्रगति व विकास के पथ पर अग्रसर हो सके, सामुदायिक संगठन कहलाती है।

1.2 सामुदायिक संगठन: अर्थ तथा परिभाषाएं

यह समाज कार्य की प्रमुख प्रक्रिया है, जिसमें एक प्रशिक्षित समाज कार्यकर्ता द्वारा समुदाय के सदस्यों की सहायता कुछ इस प्रकार से की जाती है कि लोग अपनी समस्याओं के समाधानकी तलाश स्वयं से कर सकें। सामुदायिक संगठन एक परिवर्तनशील व परिवर्धनशील संकल्पना है और इसी कारण इसकी सर्वमान्य परिभाषा अभी तक नहीं दी जा सकी है। विभिन्न विद्वानों ने इसे अनेक तरह से परिभाषित करने का प्रयास किया है–

- ❖ **पैटिट-** "सामुदायिक संगठन एक समूह के लोगों की उनकी सामान्य आवश्यकताओं को पहचानने तथा इन आवश्यकताओं कीपूर्ति में सहायता करने के रूप में उत्तम प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है।"
- ❖ **फ्रीडलैण्डर-** ''सामुदायिक संगठन किसी भौगलिक क्षेत्र में समाज कल्याण आवश्यकताओं तथा सामुदायिक संसाधनों के बीच उन्तरोन्तर अधिक प्रभावशाली समायोजन स्थापित करने वाली समाज कार्य प्रक्रिया है।''
- ❖ **डनहम-** ''समाज कल्याण के लिए सामुदायिक संगठन का अर्थ एक भौगोलिक क्षेत्र या कार्यक्षेत्र के समाज कल्याण संसाधनों में समायोजन लाने तथा बनाये रखने की प्रक्रिया से है।''
- ❖ **लेन-** "सामुदायिक संगठन का सामान्य उद्देश्य समाज कल्याण आवश्यकताओं और समाज कल्याण साधनों के मध्य प्रगतिशील एवं अधिक प्रभावशाली समायोजन लाना और उसे बनाए रखना है। इसका तात्पर्य है कि सामुदायिक संगठन का संबंध-

  1. आवश्यकताओं की खोज और परिभाषा
  2. सामाजिक आवश्यकताओं और अयोग्यताओं की जहां तक संभव हो रोकथाम व समाप्ति
  3. परिवर्तित होती आवश्यकताओं को अच्छे ढंग से पूरा करने के लिए साधनोंके समुचित उपयोग से है।"
- ❖ **सैण्डरसन एण्ड पोल्सन-** **"**सामुदायिक संगठन का उद्देश्य समूहों तथा व्यक्तियों के मध्य ऐसे सम्बन्ध विकसित करना है जिससे उन्हें ऐसी सुविधाओं तथासमस्याओं का निर्माण करने तथा उन्हें बनाये रखने के लिए एक साथ कार्य करने में सहायता मिलेगी तथा जिसके माध्यम से समुदाय के सभी सदस्योंके समान कलयाण में अपने उच्चतम मूल्योंका अनुभव कर सके।"
- ❖ **रॉस-** ''सामुदायिक संगठन ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कई लोग अपनी साक्षी आवश्यकताओं और उद्देश्यों की पहचान करते है, इन आवश्यकर्ताओं तथा उद्देश्योंको क्रम में रखते है। इन आवश्यकताओं तथा उद्देश्योंके लिए विश्वास एवं कार्य की इच्छा का विकास करते है, इनसे निपटने के लिए संसाधनों का पता लगाते है, उनके एवं सहयोगात्मक प्रवृत्तियों एवं क्रिया व्यवहारों का विकास एवं विस्तार करते है।''

❖ **लिन्डमैन-** वर्ष 1921 में प्रकाशित लिन्डेमैन की पुस्तक, उत्तरी अमेरिका की पहली ऐसी पुस्तक है जिसमें सर्वप्रथम सामुदायिक संगठन विषय को प्रस्तुत किया गया। लिन्डेमैन ने सामुदायिक संगठन को संस्थाओं उन चरणों के रूप में परिभाषित किया जिनसे समुदाय की ओर से अपने व्यवहारों व मामलों को लोकतांत्रिक विधि से नियंत्रित करने तथा पारस्परिक मान्यता प्राप्त अंतर्संबंधों के उपायों द्वारा इनके विशेषज्ञों, संगठनों, एजेंसियों तथा की ओर से उच्चतम सेवाएं संकलित करने का चेतनापूर्ण प्रयास किया जाता है।

❖ **मरे जी. रोस-** सामुदायिक संगठन पर मरे जी रोस का लेखन संभवत विशिष्ट कोटि का था। उनके लेखन का अमेरिका में सामुदायिक संगठन केअभ्यास को लोकप्रिय बनाने में अभूतपूर्व योगदान रहा। उनका मानना था कि सामुदायिक संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समुदाय अपनी आवश्यकताओं अथवा उद्देश्यों के लिए काम करने का विश्वास अर्जित करता है और इन आवश्यकताओं और उद्देश्यों को पूरा करने के लिए संसाधन (बाहरी और आंतरिक) व साधन तलाशता है, उनके बारे में कार्यवाही करता है, और साथ ही समुदाय में सहयोगात्मक व सहभागी अभिवृतियों तथा व्यवहारों का विस्तार व विकास करता है। उन्होंने सामुदायिक संगठन के तीन प्रमुख दृष्टिकोणोंकी पहचान की है। -

i. **विनिर्दिष्ट विषयवस्तु दृष्टिकोण:** इसके द्वारा कोई कार्यकर्त्ता अथवा संगठन किसी समस्या अथवा समस्याओं के समुच्चय को पहचानकर उनका समाधान प्रस्तुत करने के लिए किसी कार्यक्रम का नियोजन करता है ।
ii. **सामान्य दृष्टिकोण:** इसके द्वारा कोई समूह, संगठन अथवा परिषद विशिष्ट क्षेत्र में सेवाओं के समन्वित तथा सुनियोजित विकास का प्रयत्न करता है ।
iii. **प्रक्रिया दृष्टिकोण**: इसका उद्देश्य विषयवस्तु (सुविधाएं या सेवाए) नहीं, बल्कि एक प्रक्रिया का निर्वाह करना होता है जिसमें समुदाय से संबन्धित लोगों द्वारा अपनी आवश्यकताओं तथा समस्याओं को पहचानने तथा उसके बारे में कार्यवाही करना सम्मिलित होता है।

❖ **हार्पर-** हार्पर (1959) के अनुसार सामुदायिक संगठन समाजकल्याण के निरन्तर अधिकाधिक संसाधनों और सामुदायिक आवश्यकताओं के बीच प्रभावी समायोजन बनाने का एक प्रयास होता है। यह परिभाषा इन मूल बिन्दुओं से संबन्धित है

i. आवश्यकता की खोज और निर्धारण
ii. सामुदायिक आवश्यकताओं तथा अक्षमताओं काउन्मूलन व रोकथाम
iii. संसाधनों तथा आवश्यकताओं का सम्बन्ध और
iv. बदलती हुई आवश्यकताओं काबेहतर सामना करने के उद्देश्य से लगातार पुन: समायोजन ।

❖ **यंगहस्बैण्ड-** यंगहस्बैण्ड ने सामुदायिक संगठन को किसीस्थानीय समुदाय के लोगों की सामाजिक आवश्यकताओं को जानने, उन्हें पूरा करने के सर्वाधिक व्यावहारिक पक्षों पर विचार करने और जहाँ

तक हो सके उपलब्ध संसाधनों के द्वारा संभव हो, ऐसा करने के लिए प्रवृत होने के लिए सहायता प्रदान करने की दिशा में लक्षित प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है।

- ❖ **पीटर बाल्डॉक-** पीटर बाल्डॉक की सामुदायिक कार्य की संकल्पना रॉस तथा यंगहस्बैंड द्वारा दी गई सामुदायिक संगठन की परिभाषा के बहुत सन्निकट है । उनका मत है कि सामुदायिककार्य लोगों द्वारा अपनी समस्याओं तथा उनसे संबन्धित अवसरों की पहचान करने और इनसमस्याओं तथा अवसरों का स्वयं द्वारा निर्धारित साधनों से ही सामना करने के उद्देश्य से सामूहिक कार्यवाही करने हेतु यथार्थपरक निर्णयों पर पहुँचने के लिए व्यावहारिक गतिविधि की एक श्रेणी है। सामुदायिक कार्यकर्ता उन्हें निर्णय करने, क्षमताओं तथास्वतंत्रता का विकास करने में उनकी सहायता करने की प्रक्रिया में भी समर्थन प्रदान करता है।
- ❖ **क्रेमर तथा स्पेक्ट-** क्रेमर व स्पेक्ट ने सामुदायिक संगठन को बिचौलिये के रूप में मध्यस्थता का एक तरीका माना है जिसके द्वारा एक व्यावसायिक परिवर्तनकारक किसी सामुदायिक कार्यवाही व्यवस्था, जिसमें व्यक्ति, समूह, संगठन शामिल होते हैं और मूल्योंकी एक लोकतांत्रिक संरचना के भीतर सामुदायिकसमस्याओं से निवारण के उद्देश्यसे नियोजित सामूहिक कार्यवाही में मदद प्रस्तुत करता है। उनके अनुसार मध्यस्थता के इस तरीके में दो परस्पर संबन्धित प्रसंग शामिल हैं:
  - i. **परस्पर जानने की प्रक्रिया:** जिसमें सदस्यों की पहचान करना, उन्हें भर्ती करना और उनके साथ कार्य करना तथा उनके बीच संगठनात्मक तथा परस्पर वैयक्तिक सम्बन्धों का विकास, जिससे उनके प्रयत्न सुगम हो, करना सम्मिलित होता है तथा
  - ii. सामुदायिक विकास समस्याग्रस्त क्षेत्रों की पहचान करने, कारणों को विश्लेषित करने, योजनाओं को निरूपित करने, रणनीतियों का विकास करने और प्रभावी कार्यवाही के लिए आवश्यक संसाधनों के नियोजन में निहित तकनीकी कार्य।
- ❖ **मैकमिलन-** मैकमिलन का भी सामुदायिक संगठन की अवधारणा को समझाने में योगदान रहा, जिसमें एक सामान्य रूप में सामुदायिक संगठन कीव्याख्या प्रयोजन तथा कार्यवाही की एकता प्राप्त करने के लिए समूहों की मदद करने हेतु संकल्पित निर्दिष्टकार्यवाही के रूप में दी। वह आगे इसकी प्रकृति को यह विनिर्दिष्ट करते हुए प्रस्तुत करते हैं कि जब कभी भी, या तो सामान्य या फिर विनिर्दिष्ट लक्ष्यों के लिए दो या दो अधिक समूहों के कौशल तथा संसाधनों के समूहीकरण को प्राप्त करने अथवा अनुरक्षित मुख्य लक्ष्य रहता है, तो इसका सामुदायिक संगठनसंव्यवहार किया जाता है, यद्यपि अक्सर यह संव्यवहार इसकी प्रकृति की पहचान किए बिना किया जाता है।

उपरोक्त विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामुदायिक संगठन की परिभाषाओं सेस्पष्ट होता है कि यह सामुदायिक सदस्यों में अपनी समस्याओं आवश्यकताओं एवं उपलब्ध कल्याणकारी साधनों को पहचानने समस्या समाधान के लिए शोभा बनाने तथा निदान ढूढ़ने की योग्यता का विकास करने से संबंधित समाज कार्य की प्रणाली है। इस सन्दर्भ में विद्वानों की परिभाषाओं को दो भागों में बाँटकर देखा

जा सकता है। प्रथम भाग में लेन, डनहम, बांटी, मैकलीन तथा फ्रीडलैण्डर जैसे विद्वानों की परिभाषाओं को शामिल किया जा सकता है जो समुदाय की विभिन्न आवश्यकताओं, समस्याओं और उनके समाधान के लिए सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा उपलब्ध साधनों के बीच प्रभावकारी समायोजन पर बल देती है। दूसरे भाग में पैट्रिर सैण्डर्सन एवं रॉस जैसे विद्वानों की परिभाषाओं को सम्मिलित किया जा सकता है जो सामुदायिक संगठन में सदस्यों में अपनी समस्याओं आवश्यकताओं एवं उपलब्ध विभिन्न साधनों को पहचानने, कारणों को ढूँढ़ निकालने तथा संगठित रूप से समस्याओं का समाधान करने की योग्यता के विकास पर बल देती है।

सर्वमान्य तत्व :-

उक्त वर्णित परिभाषाओं के आलोक में सामुदायिक संगठन के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण तत्व परिलक्षित होते हैं–

- यह एक निश्चित भू-भाग के सदस्यों के विकास का कार्य है।
- यह प्रशिक्षित कार्यकर्ता के ज्ञान तथा कौशल पर आधारित है।
- यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज पहले से अधिक सकारात्मक व रचनात्मक रूप से कार्य करने की क्षमता विकसित करता है। कर्ता इस प्रक्रिया को जान-बूझकर उपयोग में लाता है।
- इस प्रक्रिया के द्वारा समुदाय अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को जानने तथा उनकी पूर्ति की महत्ता को पहचानने में सफल होता है। समुदाय स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समस्या समाधान का प्रयास करता है। इस स्थिति में कर्ता का पहला कार्य समुदाय की आवश्यकताओं पर ध्यान आकृष्ट करने में सहायता करना होता है जिनसे उनका सम्पूर्ण जीवन प्रभावित होता है।
- अब कर्ता समस्याओं का निराकरण करने हेतु प्राथमिकता निर्धारित करने में समुदाय की सहायता करता है जिससे उसी के अनुरूप प्रयासों में एक रूपता तथा गहनता लायी जा सके।
- कर्ता समुदाय को उन संसाधनों की खोज करने में तथा उन संस्थाओं का पता लगाने में सहायता करता है जिनसे आवश्यकर्ताओं की पूर्ति तथासमस्याओं का समाधान संभव है।
- इस प्रक्रिया के द्वारा कर्ता समुदाय की विशेष समस्या का समाधान करने तथा आवश्यकता पूर्ति के लिऐ प्रेरित प्रोत्साहित तथा मार्गदर्शित करता है।
- जैसे-जैसे कार्य आगे बढ़ता जाता है समुदाय के लोग उसकी महत्ता को समझने लगते है, स्वीकार करने लगते है, एक दूसरे के साथ सहयोग करने लगते है, आपसी मतभेदों को दूर करते हैं तथा सभी प्रकार के संसाधनों का उपयोग करने का प्रयास करते हैं एवं समर्थ बनने की प्रबल इच्छा जागृत कर लेते है।
- ये लोकतांत्रिक निर्णय पर आधारित है।

1.3 सामुदायिक संगठन के प्रमुख चरण

विभिन्न विद्वानों द्वारा चरणों की चर्चा अलग-अलग ढंग से की गई है। लिंड़मैन ने 100 सामुदायिक परियोजनाओं के 6 चरणों की चर्चा की है और सैण्डर्सन व पालसन ने इसके 7 चरणों का वर्णन किया है। उपर्युक्त व अन्य विद्वानों के विचारो के विश्लेषण से सामुदायिक संगठन के चरण निम्नलिखित क्रम में दृष्टिगत होते हैं-

1. **अवलोकन तथा स्वीकृति प्राप्त करना-** यह सामुदायिक संगठन का प्रथम चरण है। इसके अन्तर्गत कर्ता अपने सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ समुदाय विशेष जहाँ उसे कार्य करना है कि वास्तविक/व्यावहारिक विशेषताओं कासम्यक ज्ञान प्राप्त करता है। इसके लिए वह उस समुदाय के व्यवहार कार्य तथा अन्त:क्रियाओं को उसके अनुरूप ढलता है। कार्य का समुदाय के साथ ताल-मेल एवं प्राप्त स्वीकृति ही सामुदायिक संगठन के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निर्णायक सिद्ध होते हैं।
2. **अध्ययन करता-** स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात इस चरण में सामुदायिक संगठन कार्यकर्ता समुदाय की उन सभी समस्याओं व अन्तर्भूत आवश्यकताओं का अध्ययन करता है जो उस समुदाय के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके साथ-साथ कर्ता सामुदायिक शक्तियों व सामुदायिक कल्याण व विकास के लिए उपलब्ध विभिन्न सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं की सूचनाओं को भी एकत्र करता है जिससे समुदाय के सदस्यों की वास्तविक स्थिति जानने तथा सही योजना बनाने में मदद मिलती है।
3. **आवश्यकता की चेतना का प्रसार करना-** सामुदायिक संगठन का यह तीसरा चरण सामुदायिक सदस्यों की उनकी भूलमूत आवश्यकताओं से अवगत कराने से सम्बन्धित है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कर्म व्यक्तिगत रूप से, सामूहिक रूप से तथा पूरे समुदाय के साथ विचार विमर्श करके सामुदायिक आवश्यकताओं के विषय में सभी सदस्योंकी चेतना बढ़ाता है।
4. **संगठना की रचना करवाना-** सामुदायिक संगठन कार्य के इस चौथे महत्वपूर्ण चरण का उद्देश्य सामुदायिक सदस्यों में संगठन की आवश्यकता एवं संगठित जीवन की उपयोगिता पर बल देते हुए संगठित जीवन को प्रोत्साहित करना है। इसके लिए कर्ता सभी सदस्यों की सहमति व सहयोग प्राप्त कर अधिकाधिक व्यक्तियों को लोकतांत्रिक आधार पर संगठन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करता है। इससे समुदाय के संगठन का विकास होता है और सामुदायिक संगठन में अधिकाधिक लोगों का सहयोग प्राप्त होता है।
5. **नेतृत्व का विकास करना-** समुदाय में संगठन की रचना के प्रस्ताव कर्ता सदस्यों में योग्य एवं जिम्मेदार नेता का लोकतांत्रिक ढंग से चुनाव करने के लिए सामुदायिक सदस्यों को प्रोत्साहित कर व्यक्तियों में विकास करता है।

6. **कल्याणकारी योजना तथा कार्यक्रम तैयार करना-** इसके पश्चात कर्ता समुदाय की समस्या व आवश्यकतानुसार सामान्य कल्याणकारी योजना एवं कार्यक्रम तैयार करने के लिए मार्गदर्शन देता है। योजना तथा कार्यक्रम की तैयारी के दौरान कर्ता सदस्यों की सहभागिता पर बल देता है। सुझाव तथा विचार विमर्श के लिए उन्हें प्रोत्साहित करता है। वह सदस्यों की रूचिकर आवश्यकताओं तथान्यूनतम प्रयासों से पूर्ण होने वाली आवश्यकताओं को प्राथमिकता देता है। अनुभव के साथ अन्य आवश्यकताओं एवंलम्बे समय में पूर्ण होने वाले कार्यों को कार्यक्रम की सूची में रखता है।
7. **कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करना-** यह चरण कल्याणकारी योजनाओं तथा कार्यक्रमों के कार्यान्वयन से संबंधित है। अपने व्यावहारिकता तथा अनुभव से कर्ता इस बात से पूर्ण अवगत होता है कि कार्यक्रमों की सफलता सदस्यों की रूचि, दक्षता तथा सहभागिता पर निर्भर करती है। इसलिए वह जिम्मेदार सदस्यों को शिक्षित प्रशिक्षित व प्रोत्साहित कर उन्हें अपनी भूमिका निभाने तथा उनकी भूमिकाओं को सरल बनाने का प्रयास करता है। निर्धारित कार्यक्रमों को सरल बनाने का प्रयास करता है। निर्धारित कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में उत्पन्न रूकावटों व विवादों को सदस्यों के समक्ष रखकर उन्हें दूर करने का प्रयत्नकरता है।
8. **साधनों को संचालित करना-** साधनों के समुचित संचालन के लिए कर्ता विभिन्नसरकारी व गैर-सरकारी कल्याणकारी संस्थाओं की सेवाएँ एवं समुदाय कीआवश्यकतानुसार इन कल्याणकारी सेवाओं को पर्याप्तव नियमित बनाने का प्रयास करता है।
9. **मूल्यांकन तथा ऐच्छिक परिवर्तन लाना-** कर्ता सामुदायिक संगठन के प्रत्येक आयाम का मूल्यांकन करता है। इससे हमे सामूहिक उद्देश्यों की सफलता/असफलता का ज्ञान होता है और सदस्यों के कार्यों के वास्तविक परिणामों को ज्ञान होता है। उसे व्यक्तिओं निपुणताओं, कमियों, अक्षमताओं, दोषों एंव संघर्षों को जानने में सुविधा होती है। प्रविधियों तथा तरीकों की उपयुक्तता/अनुपयुक्तता का आभास होता है। इससे कर्ता सदस्यों में आवश्यक परिवर्तन लाने की चेतना का संचार करता है। जिससे अपनायी गयी प्रविधियों तथा तरीकों में ऐच्छिक परिवर्तन लाया जा सके।

मूल रूप से संगठन सामुदायिक कार्यकर्ता को यह देखने की जरूरत होती है कि सदस्यों में कहाँ तक अपनी सहायता से योग्यता का विकास हुआ है। क्या वे कर्ता के बिना स्वयं सामूहिक निर्णय ले पाते में, कल्याणकारी योजनाओं के निर्माण तथा कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में सक्षम है ? समुदाय के संसाधनो की सफलता इसी में है कि वे समुदाय के लिए अनावश्यक न हो जाय।

1.4 सामुदायिक संगठन कीमान्यताएं

इन मान्यताओं से सामुदायिक संगठन प्रभावित होता है जो आंशिक रूप से मूल्य दिग्विन्यास से संचालित है और आंशिक रूप से ही समाज कार्य के अनुभव से संचलित होती है। इनमे मुख्यत: निम्नलिखित हैं।

1) लोग परिवर्तन की उम्मीद करते हैं और परिवर्तन नियोजित कर सकते हैं अर्थात लोगों के समुदाय निरंतर अपनी जीवन-शैलियों में बदलाव करते हैं और अपनी जीवन शैली की बेहतरी के लिए आशावादी होते हैं।
2) लोगों के समुदाय अपनी समस्याओं का समाधान प्रस्तुतकरने के कौशल का विकास कर सकते हैं अर्थात लोग किसी भी परिस्थिति का मुक़ाबला कर सकते हैं परंतु इसके बावजूद वे ऐसी अभिवृत्तियां व कौशल का विकास कर सकते हैं, जिनसे वे स्वयं की माँगों की पूर्ति के लिए अपने समुदाय को उपयुक्तआकार प्रदान कर सकें।
3) लोगों को अपने समुदायों में क्रियान्वित हो रहे प्रमुख परिवर्तनों को संचालित करने अथवा नियंत्रित करने में भागीदारी करनी चाहिए अर्थात लोगों को संयुक्त लक्ष्योंकी प्राप्ति के प्रयोजन से एकत्रित होने का अवसर मिलना चाहिए, जिन्हें उनके नियंत्रण के बाहर के कुछ परिवर्तनों की प्रतिक्रिया स्वरूप किया जाना चाहिए और जहाँ तक संभव हो, समुदायों को नियमित करना चाहिए।
4) सामुदायिक जीवन में परिवर्तन, जो स्वयं द्वारा लाए गए और स्व विकसित होते हैं, उनका एक अर्थ और स्थायित्व होता है जो थोपे गए परिवर्तनों में नहीं होता।
5) सम्पूर्ण/समग्र दृष्टिकोण धारण कर उन समस्याओं का सफलतापूर्वक समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है, जिनका समाधान बिखरे हुए दृष्टिकोण से नहीं किया जा सकता।
6) लोकतंत्र में सहयोगी तथा मामलों में कार्यवाही करने की अपेक्षा की जाती है। विकास प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी तथा प्रभावपूर्ण सम्प्रेषण प्रक्रिया का उपयोग किया जाना चाहिए, जिससे सामान्य उद्देश्यों की पहचान तथा सामूहिक कार्यवाही का क्रियान्वयन अपेक्षाकृत सरल होता है।
7) कई बार समुदाय के लोगों को अपनी जरूरतों की आपूर्ति के लिए संगठित होने में सहायता की आवश्यकता होती है। यह मदद विभिन्न प्रकार की हो सकती है, जो सलाह से लेकर संसाधनों/सुझावों, मार्गदर्शन आदि तक हो सकती है।

1.5 समाज कार्य में सामुदायिक संगठन

मुम्बई में मलिन बस्ती के एक समुदाय के साथ कार्य करने के अनुभव के परिणामस्वरूप भारत में, सन् 1936 में समाज कार्य के प्रथम संस्थान की स्थापना हुई। भारतीय संदर्भ में समाज कार्य को एक विधि के रूप में सामुदायिक कार्य को प्रमुख रूप से, खासकर शिक्षा, स्वास्थ्य तथा कृषि के विकास के क्षेत्र में, स्थानीय पहल विकसित करने की प्रक्रिया के रूप में निरूपित किया गया है। कार्य का ध्यान लोगों को

अपनी जरूरतों को पहचानने के लिए प्रोत्साहित करने तथा उन्हें उनकी जरूरतों की पूर्ति के लिए उपलब्ध संसाधनों को हासिल करने में मदद करने पर रहा है। इसके अलावा ऐसी परिस्थिति में, जहाँ जरूरतों तथा संसाधनों के मध्य एक अंतरहो, नई सेवाएं/कार्यक्रमों को शुरू करने के लिए और प्रयत्न किए जाते हैं। रॉस ने सामुदायिक संगठन के प्रति मुख्य रूप से तीन दृष्टिकोणों को प्रस्तुत किया है

i. विनिर्दिष्ट रूपरेखा दृष्टिकोण
ii. सामान्य रूपरेखा दृष्टिकोण तथा
iii. प्रक्रिया दृष्टिकोण

रॉस ने सामुदायिक संगठन की परिभाषा में उक्त सभी तत्वों को सम्मिलित किया है। उनके अनुसार सामुदायिक संगठन एक ऐसी अनिवार्यतः सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा समुदाय अपने उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों के बारे में संज्ञान प्राप्त करता हैं... और समुदाय के अन्दर सहयोगात्मक व सहायक अभिवृत्तियाँ विकसित होती हैं।

समाज कार्य के एक व्यवसाय के रूप में स्थापित होने के साथ ही समुदाय न केवल आधारगत पृष्ठभूमि बना रहा है अपितु यह सामुदायिक परिवर्तन के समाधान का माध्यम भी बना है। सामुदायिक कार्य का उपयोग वैयक्तिक कार्य तथा समूह कार्य जैसे सामुदायिक मूल लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इसके इतर एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष को भी समझे जाने की आवश्यकता है वह सामुदायिक कार्य/संगठन की परिभाषाओं में अपनाए गए दृष्टि में विभेद है। प्रारम्भिक समय में पश्चिमी संदर्भ में उत्पन्न विभिन्न परिभाषाओं ने सामुदायिक कार्य के प्रति सर्व सहमति वाली प्रकृति प्रस्तुत की। सामुदायिक कार्य आरंभिक सामाजिक स्थितियों के विश्लेषण तथा इच्छित परिवर्तन लाने के लिए विविध प्रकार के समूहों के साथ सामुदायिक सम्बन्धों के निर्माण की प्रक्रिया के माध्यम से सामुदायिक परिवर्तन को प्रभावपूर्ण बनाने से संबन्धित था। यहां समुदाय कार्य के प्रमुख तीन उद्देश्य थे -

i. सेवाओं के विकास के बारे में सोचने, निर्णय करने, योजना बनाने तथा सक्रिय भूमिका का निर्वहन करने के लिए लोगों को सम्मिलित करना।
ii. समुदाय से संबन्धित वैयक्तिक पूर्णता की प्राप्ति सरल बनाना।
iii. लोगों की विभिन्न मांगों तथा उन्हें पूरा करने के लिए उपस्थित अल्प ससांधनों के मध्य लगातार तनाव में कार्य करना।

शनैः शनैः समुदाय की व्याख्याओं की प्रकृति में परिवर्तन आने लगा। 1968 में ही, गुलबेनकेन फाउन्डेशन द्वारा स्थापित गुलबेनकेन अध्ययन समूह द्वारा तर्क दिया गया था कि समुदाय कार्य स्थानीय लोकतंत्र को जीवन देने का उपाय है और यह उदासीनता तथा दूरस्थ व अज्ञात प्राधिकारी के विपरीत में विरोध प्रदर्शन है। एकलीन (1972) जैसे अन्य विद्वानों ने भी अनुभव किया कि सामुदायिक संगठनकर्ता शक्ति तथा प्रभाव के पुनर्वितरण के द्वारा वंचित समूहों के हितों को इंगित करने से संबन्धित होते हैं। इसके अतिरिक्त हमें यह भी संज्ञान कर लेना आवश्यक है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था की ओर पहल, बढ़ता हुआ

निजीकरण, कल्याणकारी सम्पन्नता में कमी, सूचना व संचार प्रोद्योगिकी में परिवर्तन आज समुदाय कार्य के सामने कठिन चुनौतियाँ उत्पन्न करते हैं। समकालीन संदर्भ में यह समझना काफी है कि आधुनिक समाज की जटिल तथा बहुआयामी प्रकृति स्वयं समाज की व्यवस्थित कार्यप्रणाली सामुदायिक संग्ठन के तरीके प्रयोग को एक अनिवार्य व पूर्व-आवश्यकता बनाते हैं।

हार्पर एवं डनहम ने 1939 में नेशनल कान्फ्रेस ऑफ सोशल वर्क द्वारा नियुक्त की गई लेन कमेटी ने अपने प्रतिवेदन में दिये गये सामुदायिक संगठन के निम्नप्रयोजनों का वर्णन किया है–

क) **सामान्य उद्देश्य -**

1. आवश्यकताओं की परिभाषा एंव खोज।
2. सामाजिक जरूरतों और अयोग्यताओं की रोकथाम और समाप्ति
3. साधनों और आवश्यकताओं का स्फ्टीकरण और बदलती हुई जरूरतों को अच्छे ढंग से पूरा करने के लिए साधनों का पुन: समायोजन।

ख) **द्वितीयक उद्देश्य् -**

1. ठोस नियोजन एवं प्रयत्न के लिए एक पर्याप्त वास्तविक बुनियाद की प्राप्ति और उसे बनाये रखना।
2. कल्याणकारी कार्यक्रमों और सेवाओं को शुरू करना, विकसित करना और उनमें संशोधन करना जिससे साधनों और आवश्कयताओं के मध्य समायोजनस्थापित किया जा सके।
3. समाज कार्य के स्तर को ऊँचा करना और व्यक्तिगत संस्थाओं के प्रभाव का संवर्धन करना।
4. परस्पर संबंधों में सुधार करना और उन्हें सुविधाजनक बनाना और समाज कल्याण कार्यक्रमों एवं सेवाओं केप्रदाता संगठनों, समूहों और व्यक्तियों के मध्य समन्वय लाने के लिए प्रेरित करना।
5. कल्याण सम्बन्धी समस्याओं, जरूरतों और समाज कार्य प्रयोजनों, कार्यक्रमों और प्रणालियों के विषय में जनता के ज्ञान को विकसित करना।
6. समाज कल्याण सम्बन्धी क्रियाकलापों के प्रति जनता का समर्थन और सहभागिता का संवर्धन करना।

सैण्डर्सन तथा पाल्सन के अनुसार इसके विशेष प्रयोजन निम्न हैं–

1. सामुदायिक पहचान की चेतना उत्पन्न करना।
2. सम्पूर्ण जरूरतों की संतुष्टि करना।
3. सामाजीकरण के साधन के रूप में सामाजिक सम्मिलन का विकास करना।
4. सामुदायिक आत्मा और भक्ति भावना द्वारा सामाजिक रोकथाम को प्राप्त करना।
5. संघर्ष को रोकने तथा कुशलता एवं सहयोग केसंवर्धन के लिये समूह और क्रियाओं मेंसमन्वय स्थापित करना।
6. समुदाय के इष्टतम प्रभावों अथवा परिस्थितियों से रक्षा करना।

7. सामान्य जरूरतों का पता लगाने के लिए अन्य संस्थाओं तथा समुदायों से सहयोग करना।
8. मतैक्य प्राप्त करने के साधनों का विकास करना।
9. नेतृत्व को संवर्धित करना।

1.6 सारांश

इस प्रकार सामुदायिक संगठन दो शब्दों– समुदाय तथा संगठन कार्य से मिलकर बना है। समाज कार्य में समुदाय से आशय यह है जिम्मेदारी कि मानव प्राणियों के कार्य, व्यवसाय, संस्कृति एवं सभ्यता में समानता के साथ-साथ उनमें आपसी जिम्मेदारियों को महसूस करने तथा वहन करने की सामूहिक चिंता होती है। संगठन कार्य के अनुमति विघटित समुदाय के सदस्योंको आपस में एकत्रित कर सामुदायिक कल्याण व विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को खोज निकालना तथा उन आवश्यकताओं की पूर्तिके लिए आवश्यक साधनों को जुटाने की योग्यता का उनमें विकास किया जाता है। इस इकाई के माध्यम से सामुदायिक संगठन् उसके विविध चरण और उसकी प्रमुख मान्यताओं के बारे में प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

1.7 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: सामुदायिक संगठन क्या है? विस्तृत वर्णन प्रस्तुत कीजिये।
प्रश्न 2: सामुदायिक संगठन के विविध चरणों को बताइये।
प्रश्न 3: सामुदायिक संगठन की प्रमुख मान्यताओं को प्रस्तुत कीजिये।
प्रश्न 4: समाज कार्य में सामुदायिक संगठन की भूमिका को स्पष्ट कीजिये।

1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. बैलडक, पीटर (1974). *कम्युनिटी वर्क एण्ड सोशल वर्क*, लंदन : न्यूयार्क : राटलैज एण्ड केगन पोल।
2. डनहम, आर्थर (1957). *कम्युनिटी वैलफेयर आर्गनाइजस*, प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस. थामस वार्ड क्राडली कम्पनी।
3. एक्लिन, जान (एडि.) (1992). *कम्युनिटी आर्गनाइर्जस*. न्यूयार्क : जान विले एण्ड सन्स।
4. गंगराडे, के. डी. (1971). *कम्युनिटी आर्गनाइर्जस*, *इन इंडिया,* मुम्बई: पापुलर।
5. हार्पर, ई.बी.डनहम अर्थर (1959). *कम्युनिटी आर्गनाइर्जस इन एक्शन*. न्यूयार्क : एसोसिएशन प्रैस।
6. हैडरसन पॉल, जोन्स एण्ड थामस डेविड एन (एडि.)(1980). द *बाउंडरीज आफ चेंज इन कम्युनिटी वर्क*. लंदन : (एलेन एंड अनविन)।

7. इंटरनेशनल फेडरेशन आफ सोशल वर्कस (आई.एफ.डब्ल्यू.) (2003) *इथिक्स इन सोशल वर्क: स्टेटमैन्ट प्रिंसिपल्स* http://GM2004//GM2004//GM-Ethicsdraft.html
8. लिंडमैन ई (1921). द *कम्युनिटी* एसोसिएशन प्रेस. न्यूयार्क।
9. मैकमिलन, डी. डब्ल्यू एण्ड चाविस, डी. एम. (1986). सैन्य ऑफ कम्युनिटी : ए डैफिनेशन एण्ड थ्योरी, *जर्नल आफ कम्युनिटी साइकोलोजी*
10. रोस, एम. जी. (1967). *कम्युनिटी आर्गनाइजेशन*, न्यूयार्क : (हेर एण्ड रा)।
11. रूबिन एम. जे. एण्ड रूबिन आई (2005). द प्रैक्टिस आफ कम्युनिटी आर्गनाइजिंग, इन. एम. वेल (एड.) द हैंडबुक *आफ कम्युनिटी प्रैक्टिस* थाउजैंड आक्स सी.ए : (सेज पब्लिकेशन्स)।
12. सिद्दीकी,एच. वाई.(1997) *वर्किंग विद कम्युनिटीज* न्यू दिल्ली : (हीरा पब्लिकेशन्स)।
13. वैल एम. एण्ड गैम्बल डी. (1995) कम्युनिटी प्रैक्टिस माडल, एडवर्क (एडि.) *एनसाइक्लोपिडिया आफ सोशल वर्क* 19 वाँ एडिशन एन. ए. डब्ल्यू. वाशिंगटन डी.सी।
14. वेल, मेरी (एडि) (1997*) कम्युनिटि प्रैक्टिस :माडलस इन एक्शन,* न्यूयार्क : (हावर्थ प्रैस एम. सी.)।
15. यंगहसबैंड एलीन (1993) विच वे फार सोशल वर्क *कम्युनिटी डेवलपमैंट जर्नल* 8 (1)
16. पाण्डेय तेजस्कर और पाण्डेय ओजस्कर. *समाज कार्य*. लखनऊ : (भारत बुक सेन्टर)।
17. सिंह डॉ. सुरेन्द्र मिश्रा डॉ. पी.डी. *समाज कार्य का इतिहास, दर्शन और प्रणालियाँ*, लखनऊ : न्यू रायॅल बुक कम्पनी।

इकाई 2
सामुदायिक संगठन का इतिहास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 इंग्लैंड में सामुदायिक संगठन
2.3 संयुक्तराज्य अमेरिका में सामुदायिक संगठन
2.4 भारत में सामुदायिक संगठन का इतिहास
2.5 सारांश
2.6 उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- इंग्लैंड में सामुदायिक संगठन के इतिहास से परीचित हो सकेंगे।
- संयुक्तराज्य अमेरिका में सामुदायिक संगठन के इतिहास को रेखांकित कर सकेंगे।
- भारत में सामुदायिक संगठन के इतिहास का वर्णन कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि सामुदायिक संगठन का इतिहास मानव इतिहास जितना ही पुराना है। आरंभ में मनुष्य झुंड बनाकर रहता था,उनमें किसी रूप में संगठन पाया जाता था और उन्होंने कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने अथवा समुदाय की कुछ उभयनिष्ठ आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्यसे काम किया होगा। शनैः शनैः इन अनौपचारिक संगठनों के साथ-साथ औपचारिक संगठनों की स्थापना भी हुई होगी, जिन्होंने समाज कल्याण की इन पहलों को औपचारिक आकार और रूप प्रदान किया होगा।

2.2 इंग्लैड में सामुयिक संगठन

ब्रिटिश सामुदायिक कार्य का अभ्युदय एंग्लीकन चर्च युनिवर्सिटी सैटलमैंट मूवमेंट के चैरिटी कार्यों से हुआ है। यह प्रमुख रूप से शहरी गरीबी से जुड़ेंलोगों की दुर्दशा की एक प्रतिक्रिया थी। जैसे-जैसे 20 वीं शताब्दी गुजरी चैरिटी से दूर एक धीमा संक्रमण तथास्वतंत्रता के दर्शन की दिशा में पैतृक्य का जन्म हुआ। इसी अवधि के दौरान सिल्विया पेन्कहर्स्ट जैसे लोगों तथा वूमेन्स हाउसिंग एसोशिएसन जैसे समूहों ने टॉयनबी हॉल के आधार पर जेन एडम्स द्वारा तैयार शिकागो सैटलमेंट से स्वयं सहायता के विचार का

अनुकरण किया। 1950 के दशक में इंग्लैंड में सामुदायिक कार्य का अभ्यास उत्तरी अमेरिका मुख्य रूपसे मरे जी. रोस के कार्य के आधार पर, उदित हुए सिद्धान्त से प्रभावित हुई। इससे पड़ोस और आन्तरिक एजेंसी कार्य के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण प्रेरित हुआ।

1968 से बड़ी मात्रा में समुदाय कार्य में लगे लोग 'सामुदायिक कार्रवाई' के पैरोकार बन गए, जो समुदाय कार्य का एक रूप है, जिसकी प्रमुख विशेषताओं में प्राधिकारियों के साथ मतभेद वाले वंचित समूहों की मदद और समाज पर सुधारवादी अथवा मार्क्सवादी दृष्टिकोण सम्मिलित हैं। इस विकास के विविध कारण थे। शहरी सामुदायिक कार्रवाई कुछ हद तक अमेरिका में मार्टिन लूथर द्वारा कालों के लिए प्रस्तावित शहरी कार्रवाई से प्रभावित थी। दूसरे, 1968 में शहरी कार्यक्रम के रूप में समुदाय कार्य के अभ्यास की गतिविधियों तथा 1969 में इस कार्यक्रम उद्भूत 12 सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों का असर भी सामुदायिक कार्रवाई के उद्यम पर पड़ा। जिन कार्यक्रमों का फोकस बारह गरीब समुदायों पर था, उनका स्पष्ट लक्षण लोगों के जीवन पर गरीबी के प्रभाव पर था और इसमें अधिवक्तृता की गई थी कि यह पक्षपात का अतिवादी/संरचनात्मक मार्क्सवादी विश्लेषण था जो गरीबी के लगातार अस्तित्व तथा शहरी गरीबों की दुर्दशा के लिए उत्तरदायीथा। तीसरे ग्राम्शी, पाउलो फ्रेरे तथा साउल अलिंस्के जैसे सामुदायिक संगठनकर्ताओं ने अनुवर्ती चरण में समुदाय कार्यअभ्यास पर प्रभाव डालना प्रारम्भ किया। वे सामुदायिक कार्रवाई की अतिवादी परम्परा के मजबूत पैरोकार थे और समुदाय कार्य में अतिवादी दृष्टिकोण को लोकप्रियता प्रदान करने में प्रमुख रूप से सहायक थे। चौथे, सत्तर के दशक के प्रारंभिक वर्षों में समुदाय कार्य की मान्यता में बढ़ोत्तरी तथा विस्तार देखा गया, जो स्वयंसेवी तथा सरकारी क्षेत्रों के माध्यम से था, तथापि जैसे-जैसे दशक की प्रगति हुई, सामुदायिक कार्य के सरकारी प्रयोजन पर बल बढ़ता गया। इसका परिणाम कुछ अन्तर्निहित विरोधाभासों के रूप में परिलक्षित हुआ, जहाँ समुदाय कार्यकर्ता स्थानीय लोगों को एकजुट करने तथा उन्हें बेहतर सेवाएं माँगने के लिए प्रोत्साहित करने तथा उन्हें राज्य द्वारा नियुक्त किया गया था, जो इन सेवाओं अथवा'गैर प्रवधान' के लिए उत्तरदायी था।

उपर्युक्त विकास के परिणामस्वरूप समुदाय कार्य के प्रति दो प्रथम विभाजित दृष्टिकोण उत्पन्न हुए। पहले दृष्टिकोण की धारणा यह थी कि समाज में प्रतिस्पर्धी शक्ति आधारों की गुणात्मकता थी, जिनकी मध्यस्थता राज्य द्वारा की जाती थी और समुदाय कार्य केवल लघु स्तरीय निकट के संगठन तथा लघु स्तरीय सुधारों के लिए सक्षम था। यह दृष्टिकोण रूढिवादी था, जिसका आम सहमति और समन्वय पर बल था। दूसरी ओर वैकल्पिक दृष्टिकोण में समाज की संरचना के बदलाव हेतु संघर्ष के भीतरप्रतिरूप के तौर पर समुदाय कार्य का प्रस्ताव था, चूँकि इन्हें ही उत्पीड़न के मूल कारण के रूप में माना गया। इस दृष्टिकोण का जिसे समुदाय कार्य के प्रतिअतिवादी दृष्टिकोण के रूप में मान्यता मिली है, जो सामुदायिक तथा धारणीयता के 'कठोर मुद्दों' उठाए, जबकि दृष्टिकोण का केन्द्र बिंदू पहले 'नर्म मुद्दों' जैसे सेवाओं और अंतर-एजेंसी कार्य के प्रावधान पर था।

कल्याणकारी राज्य की विचारधारा, जो 1980 के दशक तक जीवंत रही, अब आर्थिक मंदी तथा बढ़ती बेरोजगारी के कारण अत्याधिक कल्याणकारी भारों के रूप में दुर्बल होनी प्रारम्भ हो गई। सामूहिक उत्तरदायित्व के जिन आदर्शों से कल्याणकारी राज्य का आधार बना है, उनके स्थान पर उपभोक्तावाद द्वारा चालित प्रतिस्पर्धात्मक दुर्बल समूहों के अधिकारों का भक्षण कर लिया और उनके लिए लाभों में कमी कर लिया। सब आधारों का अभिप्राय यह था कि गरीबी का कारण किसी व्यक्तिकी वैयक्तिक विफलतायें नहीं, अपितु संरचनात्मक विसंगतियां थी। 1997 में ब्लेयर सरकार के चुनाव के साथ छोटा सा बदलाव हुआ। समुदाय तथा नागरिक समाज को लोगों तथा राज्यके बीच अंतरापृष्ठके रूप में माना जाने लगा। राज्य के एक सक्षमकारी भूमिका निभाने के कारण स्वयं सेवी संगठन जरूरतों का सामना करने के लिए प्रेरित हुए। आस-पड़ोस के बारे में चिंता बढ़ती जा रही है जिनमें गरीबी, बेरोजगारी तथा इनसे जुड़ी खराब स्वास्थ्य, खराब सेवा आपूर्ति, खराब गुणता के स्कूल, जुर्म आदि जैसी समस्याएं अधिक मात्रा में व्याप्त होती है। इस प्रकार गरीब प्रतिवेशों का पुन: उत्सर्जन केन्द्र में आ गया। वर्ष 2000 में इस प्रयोजनार्थ प्रतिवेश नवीकरण के लिए राष्ट्रीय नीति को प्रारम्भ किया गया। विनिर्दिष्ट स्थानीय समस्याओं के निपटारे हेतु क्षेत्र आधारित कार्यक्रम सामने आए। समुदाय में रहने के विचार को पुनः दोहराया गया। हालांकि राष्ट्रीय नीति के प्रभाव का मूल्यांकन करना जल्दबाजी होगी, सीमित शोध साक्ष्य दर्शाते हैं कि समुदाय सम्मिलन कार्यक्रम खराब विधि से नियोजित अपर्याप्तरूप से संसाधित हैं और बहुत प्रभावकारी नहीं है।

2.3 संयुक्तराज्य अमेरीका में सामुदायिक संगठन

इंग्लैड की गतिविधियों ने अमेरीका में चल रहे घटनाक्रम पर भी प्रभाव डाला। अमेरीका में विकास के प्रमुख चरण निम्नवत हैं-

1965 से 1914

गृहयुद्ध के अंत तथा प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ के मध्य की इस अवधि के दौरान अमरीका में अनेक सामुदायिक मुद्दे जन्म लिए तथा इनका कल्यणकारी अभ्यास पर भारी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस अवधि के दौरान सामुदायिक संगठन की गतिविधियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। पहली वे जो आज की समाज कल्याण गतिविधियों से संबन्धित संस्थाओं द्वारा संचालित की जाती थीं, और दूसरी श्रेणी उन गतिविधियों की थी, जिन्हें उन लोगों द्वारा संचालित किया जाता था जिनका पारम्परिक सामुदायिक संगठन कार्यक्रमों से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था, इसके बावजूद जो सामुदायिक अभ्यासकर्ताओं के हित में थे। दूसरीश्रेणी में राजनीतिक, जातीय तथा कार्यवाही समूहों का संगठन सम्मिलित है।

1869 में इंग्लैण्ड तथा 1873 में अमरीका में चैरिटी संगठन सोसायटियों के विकास में अनेक तथ्यों का योगदान शामिल था। ये सोसायटियाँ आरंभ में निजी एजेंसियों के कार्य के सम्बन्ध के लिए अस्तित्व में आई, जो गरीबों की जरूरतों के लिए कार्य करती थीं। शीघ्र ही इन्होंने प्रत्यक्ष राहत तथा अन्य सेवाएँ

नियोजित करनी प्रारम्भ कर दीं। सीओएम के पद्रह वर्ष बाद सामुदायिक बस्तियों का उदय हुआ जब टायनबी हॉल 1884 में पूर्वी लंदन में प्रथम मलिन बस्ती बनी। स्टैण्टन कोएट, जिन्होंने 1886 में टायनबी हॉल की यात्रा पूरी की थी। बाद में, उस वर्ष न्यूयार्क में यूनिवर्सिटी बस्ती को स्थापित किया गया। सीओएस के विपरीत बस्तियों में सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु कोई पूर्वनिर्धारित योजना नहीं थी। इस युग के दौरान अनेक नृवंशीयसमूहों में कई समितियों की स्थापना हुई। 1890 में, अमरीकी जीवन में अश्वेतों के परिवर्तनशील स्तर का सामना करने के लिए निधियों, कानूनों तथा मताधिकार अर्जित करने के लिए अफ्रीकी-अमरीकी लीग को स्थापित किया गया। न्यूयार्क में हब्शियों के मध्य शहरी स्थितियों सम्बन्धी समिति बाद में नेशलन अर्बन लीग बनी, और इनमें अनेक सामुदायिक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की गई। 1880 के दशक से मैक्सिको में अमरीकी जीवन शैली के संरक्षण हेतु अनेक संगठन अस्तित्वमें आए। महिलाओं के लाभार्थ संगठनों का भी जन्म हुआ।उन्होंने महिलाओं के लिए खराब कार्य स्थितियों तथा समान अधिकारों के सम्बन्ध में चिंता प्रदर्शित की। महिला मताधिकार आंदोलन तथा दासता मिटाने के लिए आंदोलन आवश्यक बन गए।

1915 से 1929

प्रथम विश्व युद्ध के बाद कई नवीन परिस्थितियाँ उभरीं जिनका सामुदायिक संगठन केअभ्यास पर महत्वपूर्ण प्रभाव था। इस अवधि में कल्याणकारी संस्थाओं की संख्यामें बढ़ोत्तरी परिलक्षित हुई, जिसने समन्वय तथा वित्त एकत्रित के बेहतर तरीकों के लिए माँग उत्पन्न किया, जबकि लोकार्थी व्यक्तियों ने समुदाय कल्याण परिषद का सहायता आपूर्ति के विवरण के लिए समर्थन किया। बड़े अंशदाताओं द्वारा सामुदायिक कोषों को शुरूआत की गई और ज़्यादातर काम स्व्यं सेवकों द्वारा संयोजित किया जाता था। प्रथम विश्व युद्ध का प्रभाव बार चैस्ट जैसी चैस्टों (खजानों/कोषों) के विकास पर भारी मात्रा में था। सामुदायिक संगठनके क्षेत्र में सोशल युनिट प्लान एक बहुत महत्त्वपूर्ण गतिविधि थी। इसकी शुरूआत 1915 में हुई और इसके परिणामस्वरूप ब्लॉक काउंसिलों, ब्लॉक वर्कर तथा फेडरेशनों का विकास हुआ, जिन्हें बाद में सिटीजंस काउंसिलें कहा गया।

1920 तक जोसेफ के हार्ट ने सामुदायिक संगठन शीर्षकसे एक लेख लिखा तदुपरान्त 1920 और 1930 के मध्य इस विषय पर लगभग पाँच पुस्तकें लिखी गई। वास्तव में इस अवधि के दौरान सामुदायिक संगठन के अभ्यास का मुख्य लक्ष्य वैयक्तिक समायोजन की दिशा में उन्मुख एजेंसियों में बढ़ोत्तरी करना था। सैटलमेंट हाउस तथा सोशल यूनिट प्लान में लगे कार्यकर्ताओं को छोड़कर परिवर्तनशील सामुदायिक संस्थाओं को कम ही प्राथमिकता दी गई। जो भी हो, कुछ भिन्न विचारों ने जन्म लेना शुरू कर दिया।

1929 से 1954

इस अवधि के दौरान अवसाद और द्वितीय विश्वयुद्ध का समाज कार्य पर गहरा प्रभाव रहा। बेरोजगारी में अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी के साथ-साथ बैंक तथा स्टॉक मार्केट भी फेल हो गए। सरकारी कार्यक्रमों का विस्तार इस अवसाद का प्रत्यक्ष परिणाम था। विधानों के अधिनियमन तथा सामुदायिक सुरक्षा तथा

न्यूनतम मजदूरी के माध्यम से सरकार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नियोजन एवं बढ़ावा देने वाली बन गई। सामुदायिक संगठन तथा समाज कार्य के बीच सम्बन्ध की जांच की गई संघीय सरकार अपनी एजेंसियों के माध्यम से सामाजिक नियोजन की मुख्य संस्था के रूप में स्थापित हो गयी। सामुदायिक संगठन के उद्देश्यों पर नजर डाली गई और सामुदायिक अभ्यासकर्ता की भूमिका पर विचार किया गया। अवसाद ने ट्रैड यूनियनवाद में भी मुख्य उत्थान को प्रोत्साहित किया। विधानों के क्रियान्वयन ने दिखाया कि सरकार यूनियनों के विकास में मददगार साबित हो रही है। अनेक अल्पसंख्यक समुदायों तथा दलित वर्गों को इस विकास की वजह से बहुत बल मिला, हालांकि इस अवधि के दौरान सामुदायिक संगठन एजेंसियों ने देश की भारी भरकम जरूरतों की आपूर्ति में स्वयं को अक्षम पाया।

जहाँ तक व्यवसाय के विकास का सम्बन्ध है, यह वह दौर था, जिसमें सामुदायिक संगठन के अभ्यास की प्रवृत्ति को संकल्पनात्मक किए जाने के गहन प्रयत्न किए गए। इसमें प्रमुख रूप से तीन बातें अन्तर्निहित थी–

i. समाज कार्य और सामुदायिक संगठन के मध्य सम्बन्ध। जहाँ एक विचारधारा के अनुसार वास्तव में सामुदायिक संगठन, समाज कार्य के अभ्यास का कानूनी और वैध रूप नहीं है, वहीं अन्य विचारधारा ने समाज कार्य के मूलभूत मूल्यों तथा विचारों के अनुरूप सामुदायिक संगठन को स्थापित करने के प्रयत्न किए।

ii. सामुदायिक संगठन के उद्देश्यों में रूचि, जो सामुदायिक एकीकरण को सुदृढ़ बनाने से लेकर सामुदायिक समस्याओं के व्यापक समुच्चय की रोकथाम/उन्मूलन/सुधार/समाधान से संबन्धित है।

iii. अभ्यासकर्ता के लिए उपयुक्त भूमिका जिसे समुदाय को मदद प्रदान करने तथा समुदाय के आत्म निर्धारण का पोषण करने के मध्य संतुलन स्थापित करने वाले के रूप में कल्पित किया गया।

1955 से 1968

नागरिक अधिकार आंदोलन के विकास, विधिक विद्यालय पृथक्करण के अंत तथा श्वेत अमरीकियों के बढ़ते असंतोष ने कई ऐसे संगठनों को जन्म दिया जिनका उद्देश्य अश्वेतों के लिए अवसरों की असमानता को समाप्त करना था। इस संघर्ष के नेता के रूप में मार्टिन लूथर किंग जूनियर उभरे। जहाँ ये संगठन अश्वेत गौरव के लिए लड़े, वहीं उन्होंने प्रतिवेशों सहित अश्वेत मामलों में स्वायत्तता की माँग भी की। बाद में, अन्य अल्पसंख्यक समूहों व अन्य समूहों ने भी अपने अधिकारों और अपनी विशेष पहचान का दावा करते हुए स्वयं को संगठित करना प्रारम्भ किया। संघीय सरकार ने सामुदायिक समस्याओं के व्यापक समूह जैसे मानसिक स्वास्थ्य, शराबखोरी, शारीरिक अक्षमता आदि का सामना करने के लिए राज्यों तथा स्थानीय सरकारों के सहायता अनुदानों के माध्यम से, संबन्धित उत्तरदायित्व उठाया। अनेक कार्यक्रमों से स्थानीय समुदायों के निवारण को प्रोत्साहन मिला जो एक ऐसी प्रक्रिया थी, जिसमें सामुदायिक संगठन के कौशलों की जरूरत थी। विस्ता ने बरहुड यूथ कोर्फ, प्रौढ़ शिक्षा तथा सामुदायिक

कार्रवाई के अन्य कार्यक्रमों ने स्थानीय प्रयत्नों के अवसर लिए प्रदान किए। 1966 में आवश्यक शहरी समस्याओं के समाधान के लिए मॉडल सिटीज प्रोग्राम जैसे कार्यक्रमों को भी स्थापित किया गया।

सामुदायिक संगठन के लिए प्रशिक्षण में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी हुई और 1969 तक सामुदायिक संगठनकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करने वाले समाज कार्य विद्यालयों की संख्या बढ़कर 48 हो गई। 1962 में समाज कार्य शिक्षा परिषद ने सामुदायिक संगठन के वैयक्तिक कार्य तथा समूह कार्य के समतुल्य समाज कार्य की विधि के रूप में औपचारिक रूप से मान्यता दे दी। सामुदायिक संगठनकर्ता को प्रशिक्षित करने के लिए पाठ्यक्रम विकसित करने का प्रयास 1963 में प्रारम्भ हुआ। इस अवधि के दौरान एक उल्लेखनीय उपलब्धि यह मान्यता थी कि सामुदायिक संगठन के अभ्यासकर्ताओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण की जरूरत है जो समाज कार्य की अन्य विशेषज्ञताओं से भिन्नहो।

1969 के बाद

वर्ष 1969 में निक्सन प्रशासन के आरंभ को चिह्नित किया, जिसके बाद कार्टर तथा रीगन प्रशासन आए। इन प्रशासनों का बल समाज कल्याण के क्षेत्र में सरकार,खासकर राष्ट्रीय सरकार की भूमिका को कम किए जाने पर था। तीन मुख्य प्रगति ने इस अवधि के दौरान, खासकर अस्सी के दशक में और बाद में समुदाय और सोसायटी स्तर, सामुदायिक स्थितियों तथा समाज कार्य के अभ्यास में प्रवृत्तियों को अस्तित्व दिया। ये निम्न थीं (नेसाबिट, 1982)-

i. उभरता हुआ एक सचूना समाज, जिसकी विशेषता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ‘उच्च प्रौद्योगिकी’ थी।
ii. एक विश्व अर्थव्यवस्था का विकास, जिसके परिणामस्वरूप निवेश पद्धतियों तथा वैश्विक स्तर पर अंतर-संगठन सम्बन्धों में बड़ी मात्रा में परिवर्तन हुए।
iii. विकेंद्रीकरण, जिसका परिणाम उस संबंर्धित भूमिका, जिसे अमरीका में राष्ट्रीय सरकार के विपरीत राज्य सरकारों ने निभाया शुरू किया, और प्रतिवेश में व्यापक वृद्धि, तथा ग्रामीण क्षेत्रों तथा छोटे शहरों की जनसंख्या के अंतरण स्वरूप हुआ।

सामुदायिक संगठन केमौजूदा चरण पर सर्वाधिक प्रभावित करने वाली सबसे अधिक उपयोगी गतिविधि स्वयं-सहायता कार्यों के मूल्य में विश्वास है। पिछले कई वर्षों में अमरिका में पारस्परिक सहायता के लिए सैकड़ों संगठन उत्पन्न हुए हैं और लगभग रोज ऐसे ही संगठन खड़े हो रहे हैं। जहाँ तक सामुदायिक संगठन संस्थाओं के विकास का सम्बन्ध है, सत्तर के दशक से अब तक सामुदायिक संगठन केअभ्यास में प्रमुख बदलाव यह रहा है कि संघीय वित्तपोषण हटा लिया गया है और समुदाय की दिशा में अग्रसारित अनेक संघीय परियोजनाएँ समाप्त कर दी गई हैं। इसके बावजूद जमीनी स्तर के संगठनों की संख्या में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी हुई है। इन संगठनों ने राज्य तथा स्थानीय सरकारों, स्वैच्छिक अनुदानों, वित्त उगाहने के प्रयत्नों, श्रम संगठनों, चर्च तथा व्यवसायों जैसे अनेक संस्थानों की ओर से समर्थन आदि समेत

वैकल्पित रूपों में समर्थन प्राप्त किया है। सभी नृवंशीय समुदायों तथा सभी सामुदायिकआर्थिक समूहों में संगठन विकसित हुए हैं।

2.4 भारत के सामुदायिक संगठन का इतिहास

समुदाय कार्य औपचारिक रूप से 1937 में, भारत में शुरू हुआ। मुम्बई में मलिन बस्तियों के साथ कार्य के अनुभव के परिणामस्वरूप समाज कार्य के प्रथम संस्थान 'टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज' की स्थापना हुई। इसके बाद 1946 में 'दिल्ली समाज कार्य विद्यालय' की स्थापना हुई। हालांकि 1950 के दशक से पहले समुदाय कार्य के बारे में कुछ खास गंभीर संज्ञान नहीं हुआ।स्वतंत्रोत्तर भारत में वर्ष 1951 में जाकर अपनी तरह के पहले कार्यक्रम सामुदायिक संगठन के सरकारी कार्यक्रम का आरंभ हुआ। समुदाय कार्य को भारत में, विशेष रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य तथा कृषि विकास के क्षेत्रों में, स्थानीय प्रयत्नों को विकसित करने की प्रक्रिया के रूप में विश्लेषित किया गया। इसे उपलब्ध संसाधनों के साथ जरूरतों को जोड़कर किया गया। 1937 से लगभग 1952 तक समुदाय कार्य कुछ खास प्रभावी नहीं था।
सामुदायिक संगठन के प्रारम्भिक चरण में प्रबल पैरोकार मुखर्जी थे।उन्होंने सामुदायिक विकास को "समुदाय की सक्रिय भागीदारी और यदि सम्भव हो तो समुदाय की पहल से सम्पूर्ण समुदाय के लिए बेहतर रहन-सहन की बढ़ोत्तरी के लिए तैयार किए गए आंदोलन" के रूप में परिभाषित किया। इसके अलावा, उनका बल इस बात पर था कि "जहाँ कहीं भी पहल सामने से नहीं हो रही तो इस पहल की बढ़ोत्तरी के प्रस्तुति के लिए तथा उद्दीपन किए जाने के प्रयत्न किए जाने चाहिए' (मुखर्जी 1961)। समुदाय कार्य 1970 के दशक में मुख्यत: सुधारवादी बना रहा, न कि अतिवादी या द्वन्द्व-उन्मुख। सामुदायिक कार्यकर्ताओं ने बड़ी मात्रा में शहरी मलिन बस्तियों में कार्य करना प्रारम्भ किया। यह मुख्य रूप से इस तथ्य की वजह से था कि बड़ी मात्रा में स्वयंसेवी संगठनों ने साक्षरता जीवन की मूलभूत सुविधाओं के प्रावधान, महिलाओं तथा बच्चोंके विकास आदि के क्षेत्रों में कार्य करना शुरू कर दिया। अनेक अन्य संगठनों द्वारा, जो पहले संस्थागत कार्य तक सीमित थी, एक सामुदायिक फोकस अपनाने पर जोर दिया गया। समुदाय कार्य के व्यापकतर अभ्यास के रूप में इसका परिणाम परिलक्षित हुआ, जहाँ 'समुदाय' का अभिप्राय मुख्य रूप से एक निर्धारित भौगोलिक क्षेत्र अथवा प्रतिवेश में लक्षित जनसंख्या से था।
पिछले कई वर्षों के दौरान सामुदायिक संगठन के प्रति एक वैकल्पिक दृष्टिकोण को मान्यता प्राप्त रही है, जो अपनी प्रकृति में अधिक 'अतिवादी' है। इसमें जनसंख्या के वंचित वर्ग के अस्तित्व की पूर्वकल्पना की गई है जिसे संवर्धित संसाधनों अथवा समान व्यवहार के लिए वृहतर समुदाय परमाँग करने के उद्देश्य से एकजुट किए जाने की आवश्यकता है (बोबो, केन्डल तथा मैक्स, 1996)। यह शैली अधिक प्रतिकूलतावादी है और शक्ति तथा संसाधनों का संवितरण करने, विधायी जनादेश को बदलने तथा सामुदायिक न्याय की बढ़ोत्तरी के लिए मध्यस्थता आवश्यक होती है। सामाजिक कार्रवाई दृष्टिकोण के

नाम से इस दृष्टिकोण को जाना जाता है। जहाँ तक व्यावहारिक संदर्भ का सम्बन्ध है, भारत में समाज कार्य के पेशेवर समाज कार्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध नहीं रहे हैं। यद्यपि छोटे स्तर के आधार पर इसमें हस्तक्षेप रहा है। कुल मिलाकर, सामुदायिक अभ्यास का चरित्र सुधारक कल्याण उन्मुख अथवा सामान्य 'समस्या–निवारक' जड़ों वाला रहा है।

90 के दशक के पूर्वार्ध से अब तक, सामुदायिक प्रवंचना (स्वास्थ्य, शिक्षा, बाल मार्गदर्शन, क्षमता विकलांगता आदि के संदर्भ में) और अभी हाल ही में व्यापारिक घरानों तथा कारपोरेटों को अपने आस-पास के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए सम्मिलित करने (जिसे सामान्य तौर पर कारपोरेट सामुदायिक ज़िम्मेदारी) ने भी सामुदायिक अभ्यास में पेशेवरों के सम्मिलित होने की आशा को व्यापक कर दिया है। इसी समयावधि में क्षमता निर्माण के सिद्धान्त में एक विवेचनीय गतिविधि भी रही है, जो इस तथ्य पर जोर देती है कि लोगों को विश्व के संसाधनों में समान हिस्सेदारी करने और स्वयं के विकास का हक होता है। लोगों को उनके मूल्यों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण करने और इन पर कार्य करने की क्षमताओं के सुदृढ़ीकरण को ज़्यादातर सामुदायिक अभ्यास का आधार माना जा रहा है। क्षमता निर्माण जरूरतमंदो का विकास नहीं कर रहा है, अपनी सहज प्रवृत्ति में यह लोगों को योजना क्रियान्वित करने और विकास के अपने विकल्प को अपनाने में मदद कर रहा है।

वर्तमान में, ये सिद्धान्त व्यावहारिक स्थितियों की अपेक्षा सैद्धांतिक चर्चाओं में अधिक प्रकाश में हैं। इन सबके बावजूद, देश के विभिन्न भागों में जमीनी स्तर पर किए जा रहे अपवाद स्वरूप प्रयत्न पेशेवरों की आशा और विश्वास को जगाते हैं कि सामुदायिक संगठन के अभ्यास में इच्छित बदलाव बस होने ही वाले हैं।

2.5 सारांश

इस अध्याय में सामुदायिक संगठन के इतिहास पर, समाज कार्य के अभ्यास की एक विधि के रूप में चर्चा प्रस्तुत की गई है। इंग्लैंड में सामुदायिक संगठन की उत्पत्ति तथा विकास की व्याख्या करने के अलावा इस इकाई में अमेरीका में इस विधि के विकास को भी खँगालने का प्रयास किया गया है। भारतीय संदर्भ में सामुदायिक संगठन के इतिहास का भी एक विवरण प्रस्तुत किया गया हैं ताकि हम वर्ष1936 से वर्तमान समय तक समाज कार्य की शिक्षा के अन्तर्गत आरम्भ से इस विधि से अभ्यास की प्रकृत्ति तथा प्रवृत्तियों को समझ सकें।

2.6 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: इंग्लैंड में सामुदायिक संगठन के इतिहास को प्रस्तुत कीजिये।

प्रश्न 2: सामुदायिक संगठन के विकास को अमेरिका के संदर्भ में अवलोकित कीजिये।

प्रश्न 3: भारतीय परिदृश्य में सामुदायिक संगठन के इतिहास का वर्णन कीजिये।

2.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. बर्टन पी (2003), *कम्युनिटी इनवोल्वमेंट इन नेबरहुड रीजनरेशन: स्टेर वे टू हैवन ओर रोड टू नोवेहर?* अवेलेबल एट www.neighbourhoodcentre.org.
2. डनहम,अर्थर (1998), *कम्युनिटी बैलफेयर आर्गनाइजेशन: प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस*. न्यार्क : थामस वाई क्रोवेल कम्पनी।
3. फ्रेडलैंडर डब्ल्यू. ए. एण्ड राबर्ट जैड (1982) *इंट्रोडक्शन टू सोशल वैलफेयर*, प्रेन्टिस-हाल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड।
4. गेविन, सी.डी एण्ड कोक्स, एफ एम (2001) ए हिस्ट्री आफ कम्युनिटी आर्गनाइजिंग सिन्स द सिविल वार विद स्पेशल रैफरेन्स टू अप्रेस्ड कम्युनिटीज इन जे. रोथमैन, जे. एल. एरलिक, एण्ड जे.ई. ट्रोपमैन (एडिशन्स) *स्ट्रेटीज आफ कम्युनिटी इन्टरवेंशन* एफ. ई. पीकोक इटास्का आई एल।
5. गिडन्स ए. (1998) द *थर्ड वे: द रिन्युअल आफ सोशल डैमोक्रेसी*. कैमब्रिज पोलिटी प्रैस।
6. गुलबैनलडन स्टडी ग्रुप(1968) *कम्युनिटी वर्क एण्ड सोशल चेंज*. लंदन : लोंगमैंन।
7. क्युनसटर, पीटर (1961), *कम्युनिटी आर्गनाइजेशन इन ग्रेटब्रिटेन*. लंदन : कटलेज एण्ड केगन पाल।
8. नाइसबिट, जान (1982) *मेगाट्रेंडस: टैन न्यू डायरेक्शन्स ट्रांसफोरमिंग अवर लाइब्स*. न्यूयार्क : वैनर बुक्स।
9. रूथ मैंन, जे.एल. ऐरलिच एण्ड ट्रोपमैंन (इडीसन्स) (2001) *स्ट्रेटिजीज आफ कम्यूनिटी इंटरवेंशन* (16 वाँ एडिशन) एफ. ई पीकोक, इटासका आई एल।
10. सिद्दकी एच. वाई (1997) *वर्किंग विद द कम्युनिटीज : एन इन्ट्रोडक्शन टू कम्युनिटी वर्क*. नई दिल्ली हीरा पब्लिकेशन्स।
11. स्टैनर, एफ.डी. (1958) *कम्युनिटी आर्गनाइजेशन द न्यू सैनच्यूरी*. न्यूयार्क।

इकाई 3
समाज कार्य के अभ्यास के तरीके के रूप में सामुदायिक संगठन

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 एक वृहत विधि के रूप में सामुदायिक संगठन
3.3 समस्या निवारक विधि के रूप में सामुदायिक संगठन
3.4 सामुदायिक संगठन तथा समाज कार्य की अन्यविधियों के मध्य सम्बन्ध
3.5 सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक संगठन की प्रासंगिकता
3.6 सामुदायिक संगठन तथा सामुदायिक विकास
3.7 सामुदायिक संगठन के सिद्धान्त
3.8 सारांश
3.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- समाज कार्य की एक विधि के रूप में सामुदायिक संगठन कोस्पष्ट कर सकेंगे।
- समस्या निवारक विधि के रूप में सामुदायिक संगठन के महत्व कोसमझा सकेंगे।
- सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक संगठन की प्रासंगिकता को रेखांकित करते हुए सामुदायिक संगठन और सामुदायिक विकास के मध्य अंतर कर सकेंगे
- समुदायों के साथ कार्य करने की विधि के रूप में सामुदायिक संगठन के अन्तर्निहित सिद्धांतों की व्याख्या कर सकेंगे।

3.0 प्रस्तावना

सामुदायिक संगठन, समाज कार्य की प्रमुख विधियों में से एक है, ठीक उसी प्रकार से जैसे वैयक्तिक कार्य, समूह कार्य, समाज कल्याण प्रशासन तथा समाज कार्य शोध। जहाँ वैयक्तिक कार्यकर्त्ता का संदर्भ 'व्यक्ति' होता है, और समुह कार्यकर्त्ता का संदर्भ 'समूह' होता है, वही सामुदायिक संगठनकर्त्ता 'समुदाय' के संदर्भ में कार्य करता है। सम्पूर्ण समुदाय के साथ सामुदायिक संगठनकर्ता 'सेवार्थी' के रूप में कार्य करता है। वह उसकी मुख्य उप-संस्कृतियों से व्यवहार करता है, समुदाय को उसकी महत्वपूर्ण

जरूरतों तथा समस्याओं की पहचान करने में सक्षम बनाताहै, इनसे निपटने के लिए सामूहिक इच्छा को विकसित करने, उनके सम्बन्ध में कार्रवाई करने में सहायता देता है और ऐसा करने में समुदाय की संगठित इकाई के रूप में काम करने की क्षमता में बढ़ोत्तरी करता है।

3.1 एक वृहत विधि के रूप में सामुदायिक संगठन

सामुदायिक कार्य का एक न एक रूप सदैव विद्यमान रहा है, परन्तु जब समाज कार्य के व्यवसाय की विधि के दृष्टिकोण से अवलोकित किया जाए, तो समुदाय कार्य तुलनात्मक रूप से हाल ही के मूल का है। लेन समिति रिपोर्ट (1939) के द्वारा सबसे पहले सामुदायिक संगठन को समाज कार्य की विधि के रूप में मान्यता दी गई। सामुदायिक संगठन को समाज कार्य में अभ्यास की एक वृहत विधि (फिंक, 1978) अथवा वृहत स्तर का समाज कार्य माना जाता है, चूँकि इसका प्रयोग लोगों के एक बड़े समूह को प्रभावित करने वाली व्यापकतर सामुदायिक समस्याओं के निपटारे के लिए किया जाता है। 'वृहत' शब्द का प्रयोग, सामूहिक रूप से सामुदायिक समस्याओं का समाधान करने में बड़ी मात्रा में लोगों को सम्मिलित करने की इसकी सक्षमता के कारण किया जाता है। इस प्रकार यह विधि हमें मध्यस्थता के कार्यक्षेत्र/स्तर में बढ़ोत्तरी हेतु सक्षम बनाती है। वैयक्तिक कार्य, जिसमें एक समय में एक ही व्यक्ति के साथ व्यवहार किया जाता है, अथवा समूह कार्य, सीमित संख्या में भागीदारों के साथ व्यवहार किया जाता है, के विपरीत सामुदायिक संगठन का सरोकार किसी भी समय में बड़ी संख्यामें जनसमूह के साथ रहता है।

वैयक्तिक दृष्टिकोण उस संदर्भ में व्यवहारिक नहीं होता जहाँ समस्या/समस्याओं का आकार व्यापक हो जाता है। ऐसे मामलों में हमें ऐसा तरीका उपयोग करना पड़ता है जो एक साथ लोगों की बड़ी संख्या की मदद कर सके। यह खासकर विकासशील देशों के मामले में सत्य है जहां लोगों के सामने विभिन्न समस्याओं की मात्रा अधिक होती है और इस प्रकार बड़े क्षेत्रों के साथ कार्य करने की तात्कालिक जरूरत पड़ती है। ऐसे संदर्भ में समुदाय समाज कार्य की मध्यस्थता का एक उपयोगी स्तर हो जाता है तथा सामुदायिक संगठन इन देशों के समक्ष मौजूद आर्थिक और सामुदायिक समस्याओं केनिपटारे के लिए समाज कार्य की एक प्रभावी विधि के रूप में उत्पन्न होता है।

3.3 समस्या निवारक विधि के रूप में सामुदायिक संगठन

सामुदायिक संगठनकी विधि के लिए समुदाय सेवार्थी होता है। बिल्कुल वैयक्तिक कार्य तथा समूह कार्य की अन्य विधियों की भांति, सामुदायिक संगठनकी विधि का उद्देश्य भी अपने 'सेवार्थी' जो कि समुदाय होता है, की समस्याओं का निवारण करना तथाजरूरतों को पूरा करना होता है। यह निम्नलिखित से भी संबन्धित होता है–

1. अपनी अव्यक्त संभावनाओं का निर्गमन
2. अपने स्वदेशी संसाधनों का अत्यधिक प्रयोग।

3. स्वयं के जीवन प्रबंधन हेतु अपनी क्षमता का विकास।

4. एक संगठित इकाई के रूप में कार्य करने के उद्देश्य से अपनी सक्षमता का विस्तार।

अन्य विधियों की भांति सामुदायिक संगठन भी समानमान्यताओं पर निर्भर करता है, यथा- सेवार्थी की गरिमा तथा मूल्य, अपनी समस्याओं का सामनाकरने के लिए सेवार्थी द्वारा धारण किए गए संसाधन, वह अन्तर्निहित क्षमता जो सेवार्थी के पास उसके विकास तथा संवर्धन के लिए होती है और अपने मामलों के प्रबंधन में तार्किक चयन की क्षमता। एक वैयक्तिक कार्यकर्ता का यह मानना है कि अक्सर व्यक्ति जीवन की कठिनाइयों से परेशान होकर परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पंगू हो जाता है, जिससे बाद में कार्रवाई के द्वारा प्रतिक्रिया करने की उसकी स्वयं की क्षमता संकुचित हो जाती है। लेकिन उपयुक्त सुविधा के साथ इस अवस्था पर नियंत्रण पाया जा सकता है और संबन्धित व्यक्ति के लिए विकास की सामान्य प्रक्रिया फिर से शुरू की जा सकती है। इसके अलावा उस वैयक्तिक कार्यकर्ता की तरह जो अपने सेवार्थी को उसके वास्तविक रूप में स्वीकार करता है, सेवार्थी के साथ एक व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करता है, वहीं से आरंभ करता है जहाँ सेवार्थी होता है और उसे अधिक कार्यकारी तथा स्वायत्त बनने में सहायता प्रस्तुत करता है। वैयक्तिक कार्यकर्त्ता की तरह सामुदायिक संगठनकर्ता के पास भी समान सामान्य दिग्विन्यास होता है वह समुदाय, जो उसके लिए सेवार्थी होता है, के साथ कार्य करने में समान दृष्टिकोण को अपनाता है।

इस प्रकार सामुदायिक संगठन का वैयक्तिक कार्य तथा समूह कार्य की तरह साझा आधार, साझा दर्शन तथा विधि होती है। यह भी सेवार्थी व्यवस्था में समस्या निवारण तथा परिवर्तनों को सरल बनाने की दिशा में उन्मुख होता है। भारतीय समुदायों के संदर्भ में व्यवहृत समस्याओं का चरित्र गरीबी, बेरोजगारी, शोषण, मूलभूत सुविधाओं की सुलभता का अभाव तथा सामुदायिक न्याय/अधिकारों की वंचना से संबन्धित होता है। समस्याएं और अधिक समूह निदेशित होती है अर्थात वे विशिष्ट समूहों जैसे महिलाओं, बच्चों, वृद्धों अथवा पिछड़े वर्गों से संबन्धित होती हैं। जहाँ सभी समाज कार्य के अभ्यासकर्ता साझे उद्देश्यों तथा कतिपय सामान्यीकृत दृष्टिकोणों विचारधाराओं का अनुसरण करते हैं, वहीं सामुदायिक संगठन तथा अन्य विधियों के मध्य महत्वपूर्ण विभिन्नता भी होती है।

चूँकि कार्यकर्त्ता सामुदायिक संगठन में एकबड़े कार्य क्षेत्र पर काम करता हैं–

- वह एक ही समुदाय के भीतर अलग-अलग उप-समूहों तथा उप-संस्कृतियों से संबन्धित होता है।
- उसे विविध समूहों से यथा संबन्धित मूल्य व्यवस्थाओं, व्यवहारगत अभिवृत्तियों सामुदायिक संगठन, औपचारिक तथा अनौपचारिक नेतृत्व के संज्ञान में अंतर्दृष्टि का विकास करना पड़ता है।
- उसे उन हितों तथा समस्याओं के बारे में समझ विकसित करनी होती है, जो उसके समूहों में साझी हैं।

- उनमें उपलब्ध सहयोग तथा प्रतिस्पर्धा के स्तर का अवलोकन करना होता है।

इस प्रकार यहाँ प्रयुक्त कार्य प्रणाली और समझने के तरीके वैयक्तिक कार्यकर्त्ता अथवा समूह कार्यकर्त्ता से पृथक हैं। समस्या सुलझाने की किसी भी प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन चरण होते हैं- अध्ययन, निदान तथा मध्यस्थता/उपचार/समाधान। सर्वप्रथम सूचना एकत्रित करके समस्या का अध्ययन करना होता है। इस सूचना से, समस्या की ओर ले जाने वाले मुख्य कारणों के बारे में समझ विकसित होती है। इस चरण को निदान कहा जाता है। निदान के आधार पर समस्या का समाधान अथवा मध्यस्थता की जाती है जिसे 'उपचार' कहते हैं।

3.4 सामुदायिक संगठन तथा समाज कार्य की अन्य विधियों के मध्य सम्बन्ध

1. सामुदायिक संगठन तथा वैयक्तिक कार्य

वैयक्तिक कार्य को सामुदायिक संगठन का एक अभिन्न अंग माना जाता है। जब सामुदायिक संगठनकर्त्ता समुदाय में प्रवेश करता है, उनकी जरूरतों को पहचानता है और समूह तथा संगठन के संचालन की दिशा में कार्य करता है। संबन्धित मुद्दों/समस्याओं पर जागरूकता उत्पन्न करने के लिए वैयक्तिक सम्पर्क रणनीति का प्रयोग भी किया जाता है। सामुदायिक संगठन को समुदाय में बड़ी संख्या में व्यक्तियों के साथ व्यवहार का निष्पादन करना पड़ता है। वे निम्नांकित हो सकते हैं–

i. वे व्यक्ति जिनसे बदलाव का विरोध अथवा प्रतिरोध करने की कामना की जा सकती है।
ii. विशिष्ट परिस्थिति वाले व्यक्ति जैसे नेता, शक्ति धारक,
iii. कमजोर/वंचित वर्गों के लोग, जिनमें हस्तक्षेप हेतु इच्छा व क्षमता की कमी हो सकती है।

ऐसे मामलों में वैयक्तिक कार्य से संबन्धित ज्ञान सफल समुदाय कार्य के लिए और कौशल पूर्ण अनिवार्यता बन जाते हैं।

2. सामुदायिक संगठन तथा समूह कार्य

समुदाय को समूहों के संकलन के रूप में समझा जा सकता है, जो पारस्परिक रूप से जुड़ी सामुदायिक श्रेणी के एक जाल में उपस्थित होता है। सामुदायिक संगठन के दौरान, सामुदायिक संगठनकर्ता का प्रमुख काम छोटे तथा बड़े समूहों तथा उपसमूहों के साथ कार्य करना है। इसलिए सामुदायिक संगठन को एक अंतर-समूह अभ्यास के रूप में भी विश्लेषित किया जाता है। समूह कार्य की समझ से सामुदायिक संगठनकर्त्ता को अंतर-समूह सम्बन्धों को सुदृढ़ करने व एक साझे मंच के रूप में उनके बीच संपर्क को सरल बनाने में सहायता मिलती है। वह अक्सर उन छोटे समूहों की पहचान करता है जहाँ से एक प्रारम्भ किया जा सके और फिर वह साझे तौर पर आनुमानिक जरूरतों पर वृहतर हस्तक्षेप प्राप्त करने के लिए अंतर-समूह सम्पर्क विकसित करने का प्रयास करता है। ऐसे संदर्भ में सामुदायिक संगठन, समूहों तथा

समूह के साथ व्यवहार का एक अभिन्न अंग बन जाता है। इसलिए यह स्फट है कि सामुदायिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामुदायिक संगठनकर्ता को व्यक्तियों, परिवारों तथा समूहों के साथ कार्य करना पड़ता है और उसके पास सामुदायिक संगठन के कौशलों के अलावा, वैयक्तिक कार्य तथा समूह कार्य की कुशलता भी होनी चाहिए।

3. सामुदायिक संगठन तथा समाज कार्य शोध

सामुदायिक संगठन को समुदायों के साथकार्य करने के दौरान शोध सम्बन्धी ज्ञान और कौशलों पर भी निर्भर रहना पड़ता है। एक प्रक्रिया के रूप में सामुदायिक संगठन का आरंभ तथ्य खोजने से करनी पड़ती है। समुदाय को ढूंढ़ने, पहचानने तथा समझने में शोध का प्रयोग अपरिहार्य है। शोध से लोगों की प्राथमिकताओं और वरीयताओं, किसी मुद्दे अथवा समस्या के प्रति उनकी अभिवृत्तियों तथा दृष्टिकोणों पर उल्लेखनीय सूचनाएँ भी मौजूद होती हैं। इसका उपयोग विशेष प्रयोजनों जैसे महामारी से संबन्धित अध्ययनों अथवा सामाजिक सूचकों के अध्ययन के लिए भी किया जा सकता है। प्रक्रिया की निगरानी तथा मूल्यांकन के लिए भी मूल तथा अन्त के प्रवाह के सहायता से शोध के सतत प्रयोग की आवश्यकता होती है।

3.5 सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक संगठन की प्रासंगिकता

पारम्परिक रूप से सामुदायिक संगठन तथा सामुदायिक विकास संबन्धित हैं। सामुदायिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सामुदायिक संगठनकी विधि का इस्तेमाल किया जाता है। संयुक्तराष्ट्र के अनुसार समुदाय के आर्थिक, राजनीतिक तथा सामुदायिक पक्षों के सम्पूर्ण विकास से सामुदायिक विकास संबन्धित होता है। पूर्ण विकास के लिए सामुदायिक विकास को एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। सामुदायिक विकास में निम्नलिखित पक्षों को आवश्यक माना जाता है–

1. लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं
2. स्वैच्छिक सहयोग
3. स्वयं-सहायता
4. नेतृत्व का विकास
5. शैक्षिक पक्ष

सामुदायिक संगठन के दृष्टिकोण सेउपरोक्त सभी पक्ष प्रासंगिक हैं–

- लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का सम्बन्ध सभी समुदाय सदस्यों को निर्णय प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने देने से है जो सामुदायिक संगठन के सहायता से ही संभव है। निर्णय लेने में चयनित या चुने हुए सदस्यों अथवा प्रतिनिधियों की मदद ली जाती है। इस प्रकार लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं से लोगों को सामुदायिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त में भागीदारी करने में सहायता मिलती है।

- स्वैच्छिक सहयोग से तात्पर्य है कि लोग स्वयं भागीदारी करते हैं। इसके लिए पहले उन्हें भरोसा दिलाना पड़ता है। उन्हें अनुभव होना चाहिए कि उन्हें बिना किसी पूर्वाग्रह के विकास की प्रक्रिया में स्वयं को सम्मिलित करना होगा। इस अभिवृत्ति का समर्थन सामुदायिक संगठन की विधि से सम्पन्न किया जाता है। यदि अपनी स्थितियों के बारे में असंतोष उत्पन्न होता है तो लोग भागीदारी के लिए स्वयं उन्मुख होंगे।
- सामुदायिक विकास का आधार स्व्यं-सहायता होता है। इसका सम्बन्ध लोगों की आंतरिक संसाधनों को संचालित करने के कौशल से होता है। स्वयं-पर्याप्तता और धारणीय विकास का आधार स्वयं-सहायता है। सामुदायिक संगठन के संदर्भ में भीस्वयं सहायता पर जोर दिया जाता है और उसे प्रोत्साहित किया जाता है।
- सामुदायिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष नेतृत्व का विकास करना होता है। निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में नेतृत्व लोगों को प्रभावित करता है और दक्ष बनाता है। सामुदायिक संगठन भी नेतृत्व विकास पर काफी जोर देता है। नेताओं कीमदद के कारण ही लोग कार्रवाई में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित होते हैं।
- सामुदायिक विकास में शैक्षिक पहलू का अभिप्राय लोगों को लोकतंत्र, सहयोग, एकता, कौशल विकास, प्रभावी कार्य प्रणाली आदि की अवधारणाओं को जानने, सीखने तथा स्वीकार करने से है।

सामुदायिक संगठन मेंऊपर वर्णित पहलुओं कोअत्यन्त उपयोगी माना जाता है। इस प्रकार दोनों समुदाय की प्रगति के लिए शैक्षिक पक्षों पर जोर देते हैं। इस सबसे इस वक्तव्य को समर्थन मिलता है कि सामुदायिक संगठन और सामुदायिक विकाससंयुक्त रूप से जुड़े हुए व समर्थक होते हैं। दोनों में लोकतांत्रिक तरीकेव स्वयं सहायता के सिद्धांतोंको महत्व दिया जाता है।

3.6 सामुदायिक संगठन तथा सामुदायिक विकास

सामुदायिक संगठन समाज कार्य की एक प्राथमिक प्रणाली है। इसके अन्तर्गत समुदाय के सदस्यों को आपस में एकत्रित कर उनकी सामुदायिक कल्याण व विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को खोज निकालने तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक साधनों को जुटाने की योग्यता का उनमें विकास किया जाता है जिसके फलस्वरूप वे अपनी समस्याओं का निराकरण कर प्रगति व विकास के पक्ष पर अग्रसर हो सके। सामुदायिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सामुदायिक जनशक्तियों का प्रयोग उनके स्वयं के प्रयासों से एकत्रित करने से बांधित जानकारी व गैर सरकारी कर्मचारियों द्वारा सामुदायिक सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक स्थिति को उच्च करने तथा सामुदायिक जीवन को राष्ट्रीय

जीवन में परिवर्तित करने जैसे कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। सामुदायिक संगठन और सामुदायिक विकास में प्रमुख विभेद निम्न हैं–

1. सामुदायिक संगठन का मुख्य उद्देश्य सामुदायिक सदस्यों के बीच आपसी सहयोगी सलाह व एकता विकसित करता है जबकि सामुदायिक विकास में सामुदायिक सदस्यों विशेषकर अविकसित व विकासशील समुदायों के आर्थिक विकास पर जोर दिया जाता है।
2. आवश्यक नही है कि सामुदायिक संगठन का कार्य सरकार द्वारा ही संचालित हो। यह स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षित सामुदायिक संगठन कार्यकर्ताओं के सहयोग से भी किया जा सकता है जबकि सामुदायिक विकास सरकार द्वारा संचालित सामुदायिक सदस्यों के आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम हैं।
3. सामुदायिक संगठन कार्य में एक कुशल सामुदायिक संगठनकार्यकर्ता के मार्गदर्शन से सामुदायिक सदस्यों में अपने आप सामुदायिक योजना व संगठन बनाने की क्षमता का विकास करना सम्मिलित है जबकि सामुदायिक विकास में सदस्यों के वर्तमान स्तर को ऊँचा उठाने मुख्यतः उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने के लिए प्रयास कार्यक्रमों को कार्यान्वित या नियमित करना सम्मिलित है।
4. सामुदायिक संगठन कार्यकर्ता समाज कार्य व्यवसाय में एक प्रशिक्षित कार्यकर्ता है जो अपने ज्ञान एवं कौशल का प्रयोग सामुदायिक सदस्यों के साथ उनकी सामुदायिक योजना बनाने तथा सामुदायिक एकता में करता है जबकि सामुदायिक विकास कार्यकर्ता एक सरकारी कार्यकर्ता होता है जो समुदाय की वर्तमान अवस्था के विभिन्न कारको एवं उपयों के विषय में जानकारी प्राप्त करता है।
5. सामुदायिक संगठन कार्य वह कार्य है जिसमें सामुदायिक कार्यकर्ता सामुदायिक सदस्यों को उनकी आवश्यकताओं एवं उपलब्ध साधनों के बीच समायोजना लाने की योग्यता एवं सामुदायिक कल्याण की भावना का विकास करता है जबकि सामुदायिक विकास वह कार्य है जिसमें सामुदायिक सदस्यों द्वारा समुदाय की सामान्य आवश्यकताओं और विभिन्न उपलब्ध साधनों के बीच व्यवस्थित संतुलन स्थापित करना सम्मिलित है।

इस प्रकार सामुदायिक संगठन के अन्तर्गत एक दक्ष एवं प्रशिक्षित कार्यकर्ता अपने वैयक्तिक ज्ञान/प्राविधिक निपुणताओं तकनीको व कौशल का उपयोग कर समुदाय के सर्वांगिण विकास के लिऐ उसे सक्षम कराना है जबकि सामुदायिक विकास में समुदाय के जीवनस्तर मुख्यत: आर्थिक स्तर के संबंध में महत्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान की जाती है। इनमें प्रमुख अंतर समुदाय के सक्षम बनाने वाले तत्वों का होता है। इस सदंर्भ में सामुदायिक संगठन सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को अधिक सफल बनानें उनके लाभो को विस्तारित करने तथा उन्हें बनाने के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

3.7 सामुदायिक संगठन के सिद्धान्त

सामुदायिक संगठन में सिद्धान्त से आशय ऐसे ज्ञान कथन या सामान्य नियम से है जो विभिन्न समाज वैज्ञानिको के चिन्तन, अनुभव अवलोकन, अध्ययन तथा शोध से प्राप्त होता है तथा जिसे प्रमाणों के आधार पर व्यापक तौर पर सत्य माना जाता है। सामुदायिक संगठन अभ्यास प्रक्रिया में हमे इनके सहारे एक स्थिति से इसकी स्थिति में बदते है अर्थात सामुदायिक संगठन कार्य के दौरान ये ज्ञान के साधन के रूप में कर्ता का मार्ग दर्शन करते हैं। इनका अनुसरण करके कर्ता सामुदायिक संगठन के लक्ष्यों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्राप्त कर सकता है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी तरह से सामुदायिक संगठन कार्य के सिद्धान्तो का वर्णन किया है। मैक्लीस ने इसके 7 सिद्धान्तों तथा जोंस व डिमार्क ने इसके 13 सिद्धान्तो का वर्णन किया है। कैसिडी ने इसके 5 सिद्धान्तों तथा रॉस ने 13 सिद्धान्तो का उल्लेख किया है। उपरोक्त तथा अन्य विद्वानो के विचारो के अध्ययन तथा विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सामुदायिक संगठन कार्य के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

1. **स्वीकृति का सिद्धान्त-** यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि कर्ता समुदाय को उसी रूप में स्वीकार करे जिस रूप में समुदाय उसे दिखाई देता है और सभी को समुदाय से स्वीकार कराये अर्थात वह सेवार्थी समुदाय की रूढियों परम्पराओं तथा सम्यता संस्कृति व सामुदायिक मूलों को समझे उनकी राय तथा अपने व्यवहार को समुदाय के व्यवहार से जोड़कर तथा तादात्म्य स्थापित कर समुदाय में अपना लोकप्रिय स्थान बनाये जिससे समुदाय उसे अपना ले।
2. **अनुभूत आवश्यकताओं एवं उपलब्धसाधनों के ज्ञान का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार कर्ता को अपने सेवार्थी समुदाय द्वारा महसूस की गयी आवश्यकता का पता लगाना चाहिए और उनकी पूर्ति के लिए समुदाय व समुदाय के आसपास कार्यरत सरकारी व गैर-सरकारी स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा उपलब्ध विभिन्न साधनों का पता लगाना चाहिए जिससे आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधनो को संचालित किया जा सके।
3. **व्यक्तिकरण का सिद्धान्त-** वह सिद्धान्त जिसके अनुसार कर्ता को प्रत्येक समुदाय की विशिष्ट समुदाय तथा उसकी समस्याओं को विशिष्ट समस्याएँ मानना चाहिए तथा समुदाय के अन्दर विभिन्न सामाजिक तथा आर्थिक वर्गों की समस्याओं को विशिष्टता के आधार पर अध्ययन करना चाहिए यह व्यक्तिकरण का सिद्धान्त कहलाता है। इसके अनुसरण में कर्ता समुदाय के सभी समूहो व उपसमूहों के सदस्यों से मिलकर उनकी समस्याओं का अध्ययन करता है और विभिन्न एकत्रित समस्याओं के अध्ययनोपरांत सामान्य तथा सार्वजनिक लाभ प्रदान करने वाली समस्याओं को प्राथमिकता देता हैं।
4. **आत्म संकल्प का सिद्धान्त-** यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि कर्ता को सेवार्थी समुदाय को आत्म सहायता योग्य बनाने के लिए आवश्यकतानुसार समुचित सहायता अवश्यकता करना चाहिए किंतु इस प्रयास में समुदाय को निर्णय की पूर्णस्वतंत्रता होनी चाहिए। इससे समुदाय के

सदस्य अपने को जिम्मेदार महसूस करेगे और अपने द्वारा लिये गये निर्णय के कार्यान्वपन एवं उसके उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहेगे।

5. **सीमाओं के बीच स्वांत्रता का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार सामुदायिक संगठन कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी समुदाय को आत्मनिर्णय लेने की स्वतंत्रता समुदाय केकल्याण की सीमा तक दी जानी चाहिए यह सीमाओं के बीच स्वांत्रता का सिद्धान्त कहलाता है। इसे अनुसरण में कर्म समुदाय की आवश्यकताओं एवं समस्यओं के संबंध में समुदाय द्वारा लिये जारहे निर्णयों पर इस तरह नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास करता है कि समुदाय के बहुमत के लिए कल्याणकारी सिद्ध न होने वाले निर्णयों को वह प्रभावशाली सदस्यों के सहयोग व अपनी कुशलता से रोक सके।
6. **नियंत्रित संवेगात्मक संबंधों का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार कर्ता को सामुदायिक सदस्यो की समस्याओं को अपनेध्यान, ज्ञान, विचार एवं एकाग्रता को सदस्यों के ज्ञान विचार व एकाग्रता के साथ जोड़ना चाहिए लेकिन चिंतन व निर्णय के समय उसमें अपने व्यावसायिक पक्षों को ध्यान में रखकर समस्या उन्मूलन हेतु प्रभाव पूर्ण निर्णय लेना चाहिए।
7. **लचीले कार्यात्मक संगठन का सिद्धान्त-** यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि कर्ता को समुदाय के सदस्यों को एकत्र कर ऐसे संगठन का निर्माण कराना चाहिए जिसमें समुदाय के सभी सामाजिक–आर्थिक वर्गों का समुचित प्रतिनिधित्व हो जिसका आकार, लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनुकूल हो तथा जिसमें सदस्य लोकतांत्रिक पद्धति से योग्य नेता का चुनाव कर सकें और संगठन में कर्मचारियों के कार्यो का पूरा बँटवारा होना चाहिए तथा संगठन इस प्रकार लचीला होना चाहिए जिसमें उससे आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके।
8. **उद्देश्य पूर्ण सम्बन्ध का सिद्धान्त-** यह सिद्धान्त बताता है कि कर्ता तथा समुदाय/सामुदायिक सदस्यों/समूहों उपसमूहों के बीच संबंधउद्देश्यपूर्ण होना चाहिए अर्थात कर्ता को संबंधों को घनिष्ट बनाना चाहिए और इनके उन आयामों को प्रोस्ताहित करना चाहिए जो लक्ष्य प्राप्ति में सहायक हो तथा लक्ष्य प्राप्ति में सहायक न होने वाले संबंधों कोऔर उनके आयामों को कर्ता को सतर्कता के साथ हतोत्साहित करना चाहिए।
9. **प्रगतिशील कार्यक्रम सम्बन्धी, अनुभव का सिद्धान्त-** कर्ता को कार्यक्रम निर्धारित करते समय तथा उसकी विकास प्रक्रिया के दौरान सामुदायिक सदस्यों की अभिरूचियों, आवश्यकताओं, योग्यताओं तथा समुदाय में उपलब्ध समाज कल्याण के स्तर के आधार पर आवश्यक कार्यकमों की ओर संकेत करना चाहिए। प्रारम्भ में कार्यक्रम छोटे, आसान और अल्पकालीन होने चाहिए और समुदाय के कार्यक्रम सम्बन्धी अस्तुम्खो के बदले के साथ कार्यक्रमों को उत्तरोत्तर जटिल व अधिक उपयोगी होते जाना चाहिए।

10. **जन सहभागिता का सिद्धान्त-** सामुदायिक संगठन कार्य समुदायिक सदस्यों के लिए तथा सदस्यों के द्वारा और सदस्यों के साथ किया जाता है। उपरोक्त तथ्य की छाया में जन सहभागिता का सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि कर्ता को संगठन कार्य के प्रत्येक चरण में सामुदायिक सदस्यों की जन सहभागिता को प्रोत्साहित तथा सुनिश्चित करना चाहिए। प्रत्येक निर्णय में सहभागी होने पर सदस्य इसे अपना निर्णय तथा कार्यक्रम को अपना कार्यक्रम समझेंगे और इसे सफल बनाने में अपनी जिम्मेदारी महसूस करेंगे।

11. **मूल्यांकन का सिद्धान्त-** वह सिद्धान्त जिसके अनुसार कर्ता को कार्यक्रम आयोजन तथा संचालय से संबंधित प्रत्येक चरण का मूल्यांकन करना चाहिए यह मूल्यांकन का सिद्धान्त कहलात है। यह न केवल पिछले कार्यक्रमों की कमियों एवं त्रुटियों को उजागर करता है बल्कि नये कार्यक्रमों के आयोजन व कार्यान्वयन के मार्ग में आने वाली बाधाओं की संभावनाओं को हटाता है।

3.8 सारांश

इस इकाई में समाज कार्य की एक वृहत विधि और सामुदायिक संदर्भ में एक समस्या निवारक विधि के रूप में सामुदायिक संगठन की प्रासंगिकता परविश्लेषण प्रस्तुत किया गया। अन्य विधियों जैसे वैयक्तिक कार्य, समूह कार्य तथा सामुदायिक शोध के साथएकीकरण करके सामुदायिक संगठन काइस्तेमाल करने के महत्व पर भी वृहत रूप से प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अंत में सामुदायिक संगठनकी विधि को रेखांकित करने वाले सिद्धांतों की एक विस्तृत व्याख्या पर चर्चा की गई है।

3.9 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: एक वृहत विधि के रूप में सामुदायिक संगठन को वर्णित कीजिये।

प्रश्न 2: सामुदायिक संगठन को समस्यानिवारक विधि के रूप में प्रस्तुत कीजिये।

प्रश्न 3: सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक संगठन की प्रासंगिकता को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 4: सामुदायिक संगठन और सामुदायिक विकास के अंतर को बताइये।

प्रश्न 5: सामुदायिक संगठन के सिद्धांतों पर प्रकाश डालिए।

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) चैकी, ए, डैन (1979) *कम्यूनिटी डवलपमेंट*. नई दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड।

2) कोक्स, एम. फ्रेड एण्ड एरलिक एल जोन (1987) स्ट्रेटिजी आफ एरलिक एल जोन (1987) *स्ट्रेटिजीज आफ कम्युनिटी आर्गनाइजेशन*, एफ ई. पीकोक पब्लिशर्सस मैक मिलनस।

3) फिक अर्थर ई (1972), द *फील्डस आफ सोशल वर्क*. न्यूयार्क : हाल्ट रिनहार्ट एण्ड विनस्टन।

4) हार्पर, ई.बी. एण्ड डनहम अर्थर (1959), *कम्युनिटी आर्गनाइजेशन इन एक्शन*. न्यूयार्क : एसोसिएशन प्रैस।

5) लेडविद मार्गरेट (2006) *कम्युनिटी डेवलेपमैंट : ए क्रिटिकल एप्रोच. नई दिल्ली:* रावत पब्लिकेशन्स।

6) रोस, मरेजी (1955), *कम्युनिटी आर्गनाइजेशन*. न्यूयार्क : हार्पर एण्ड रावत पब्लिकेशन्स।

7) सिद्दकी एच.वाई. (1997) *वर्किंग विद कम्युनिटीज. नई दिल्ली:* हीरा पब्लिकेशन्स।

इकाई 4
सामुदायिक संगठनका प्रारूप तथा दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

4.0उद्देश्य
4.1प्रस्तावना
4.2सामुदायिक संगठन में कदम
4.3सामुदायिक संगठनका प्रारूप
4.4सामुदायिक संगठन की रणनीतियाँ
4.5सारांश
4.6संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप –

- सामुदायिक संगठन की प्रक्रिया मेंप्रयुक्त कदमों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सामुदायिक संगठन के विविध प्रारूपोंको रेखांकित कर सकेंगे।
- समसामाजिक संदर्भ में सामुदायिक संगठन की विभिन्न दृष्टिकोणों तथा रणनीतियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में, हमारे सामने सामुदायिक संगठ्न के प्रारूपों तथा रणनीतियों का बृहत वर्णन प्रस्तुत होगा। वे कार्य के लिए संदर्भ के रूप में मदद करेंगे और आपको इसके बारे में बोध कराएंगे कि विनिर्दिष्टसंदर्भों से आप क्या आशा कर सकते हैं। इसके अलावा, सामुदायिक संगठन की 'प्रक्रिया' दिग्विन्यास पर प्रकाश डालने के लिए सम्मिलित कार्रवाई हेतु समुदाय कोसंलग्न करने में अनुसरित किए जाने वाले पहलों की एक श्रृंखला को भीरेखांकित किया गया है।

4.2 सामुदायिक संगठन में कदम

सामुदायिक संगठन एक प्रक्रिया है जो एक गतिविधि की प्रतिनिधि होती है और साथ ही यह चेतन अथवा अचेतन हो सकती है, स्वैच्छिक अथवा अनैच्छिक हो सकती है। जिसकी सीमा किसी समस्या की पहचान से लेकर समस्या के समाधान अथवा समुदाय द्वारा चिन्हित उद्देश्यों की प्राप्ति तक हो सकती

है। प्रारम्भ से अंत तक इस प्रक्रिया में एक तारतम्यता परिलक्षित होती है, जो अलग होते हुए भी वास्तविक व्यवहार में आच्छादक हो सकते हैं। इन चरणों या अवस्थाओं का क्रम भी आगे, पीछे हो सकता है जो उन विनिर्दिष्ट संदर्भ पर निर्भर करता है, जिसमें इन्हें नियोजित किया जाता है।

सामुदायिक संगठन की प्रक्रिया में इन आवश्यक अवस्थाओं को निम्नांकित भाँति प्रस्तुत किया गया है–

1. भूमिका की खोज

सामुदायिक संगठन की प्रक्रिया की पहली अवस्था या कदम प्रस्तावित लक्ष्य का विश्लेषण करना होता है, जिसे कार्यकर्त्ता अथवा क्रियान्वयन एजेंसी प्राप्त करना चाहती है। व्यवहार या अभ्यास में अक्सर यह निर्णय मूल संगठन के प्रयोजनों से प्रभावित होता है जो प्रत्यक्षत: कार्यकर्त्ता की नियुक्ति करना है अथवा जो उन्हें नियुक्त करने वाले संगठन को धन उपलब्ध कराता है। ऐसा संभव है कि वह एजेंन्सी की नीति/कार्यक्रम को परिवर्तित कर पाने की स्थिति में न हो, परन्तु इस विश्लेषण से उसे स्पष्ट तथा यह देखने में मदद मिलेगी कि वह अपने कार्य में क्या प्राप्त कर सकता है और उसे क्या नहीं करना चाहिए। क्या ये उद्देश्य समुदाय की जरूरतों के अनुरूप हैं ? प्रस्तावित कार्यक्रम किस प्रकार से मददगार होगा ? ये प्रश्न संगठनकर्ता को उसके कार्य के बारे में स्पष्ट होने में सहायता प्रदान कर सकते हैं।

2. लोगों की भागीदारी को सूचीबद्ध करना

संगठनकर्ता से आशा की जाती है कि वह समुदाय के लोगों के साथ सकारात्मक तथा प्रयोजनपूर्ण तालमेल का विकास करे। वह या तो स्वयं को सामुदायिक संगठन से परिचित कराकर औपचारिक तरीका अपना सकता है या फिर किसी जाने माने समुदाय सम्पर्क जैसे नेता, अध्यापक अथवा आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता की सहायता से स्वयं का परिचय प्रस्तुत कर सकता है, अथवा एक अनौपचारिक मार्ग अपना सकता है, जिससे समुदाय में जाकर लोगों से संपर्क स्थापित कर सकता है।

3. समुदाय का विस्तृत विवरण (प्रोफाइल) तैयार करना

समुदाय का एक अच्छा विवरण मुहैया कराने के लिए विविध सूचना सम्मिलित करना जरूरी होता है। यह जानकारी समुदाय के सदस्यों तथा इसके व्यक्तियों के साथ भागीदारी के जरिए प्राप्त की जानी चाहिए। समुदाय के प्रोफाइल के महत्त्वपूर्ण घटक ये निम्नांकित होते हैं–

1. पहचान की सूची जिनमें नाम, भौगोलिक अवस्थिति, प्रशासनिक प्रभाग का भाग आदि सम्मिलित हों।
2. स्थानीय इतिहास, जिनमें उत्पत्ति, जनसंख्या/संसाधनों में बदलाव, महत्त्वपूर्ण घटनाएं आदि सम्मिलित हों।
3. परिवहन तथा संचार जिसमें स्थान का आकार, समुदाय के साथ परिवहन तथा संचार की प्रकृति सम्मिलित हों।
4. जनसंख्या की विशेषताएं जिनमें–

क) लगभग कुल जनसंख्या

ख) आयु, लिंग, जाति, धर्म, क्षेत्रीय, पृष्ठभूमि बोली जाने वाली भाषाओं के अनुसार विभेदीकरण

ग) औसत शिक्षा स्तर, शिक्षा में महिलाओं कीस्थिति, शिक्षा के सम्बन्ध में वंचित समूहों की पहचान आदि के रूप में शैक्षिक पृष्ठभूमि सम्मिलित हों।

5. रोजगार तथा आय की विशेषताएं, जिनमें समुदाय/महिलाओं/वंचित सामुदायिक समूहों के लिए रोजगार के स्रोत/श्रेणियाँ, औसत परिवारिक आय आदि सम्मिलित हों।

6. आवासीय पद्धति तथा विशेषताएं, जिसमें उपलब्ध आवासीय श्रेणियाँ, स्वामित्व के आयाम, मकानों के आकार, आरेख तथा इसके मूल तत्व सम्मिलित हों।

7. जिसमें उपलब्ध संसाधन/अवसंरचना सम्मिलित हों–

(क) स्वास्थ्य सम्बन्धी अवसंरचना, मौजूद सुविधाओं की प्रकृति तथा श्रेणियों की, उपलब्धता तथा वहनीयता का विश्लेषण।

(ख) शैक्षिक सुविधाएँ-श्रेणियाँ, क्षमता, प्रबंधन, अध्यापकों की मौजूदगी, अध्यापक-शिष्य अनुपात, लिंग विभाजन आदि।

(ग) पेयजल से संबन्धित सुविधाएं तथा बिजली आपूर्ति साफसफाई से संबन्धित मुद्दे।

(घ) बैंको, सहकारिताओं बाजारों आदि जैसे वित्तीय संस्थानों की मौजूदगी।

(ङ) गैर सरकारी संगठन जैसे स्वयंसेवी संगठन, महिला क्लब, युवा क्लब आदि।

(च) सामुदायिक मनोरंजन केंद्र।

(छ) कृषि तथा पशु-चिकित्सा सेवाएं।

(ज) सार्वजनिक वितरण प्रणाली, पात्रता प्रक्रिया।

(झ) सरकारी योजनाएं/कार्यक्रम।

(ञ) पूजा स्थल।

(ट) पुस्तकालय, पंचायत घर/बारातघर/सामुदायिक केन्द्र थाने जैसी अन्य सुविधाएं।

8. समुदाय में प्रमुख समस्याएँ जैसे–

(क) स्वास्थ्य सम्बन्धी मुद्दे।

(ख) आय/आजीविका सम्बन्धी मुद्दे।

(ग) शिक्षा सम्बन्धी चिंताएँ।

(घ) अंतर-समूह तनाव की संभावना।

(ङ) अन्य समस्याएं तथा मुद्दे विशेष वितरण सहित।

4. आवश्यकता आकलन

सामुदायिक संगठनकर्ता को समुदाय के लोगों के समक्ष आने वाली जरूरतों तथा समस्याओं का आकलन और बोध करना पड़ता है। ये अवश्यकताएँ निम्नलिखित में से कुछ भी हो सकती हैं–

i. मूलभूतजरूरतें जैसे आवास, बिजली आपूर्ति, जलापूर्ति, साफ-सफाई आदि।

ii. आर्थिक जरूरतें जैसे रोजगार, कृषि उत्पादकता में वृद्धि, ऋण-प्राप्ति आदि की जरूरतें।

iii. शैक्षिक जरूरतें जैसे अनौपचारिक शिक्षा, उपचारी कोचिंग, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार,मौजूद अवसंरचना, रोजगारपरक पाठ्यक्रम की जरूरत आदि।

iv. स्वास्थ्य सम्बन्धी जरूरतें, जैसे स्वास्थ्य सुविधाओं/स्टाफ की जरूरत।

v. मनोरंजन सुविधाएं जैसे खेल-कूद सुविधाएं, सामुदायिक केंद्र, पठन कक्ष, खेल का मैदान, पार्क आदि।

vi. सूचना सम्बन्धी जरूरतें, जैसे संसाधन केंद्रों, सेवाओं, योजनाओं क्रियान्वित किए जा रहे कार्यक्रमों की मौजूदगी।

5. जरूरतों को क्रम/प्राथमिकताएं प्रदान करना

सर्वप्रथम, सामुदायिक संगठनकर्ता की मदद से समुदाय द्वारा अपनी समस्त चिह्नित जरूरतों तथा समस्याओं कोश्रेणीबद्ध आधार दिया जाता है। यह वह प्रक्रिया है जो लोगों को अपनी स्थिति के बारे में बोध कराती है। अपनी जरूरतों तथा समस्याओं के सूचीकरण में समुदाय कोसम्मिलित करने से उन समस्याओं के समाधान अथवाजरूरतों की पूर्ति में उनकी भागीदारी सुनिश्चित होती है।

6. समस्या विश्लेषण तथा पुन: निर्धारण

चयनित जरूरतों/समस्याओं को लोगों द्वारा उनकेबहु-आयामों को पूरी तरह समझने के उद्देश्य से इनकी जाँच, विश्लेषण करके क्रमानुसार वर्णन प्रस्तुत करना पड़ता है। जरूरत/समस्या विश्लेषण में सम्मिलित हैं–

i. जरूरत अथवा समस्या का उल्लिखित विवरण इस तरीके से तैयार करना कि इसमें प्रभावित लोगों द्वारा अनुभव की जा रही कार्रवाई की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो सके।

ii. प्रमुख समस्या/समस्याओं केप्रत्यक्ष कारण तथा प्रत्यक्ष प्रभावों को जानना।

iii. संबन्धित पहलुओं का विश्लेषण।

इनमें से अंतिम में उन स्टॉक होल्डरों की पहचान सम्मिलित है जो समस्या से प्रभावित हैं, जो समस्या उत्पन्न कर सकते हैं, जो समस्या के समाधान प्रस्तुत करने मदद प्रस्तुत कर सकते हैं, तथा प्रस्तावित कार्रवाई के विरूद्ध कार्य कर सकते हैं। इस प्रकार इस अवस्था में समस्या/जरूरत का गहराई से विश्लेषण, पुन: परिभाषण और स्पष्टत: उल्लेख किया जाना होता है।

7. प्राप्य उद्देश्य का निरूपण

पुन: परिभाषित जरूरतों/समस्याओं को आगे कार्रवाई हेतु प्राप्य उद्देश्यों में परिवर्तित किया जाता है। कभी-कभी प्रयोज्यों/लक्ष्यों को विभिन्न भागों में विभाजित किया जाना होता है,जिससे कि उन्हें जरूरतों की पूर्ति तथा समस्या निवारण की दिशा में उन्मुख विनिर्दिष्ट कार्यक्रमों तथा गतिविधियों में परिवर्तित किया जा सके।

8. सामुदायिक आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति का विकास

अनेक समुदाय उन जरूरतों तथा समस्याओं को चिह्नित करते हैं जिनसे निपटने या जिन्हें प्राप्त करने में वे स्वयं को अनुपयुक्त महसूस करते हैं। यह खासकर उन समुदायों के लिए वास्तविक होता है, जिनमें उदासीनता, उपेक्षा तथा आरामपरस्ती को ज्यादा महत्व दिया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में जरूरतों/समस्याओं की पहचानविश्लेषण तथा उल्लेख करना निरर्थक होता है यदि लोग स्वयं में कार्रवाई के लिए इच्छा तथा आत्मविश्वास नहीं कर पाते हैं। इनकी कमी जिन समुदायों में होती है उन्हें कार्रवाई के लिए नियोजित कर पाना मुश्किल होगा।

9. विकल्पों की खोज और उनमें से बेहतर विकल्प का चयन

प्रयोज्यों के आधार पर समुदाय द्वारा विभिन्न विकल्पों की तलाश की जाती है। चयनित समस्या के समाधान के प्रयोजनार्थ, समुदाय को समस्या का सामना करने के लिए अनेक विकल्प की रूपरेखा तैयार करनी पड़ती हैं। प्रस्तावित विकल्पों में से चयनित समस्या का सामना करने के लिए सबसे उत्तम विकल्प को चयनित किया जाता है। अक्सर एक नरम-विकल्प के इस्तेमाल से शुरू करके शनैः शनैः अधिक मजबूत समाधान पर पहुंचा जाता है। यदि कुछ भी आवश्यक नही रहता तो अतिवादी कार्रवाई की एक संभावना रही है।

10. कार्रवाई योजना का नियोजन, संसाधनों का संचालन व कार्रवाई का क्रियान्वयन और मूल्यांकन करना

चयनित समस्या का सामना करने अथवा चयनित जरूरत की पूर्ति के लिए एक कार्रवाई परियोजना का प्रस्ताव जारी किया जाता है, जिसमें ज़िम्मेदारी सौंपी जाती हैं और एक अस्थायी संगठनात्मक संरचना तैयार की जाती है। इस चरण में अपेक्षित संसाधनों तथा सम्मिलित कर्मियों का निर्णय किया जाता है। मान लीजिए ऊपर दी गई स्कूल वाली समस्या से निपटना है, तो सबसे पहले स्कूल के प्राधिकारियों से मिलकर उन्हें एक सूचना देने का निर्णय लिया जा सकता है। इसकी परियोजना तिथि, समय, कौन, कैसे, कितने, कहाँ आदि के रूप में नियोजित करनी होगी।

प्रस्तावित कार्रवाई परियोजना के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक संसाधनों का अनुमान, पहचान और संचालन किया जाता है। ये संसाधन धन, समय, श्रमशक्ति तथा सामग्री के रूप में हो सकते हैं। एक अनुमान प्रस्तावित किया जाता है और संचालन के लिए स्रोतों की पहचान की जाती है। समुदाय की

अधिकांश समस्याओं/जरूरतों से निपटने के लिए समुदाय में ‘हम अपने लिए क्या कर सकते है’ और ‘हमें बाहरी मदद की आवश्यकता कहाँ है’ के बारे में स्थानीय संसाधन अपर्याप्त हों तो उनसे निपटने की भावना ही उत्पन्न कर सकता है। साथ ही, अक्सर बाहरी संसाधनों पर बहुत अधिक निर्भरता का परिणाम बाहरी मदद पर अधिक निर्भरता के रूप में होता है। व्यक्तियों की तरह ही समुदाय भी अपने स्व्यं के संसाधनों का शायद ही इस्तेमाल करते हैं। जिन समुदायों में सामुदायिक संगठन की प्रक्रिया का संचालन किया जाता है और जारी रहता है, वहाँ लोग सामुदायिक पहलों में भाग लेने की अपनी क्षमता और अपने संसाधनों पर आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

सामुदायिक संगठन प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक कार्रवाई करना होता है। कार्रवाई योजना को क्रियान्वित करते समय, उत्तरदायित्वों की स्वीकृति के माध्यम से लोगों की सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करना पड़ता है। लोगों को उत्तरदायित्वों को सहेजने और समस्या निवारक प्रक्रिया के भागी बनने के लिए तैयार किया जाता है। समुदाय धीरे-धीरे जिम्मेदारी लेता है और साथ-साथ एजेंसी/कार्यकर्ता प्रक्रिया की धारणीयता को सरल बनाने के लिए प्रक्रिया से दूर हो जाता है। सफलता के अनुमान और क्रियान्वयन के दौरान सामने आयी सीमाओं/बाध्यताओं का निर्धारण करने के लिए क्रियान्वयन परियोजना का मूल्यांकन किया जाता है। विश्लेषण के लिए किए गए समस्त कार्य के सही-सही रिकार्ड का अनुरक्षण और एक फ्रेमवर्क का विकास प्रयोजन के मूल्यांकन के लिए जरूरी पूर्व-आवश्यकताएं हैं। सकारात्मक तथा इच्छित परिणामों की प्रशंसा और कमियों/अवांछित परिणामों की पहचान, विश्लेषण तथा चर्चा किए जाने की जरूरत है।मूल्यांकन भविष्य के लिए संभावनाओं के दृष्टिगत किया जाना चाहिए और सभी संबन्धित पहलुओं द्वारा इसे सकारात्मक दृष्टि से सम्पन्न किया जाना चाहिए।

11. संशोधन

मूल्यांकन के आधार पर जरूरी संशोधन नियोजित और निदेशित किए जाते हैं। मूल्यांकन प्रक्रिया के जरिए उत्पन्न शिक्षा समुदाय को अपनी कार्रवाई परियोजना के मजबूत बिंदुओं तथा कमजोर बिंदुओं को जानने में सक्षम बनाएगी। मध्यस्थता की प्रभावोत्पादकता का विस्तार करने और चयनित समस्या का स्थायी संशोधन प्राप्ति के प्रयोजन से संशोधन आवश्यक है।

12. सहकारी और संयोजन अभिवृत्तियों का विकास

जहाँ ऊपर विश्लेषित सभी चरण आवश्यक और वास्तव में अखंड हैं, निश्चित रूप से इनमें से कोई भी अंतिम चरण अर्थात समुदाय में सहकारी और संयोजन अभिवृत्तियों तथा परिस्थितियों के विकास से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस अनुभव के जरिए, समुदाय, भविष्य में उत्पन्न होने वाली समस्याओं की पूर्व-पहचान करके और उनके उत्पन्न होते ही उनका निपटारा करने के लिए बेहतर ढंग से तैयार होकर, उनका अधिक तत्परता और कुशलता से सामना करने की बेहतर स्थिति में होगा।

4.3 सामुदायिक संगठन के प्रारूप

सामुदायिक संगठन के प्रारूप आवश्यक लक्ष्यों को प्राप्त करने की रणनीति है क्योंकि समान विषयों को लेकर विभिन्न रणनीतियों को इस्तेमाल में लाया जा सकता है। **रॉठमैन जैक** द्वारा सामुदायिक संगठन के तीन प्रारूपों की चर्चा की गई है-

1. **स्थानीय विकास प्रारूप-** यह प्रारूप सामुदायिक संगठन की वह प्रक्रिया है, जिसमें सामुदायिक कार्यकर्ता अथवा संस्था विभिन्न सेवाओं तथा कार्यक्रमों को बनाता है अथवा उनका प्रारूप तैयार करता है जो किसी स्थान विशेष की जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति से संबन्धित होता है। इस प्रारूप में सेवा दाता संस्थाओं के मध्य समन्वय स्थापन का काम किया जाता है तथा नए कार्यक्रमों व सेवाओं को शामिल किया जाता है।
2. **सामाजिक नियोजन प्रारूप-** इस प्रारूप में एक सामाजिक कार्यकर्ता या संस्था किसी गांव, कस्बे, नगर, नगर-पालिका, क्षेत्र तथा राज्य में मौजूद सेवाओं तथा आवश्यकताओं का विश्लेषण करते हैं तथा उन्हें बेहतर ढंग से उपलब्ध कराने के लिए खाका बनाते हैं।
3. **सामाजिक क्रिया प्रारूप-** इस प्रारूप में वे सेवाएं शामिल हैं जिनका संबंध उन विशिष्ट मसलों से है, जिसमें सामाजिक आंदोलन की जरूरत है। एक सामुदायिक संगठन कार्यकर्ता अथवा संस्था इन मसलों पर समुदाय के लोगों तथा समूहों को शिक्षा तथा प्रेरणा द्वारा सक्रिय करके समूहिक सहमति व निर्णय को प्रस्तुत करता है।

एच.वाई. सिद्दीकी द्वारा बताए गए प्रारूप निम्न हैं-

1. **सामुदायिक विकास प्रारूप-** इस प्रारूप में कार्यकर्ता एक प्रक्रिया का सृजन करता है जिससे समुदाय के व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न समुदाय द्वारा स्वयं किया जा सके। इस प्रारूप के चरण निम्नवत हैं-

1. भौतिक क्षेत्र की पहचान स्थिति की परख करना।
2. समुदाय में प्रयोग।
3. समुदाय में विभिन्न वर्गों की आवश्यकता की पहचान करना।
4. कार्यात्मक नियोजन का प्रयोग।
5. संसाधन नियोजन का प्रयोग।
6. समुदाय में एक संगठनात्मक संजाल का विकास करना।
7. निश्चित समय सीमा में समाज कार्य द्वारा आंशिक रूप से बाहर निकालना।

2. **व्यवस्था परिवर्तन प्रारूप-** इस प्रारूप के अनुसार व्यवस्था अनेक कारकों की वजह से कार्य करना बन्द कर देती है, यथा-जनसंख्या वृद्धि से वस्तुओं की मांग में वृद्धि हो सकती है अथवा प्रौद्योगिकी में बदलाव से उत्पादन प्रक्रिया की विधियों में बदलाव आवश्यक हो जाता है।

3. **संरचना परिवर्तन प्रारूप-** इस प्रारूप में कार्यकर्ता द्वारा सामुदायिक सम्बन्धों की वृहत् संरचना तथा सूक्ष्म वास्तविक का विश्लेषण किया जाता है। कार्यकर्त्ता समुदाय को वृहत संरचना के मौलिक परिवर्तन में भाग लेने के लिए प्रेरित करता है ताकि सूक्ष्म वास्तविकताओं को प्रभावित किया जा सके। इस प्रारूप में सम्मिलित विनिर्दिष्ट कार्य निम्न हैं–
   1. सूक्ष्म तथा सामुदायिक वास्तविकताओं के बीच सम्पर्क की समझ विकसित करना।
   2. वैकल्पिक राजनीतिक विचारधारा के बारे में सचेतन निर्णय लेना।
   3. इस बोध समुदाय के साथ विभाजित करना ताकि यह अपने निर्णय लेने में सक्षम हो सके।
   4. समुदाय को विनिर्दिष्ट मुद्दों की तलाश करने और एक लम्बा संघर्ष संचालित कराने के लिए परिणामी कार्रवाई करके अपने लक्ष्यों का अनुसरण करने के लिए एक कार्य योजना की पहचान कराने में मदद करना।
   5. समुदाय को अपनी रूचि/उत्साह तथा उस तनाव/जो उपलब्ध शक्ति संरचना के साथ अपरिहार्य संघर्ष के परिणामस्वरूप उत्पन्न होना संभावित है, का सामना करने की क्षमता को बनाए रखने के लिए मदद प्रस्तुत करना।

4.4 सामुदायिक संगठन की रणनीतियाँ

समुदाय को संगठित करने व उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिएनिम्नांकित रणनीतियाँ प्रमुख हैं–

1. **समस्या पहचान की रणनीति-** समुदाय की समस्याओं के बारे में एक सामुदायिक संगठन कार्यकर्ता को पूर्व ज्ञान होता है जो समुदाय की सफलता के लिए सामुदायिक सदस्यों के साथ मिलकर रणनीति बनाता है और उनकी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में मदद करता है।
2. **जनसहभागिता की रणनीति-** समुदाय के सदस्यों के बीच कार्यकर्ता इस प्रकार से जनसहभागिता पैदा करता है कि वे समुदाय के सभी कार्यक्रमों में संगठित होकर सहभागिता करें।
3. **कार्यक्रम नियोजन की रणनीति-** इस रणनीति में कार्यकर्ता आवश्यकता पर ध्यान केन्द्रित कर उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योजनाबद्ध ढंग से समुदाय के लिए कई कल्याणकारी योजनाओं का खाका बनाता है। वह समुदाय के सदस्यों को नियोजन की प्रक्रिया में भागीदारी के लिए प्रेरित करता है तथा आने वाली बाधाओं के वैज्ञानिक समाधान पर जोर देता है।
4. **संसाधनों के उपयोग की रणनीति-** इस रणनीति में कार्यकर्ता समुदाय के उन संसाधनों को तलाशता है जिनसे समुदाय की समस्याओं की पूर्ति और समाधान किया जा सके। समुदाय की वे संस्थायें जो उसके लिए कल्याणकारी हैं, उनको लक्ष्य कर इनकी सेवा के प्रयोग पर जोर देता है। कार्यकर्ता समुदाय की आंतरिक व वाह्य संसाधनों का प्रयोग समुदाय की कई आवश्कताओं एवं

समस्याओं के निवारण के उद्देश्य से करता है जिसमें जनसहभागिता को प्रेरित कर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है।

5. **सामुदायिक विकास की रणनीति-** समुदाय के सदस्य कई कार्यक्रमों के माध्यम से अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने का समूहिक प्रयत्न करते है। इस प्रक्रिया में सरकारी कार्यक्रमों व योजनाओं/परियोजनाओं का सहयोग लिया जाता है। समुदाय के सदस्य अपनी सामुदायिक योजना एवं संगठन के सहारे समुदाय के विकास पर जोर देते हैं। सामुदायिक सदस्यों द्वारा समुदाय की सामान्य जरूरतों एवं विद्यमान विविध साधनों के बीच संतुलन स्थपित किया जाता है जिससे उनके विकास में तेजी आती है।

4.5 सारांश

इस इकाई में हमने सामुदायिक संगठन के विभिन्न चरणों, मॉडलों, रणनीतियों पर विचार किया। सामुदायिक संगठन के अनेक लेखकों तथा अभ्यासकर्ताओं ने सामुदायिक संगठन के लिए उसके प्रारूप तथा रणनीतियाँ नियोजित की हैं। इनका बोध और अनुमान लगाने के बाद, आप विनिर्दिष्ट पृष्ठभूमि तथा संदर्भों में विनिर्दिष्ट प्ररूपों की उपयोगिता के बारे में ज्यादा स्पष्ट होंगे।

4.6 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: सामुदायिक संगठन में आवश्यक कदम पर प्रकाश डालिए।

बोध प्रश्न 2: सामुदायिक संगठन के प्रारूप लिखिये।

बोध प्रश्न 3: सामुदायिक संगठन की रणनीतियाँ बताइये।

4.7 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1. मर्फी, पैट्रिशिया, वाटकिंस एंड कनिधन, जेम्स वी. (2003). *ऑरग्नाइजिंग फॉर कम्यूनिटी कंट्रोलड डेवलपमेंट : रिन्यूइंग सिविल सोसाइटी*, सेज पब्लीकेशन्स, थाउसंउ ऑक्स।
2. रोज़, मुफे. जी. (1955) *कम्यूनिस्ट ऑरग्नाइज़ेशन थ्योरी एंड प्रिंसीपल्स.* न्यूयॉर्क : हार्पर ब्रादर्स।
3. रॉथमैन, जैक एंड सरलिव, जॉन, एल. एंड ट्रॉपमैन, जॉन. ई. (2001). *स्ट्रैटजीस ऑफ कम्यूनिटी इटरवेंशन* (छठा संस्करण), एफ.ई. पीकॉक पब्लिशर्स, इंक, इटास्का.) इलिनायस ।
4. सिद्की, एच. वाई (1997) *वर्किंग विद कम्यूनिटीज*. नई दिल्ली : हीरा पब्लिकेशन्स।
5. वेल, मैरी. (संस्करण), द *हैंडबुक ऑफ कम्यूनिटी प्रैक्टिस*. सेज पब्लिकेशंस. थाऊसैंड ऑकस।
6. सिंह, मिश्रा.एवं सुरेन्द्र, पी.डी. (1997) *समाज कार्य : इतिहास दर्शन एवं प्रणालियाँ.* लखनऊ : न्यू रायल पब्लिकेशंस।

इकाई 5
सामुदायिक संगठन में वर्तमान मुद्दे तथासामुदायिक संगठनकर्ता की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 सामुदायिक शक्ति सरंचना के साथ काम करना
5.3 लैंगिक संवेदी सामुदायिक संगठन काअभ्यास
5.4 वंचित समूहों के साथ सामुदायिकअभ्यास
5.5 सामुदायिक संगठनकर्ता की भूमिका
5.6 सामुदायिक कार्य में कौशल
5.7 सारांश
5.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- सामुदायिक संगठन केअभ्यास में शक्ति की अवधारणा, आयामों तथा शक्ति की प्रासंगिकता को स्पष्ट कर पाएंगे।
- लिंग तथा लैंगिक भेदभाव /अन्याय के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- जाति तथा वर्ग से उत्पन्न होने वाली असमानताओं को समझ सकेंगे।
- समुदाय में उपलब्ध प्रभुत्व शक्ति नियमों तथा असमानताओं का सामना करने के लिए अपेक्षित तौर तरीकों पर ध्यान केंद्रित कर सकेंगे।
- समसामयिक समुदायों तथा सामुदायिक अभ्यास पर वैश्वीकरण के प्रभाव को विश्लेषित कर सकेंगे।
- एक पेशेवर सामुदायिक संगठनकर्ता द्वारा निभाई गई भिन्न भूमिकाओं और इन भूमिकाओं को निभाने के लिए आवश्यक कुशलता को समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

21 वीं शताब्दी में सामुदायिक संगठनकर्त्ताओं के सामने कई गंभीर चुनौतियाँ खड़ी हैं। विविध समस्याओं के मध्य सम्बन्ध अत्यधिक जटिल होते जा रहे हैं। समसामायिक सदंर्भ में सामुदायिक संगठनकर्त्ता को न केवल गरीबी और वंचित लोगों से संबन्धित मुद्दों से दो-चार होना होता है, अपितु हमारे अपने देश जैसे विकासशील देशों पर वैश्विक अर्थ-व्यवस्थाओं के प्रभावों की मार भी झेलनी पड़ती है। वैश्वीकरण से विश्व भर में वंचना और गरीबी में बढ़ोत्तरी हुई है और विकासशील देशों की अपनी जनसंख्या के लिए सामाजिक कार्यक्रमों को वित्तपोषित करने की भूमिका के सिमटने में इसकी मुख्य भूमिका है। ऐसे संदर्भ में सभी सामुदायिक कार्यकर्त्ता खासकर संगठनकर्त्ताओं को भारतीय समुदायों सहित भिन्न समूहों के अन्दर अथवा बाहर के द्वंद्वो का सामना करने की दृष्टि से अच्छी तैयारी की जरूरत है, ताकि वे सभी वंचित समूहोंके लिए सामूदायिक तथा आर्थिक उपलब्धि के ध्यान पर केंद्रित हो सकें।

5.2 सामुदायिक शक्ति संरचना के साथ कार्य करना

शक्ति में, दूसरों को उनके विश्वासों तथा व्यवहार को प्रभावित व नियंत्रित करने की क्षमता होती है। इसका आशय राजनीतिक अथवा सामुदायिक प्रभुत्व अथवा नियंत्रण से भी होता है। लॉयड हंटर शक्ति तथा शक्ति संरचना की प्रकृति की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। शक्ति विविध रूपों तथा अनेक संयोजनों में दृष्टव्य होती है। यह अनेक स्रोतों से प्रवाहित होती है, जैसे धन, मत, सूचना, विशेषज्ञता, अथवा कौशल पर अधिकार, समूह का समर्थन, संपर्क और जान-पहचान, मोहक व्यक्तित्व, सामुदायिक भूमिकाएं पुरस्कारों तथा संसाधनों की सुलभता स्थिति,पद, महत्वपूर्ण जरूरतों को पूर्ण करने की क्षमता, अनिवार्य संसाधनों पर एकाधिकार, धारणाएं, मैत्री, साहस आदि। समाज के प्रत्येक स्तर अथवा संगठन की विशेषता किसी शक्ति की मौजूदगी द्वारा अभिव्यक्त होती है, यहाँ तक कि समाज के भीतर तथा 'शक्तिहीन' व्यक्ति तथा स्थानों के पास भी शक्ति होती है,अंतर केवल यह होता है कि वह सुषुप्त होती है और इसे अभी तक खोजा और विकसित नहीं किया गया होता है।

शक्ति के शास्त्र को सामुदायिक संगठनकर्ता को समुदाय में अनिवार्यत: समझना होता है। उसे समझना पड़ता है कि समुदाय में शक्ति किसके पास है और ये व्यक्ति अथवा समूह किस प्रकार अन्य की कार्रवाई पर प्रभाव डालती हैं। सामुदायिक संगठन के प्रभावी अभ्यास के लिए संगठनकर्ता द्वारा इन पहलुओं को समझना तथा विश्लेषित करना पड़ता है और इन्हें सामुदायिक शक्ति संरचना विश्लेषण कहा जाता है। भारतीय संदर्भ में, समाज में शक्ति केंद्रों तथा नेताओं की तलाश में सामुदायिक ढांचा महत्त्वपूर्ण हो जाता है। ग्रामीण भारत में शक्ति केंद्र अनेक संदर्भों जैसे जाति, वंश तथा क्षेत्रीय समूहों में पाए जाते हैं, ग्रामीण समुदायों में शक्ति के प्रमुख रूप से दो स्रोत होते हैं। पहला, वे लोग जो पारम्परिक स्रोतों जैसे जाति तथा वंश से शक्ति प्राप्त/अर्जित करते हैं और दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो संगठनों में विकास की गतिविधियों के संदर्भ में उत्पन्न परिस्थितियों पर आधिपत्य रखते हैं जैसे पंचायत/सरपंच/सदस्य, स्वयं

सेवी संगठनों/समुदाय आधारित संगठनों पर कार्यकर्त्ता, महिला मंडलों/नवयुवक मंडलों के अध्यक्ष आदि। कुछ निश्चित मामलों में कुछ व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत गुणताओं और योग्यताओं के कारण शक्ति प्राप्त करते हैं, तो कुछ ऐसे भी होते हैं जो समुदाय की समस्याओं के समाधान के प्रति अपनी प्रतिबद्धता/विगत अनुभव से शक्ति प्राप्त करते हैं।

बाहरी शक्ति स्रोत तथा बाहरी नेता अपनी विशिष्ट जानकारी, कौशलों तथा विचारों से शक्ति प्राप्त करते हैं। इसके अलावा उनकी स्थिति अथवा पदनाम भी समुदाय के अन्दर एक स्थिति की प्राप्ति में सहायक होते हैं। वे अपनी शक्ति व प्रतिष्ठा की स्थिति पाते हैं और स्थापित समूहोंपर प्रभाव डालते है। वे नए समूह का नियोजन भी कर सकते हैं।शक्ति धारकों की इस श्रेणी में स्कूल टीचर, गाँव के स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता, डाक्टर, स्थानीय एनजीओ के मुखिया तथा ब्लॉक अधिकारी आदि आते हैं।

सामुदायिक संगठन में शक्ति और नेतृत्व की संगतता

सामुदायिक शक्ति संरचना के दोप्रारूप/मॉडल होते हैं- स्तर विन्यास मॉडल और बहुत्ववादी मॉडल। स्तर विन्यास मॉडल बताता है कि सामुदायिक श्रेणी प्रमुखत सामुदायिक शक्ति के वितरण का निर्धारण करती हैं, इस मॉडल के अनुसार समुदाय की शक्ति संरचना में स्थायी उच्च वर्ग अभिजात होते हैं जिनकी सामुदायिक मामलों में अभिरूचि और बहिर्दृष्टि अपेक्षाकृत सजातीय होती है। बहुत्ववादी मॉडल इस विचार को खारिज करता है कि एक लघु सजातीय समूह समुदाय के निर्णय परवर्चस्व स्थापित करता है। यह कहता है कि ऐसे अनेक लघु विशेष हित समूह होते हैं जो सभी श्रेणी/वर्ग में होते हैं, जिनका प्रतिनिधित्व समुदाय की निर्णयन प्रक्रिया/व्यवस्था के द्वारा होता है। ये हित समूह में ओवरलैपिंग सदस्यता और व्यापक रूप से अलग-अलग शक्ति के आधार होते हैं। इन विभिन्न हित समूहों की पारस्परिक क्रिया के परिणाम के रूप में सामुदायिक निर्णय होते हैं। उनका सैद्धांतिक दिशा क्यिास सामुदायिक संगठनकर्त्ता को उसकी कार्रवाई में सहायता कर सकता है।

संगठनकर्ता को शक्ति संरचना के सदस्यों की पहचान करनी होती है। इसलिए सामुदायिक संगठनकर्त्ता को स्वयं को उन नेताओं की पहचान के लिए लगानाचाहिए जो अपने समूहों के अन्य सदस्यों को हिस्सेदारी के लिए प्रेरित करेंगे। नेताओं के साथकार्य करने के कुछ विशेष लाभ हैं यथा –

- **i.** संगठनकर्त्ता, शक्ति केंद्रों तथा विभिन्न वर्गों व समूहों को नेताओं के साथ काम करके, वह अप्रत्यक्ष रूप में सम्पूर्ण समुदाय के साथ काम करने में सक्षम होता है। समुदाय के प्रत्येक सदस्य के साथ कार्य करना उसके लिए संभव नहीं होता।
- **ii.** नेता व्यापक समुदाय के निकट संपर्क में विभिन्न वर्गों को सम्मिलित कर और इस प्रकार समूहों को अधिक संगठित इकाइयों के रूप में एकीकृत करके योगदान करते हैं।
- **iii.** नेताओं को परिवर्तन प्रक्रियाशुरू करने के लिए लीवरेज प्वाइंट के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जो अंतत: समस्त व्यवस्था में फैलेगी।

iv. नेता समुदाय तक पहुँचने के लिए तैयार सम्प्रेषण मार्ग उपलब्ध कराते हैं। यदि नेताओं तक संगठनकर्ता पहुँच पाता है, तो निश्चित रूप से उसका संदेश लोगों तक पहुंचता है।

v. इसी प्रकार नेता स्वयं-सहायता परियोजनाओं के लिए भीतैयार सहकारी समूह उपलब्ध कराते हैं और इस प्रकार कम संगठित और वैयक्तिक प्रकार के समाज में जरूरी हो सकने वाला बहुत सारा कार्यकम हो जाता है।

5.3 लैंगिक संवेदी सामुदायिक संगठन का अभ्यास

लिंग (जेंडर) का सृजन समुदाय द्वारा होता है और इस प्रकार सामुदायिक दृष्टि से परिभाषित होता है। भारत और वास्तव में विश्व भर में, सामुदायिक व्यवस्था ने अपने नियम स्थापित किए हुए हैं, जो पुरूषों और महिलाओं के बीच सामाजिकसांस्कृतिक भेद को पैदा करते हैं। लिंग व्यवस्था पुरूषों तथा महिलाओं कोअनेक मूल्य प्रदान करती है। समाज का संगठन विनिर्दिष्ट मानदंडों के आधार पर होता है, जिसकी कार्यप्रणाली व्यवस्थाओं के समूह को विकसितकरके नियोजित की जाती है। पुरूष प्रधान व्यवस्था पुरूष-महिला विभिन्नताओं को आधार देती है और उनमें विशेषीकरण को जन्म देती हैं। पुरूषों तथा महिलाओं केमध्य के जैविक विभेदों को विस्तार देकर इन दोनों की आर्थिक तथा सामुदायिक स्थिति निर्धारण का मानदण्ड बना दिया गया है।

पुरूष प्रधान व्यवस्था में पुरूषों को 'वर्चस्व तथा नियंत्रण'सम्बन्धी सामुदायिक कार्य निर्धारित किए हैं, जबकि 'सहायक' कार्य महिलाओं के लिए हैंनिर्धारित किए गए हैं। यदि सामुदायिक न्याय के दृष्टिकोण के अनुरूप सामुदायिक संगठन और सामुदायिक विकासको बनना है तो उन्हें लिंग पक्षपात और दमन की मूल प्रवृति को ध्यान में रखना होगा। सामुदायिक संगठनके कदमों को यह सुनिश्चित करना चाहिए वे महिलाओं के विरूद्ध संरचात्मक दमन के विविध रूपों को पुन: लागू न करें, और प्राथमिक तौर पर उनसे विनिर्दिष्ट संदर्भ के भीतर उपयुक्त तरीके से व्यवहार करें। इसके लिए सामुदायिक संगठनकर्त्ता को मीडिया शैक्षिक व्यवस्था, प्रचालित ढांचों आदि के माध्यम में से उन जटिल, विरल और व्यापक तरीकों के बारे में परिचित होना चाहिए, जिनसे लैंगिक उत्पीड़न/दमन/शोषण होता है।

5.4 वंचित समूहों के साथ सामुदायिक अभ्यास

लिंग के अलावा जातियाँ, वर्ग व श्रेणी समाज में असमानता के पक्षधर के रूप में कार्य करते हैं। जाति व श्रेणी दोनों स्थिति समूह हैं, जिसका अभिप्राय व्यक्तियों के एक ऐसे संयोजन से है, जो एक भिन्न शैली का जीवन व्यतीत करते हैं और जिस समूह से वे संबन्धित होते हैं, उससे संबन्धित एक विशिष्ट चेतना उनमें होती है। जहाँ जाति समूह आनुवांशिक होते हैं, जिनकी निश्चित स्थिति होती है, वहीं श्रेणियों को उत्पादन सम्बन्धों के रूप में परिभाषित किया जाता है।

जाति

एक ऐसा समूह जिसमें सदस्यों की स्थिति/स्तर, उनका पेशा, जीवन साथी के चयन का क्षेत्र और अन्यों के साथ व्यवहार सभी निश्चित होते हैं। एक व्यवस्था के रूप में इसका तात्पर्य जातियों के मध्य पारस्परिक रूप से सम्बद्ध प्रस्थिति और प्रथानुगत आपसी व्यवहार से है जिसकी विशेषताएं प्रतिबंधों के एक एकीकरण से प्रस्तुत होती हैं, यथा- सदस्यता के परिवर्तन, व्यवसायगत संचालन, विवाह तथा सामुदायिक सम्बन्ध।

श्रेणी

यह दो अथवा उससे अधिक व्यक्तियों का समूह होता है जिनकी प्रस्थिति सामुदायिक संदर्भ मेंएक-दूसरे से निम्न अथवा उच्च होती है। सामुदायिक श्रेणी की विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

i. अपनी श्रेणी के सदस्यों के सम्बन्ध में समानता की भावना।
ii. एक चेतना, कि व्यक्ति की व्यवहारवृत्ति समान जीवन मूल्यों वाले व्यक्तियों के व्यवहार के साथ सौहार्दपूर्ण होगी।
iii. एक सीमित सीमा में रोजगार विकल्प।
iv. सामुदायिक स्तरीकरण में ऊपर स्थित व्यक्तियों को लेकर हेय दृष्टि।
v. सामुदायिक स्तरीकरण में नीचे के लोगों को लेकर श्रेष्ठता का भाव।

जाति, श्रेणी और लिंग नामक संरचनात्मक वचनों के इन तीन मुख्य रूपों को मूलभूत माना जा सकता है, क्योंकि ये सर्व व्याप्त हैं और इन्हें, अगर सभी नही तो, ज्यादातर सामुदायिक मुद्दों, सामुदायिक समस्याओं तथा असमानताओं में पहचाना जा सकता है। इस कारण सेजाति, वर्ग तथा लिंग आधारित दमन के शिकारों को आधुनिक समाज में वंचित वर्गोंके किसी भी विचार में सबसे पहले उत्पन्न होना चाहिए। ऐसे विभिन्न समूह हैं जिन्हें वंचित और हाशिए पर माना जा सकता है, जबकि वे अनिवार्यत: प्राथमिक संरचनात्मक वंचना के शिकार नहीं होते, इनमें वृद्ध, अशक्त (मानसिक तथा बौद्धिक), जनजातीय लोग तथा देशज लोग सम्मिलित हैं।

अधिकारिता की धारणा

सामान्य तौर से कहा जाए तो अधिकारिता का लक्ष्य वंचितों की शक्ति में बढ़ोत्तरी करना होता है। इसमें व्यक्तियों अथवा समूहों को अपने हाथ में शक्ति लेने तथा शक्ति के धारकों से पुनः वितरण करके 'शक्तिहीनों' को देने की अनुमति देना सम्मिलित होता है (आइफई, 1995)। शक्ति तथा अधिकारिता के अभिजात दृष्टिकोण के लिए न केवल राजनीतिक शक्ति के लिए प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता सीखना और राजनीतिक कौशल को सीखना आवश्यक होता है, बल्कि इसमें शक्ति अभिजातों पर ध्यान केंद्रित करना

भी आवश्यक होता है। इस दूसरे लक्ष्यकी प्राप्ति के लिए या तो उन्हें बदलना या प्रभावित करना, अथवा शक्तिशाली अभिजातों के साथ समन्वय करना अथवा अधिक मूलभूत परिवर्तन के जरिए शक्ति केंद्र की शक्ति को कम करने का प्रयोजन रखना होता है।

सामुदायिक संगठनकर्त्ता को अपने संगठन के विनिर्दिष्टसंदर्भ तथा वैचारिक आधार के आधार पर अपनी रणनीति को परिभाषित करने के लिए एक विशिष्ट दृष्टिकोण अथवा एक से ज्यादा दृष्टिकोणों के परस्पर मिश्रण के विकल्पों में से उपयुक्त चुनाव करना पड़ता है। तथापि, महत्त्वपूर्ण और गहन अन्तर्दृष्टि को, अधिकारिता के विभिन्न दृष्टिकोणों के विस्तृत बोध से प्राप्त किया जा सकता है। अब महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि 'अधिकारिता' शब्द में कौन सामुदायिक संगठन शक्तिसम्मिलित होती है अर्थात वह किस प्रकार की शक्ति है, जिसे हम सामुदायिक संगठनकर्त्ता के रूप में व्यापक अस्तित्व देना चाहते हैं ? जहाँ यह मुख्यत: एक मूल्यगत सवाल है, वही हम शक्ति के कुछ निश्चित मानकों की पहचान कर सकते हैं, जैसे कि समुदाय आधारित अधिकारिता रणनीतियों में प्राप्तकिए जाने हैं। जिम आइफ (1995) ने शक्ति की सात प्रमुख श्रेणियों को प्रस्तुत किया है–

1. **व्यक्तिगत पसंद तथा जीवन के अवसरों की शक्ति**, अर्थात अपनी जीवन शैली का निर्धारण करने और अपनी जीवन शैली तथा पेशे के बारे में निर्णय करने का अल्प अधिकार अनेक वंचित समूहों के पास होता है। उनके जीवन से अधिकारिता रणनीति का प्रयोजन लोगों के विकल्पों को अधिकतम करने, उनके जीवन से संबन्धित निर्णयों पर उनकी शक्ति में बढ़ोत्तरी करने का होगा।
2. **आवश्यकता की परिभाषा की शक्ति**, अर्थात 'आवश्यकताओं पर तमाशाही' की संकल्पना का निर्धारण। यह अधिकारिता से विहीन करना होता है और अधिकारिता दृष्टिकोण में यह व्यवस्था होगी कि लोगों को स्वयं की जरूरतों को परिभाषित करने और उन्हें प्राथमिकता देने की शक्ति प्रदान की जाए। इसके लिए शिक्षा और सूचना के लिए सुलभता कीजरूरत हो सकती है।
3. **विचारों पर शक्ति**, अर्थात अधिकारिता का प्रयोजन अनिवार्यत: स्वायत्त रूप से विचार करना है, न कि अपनी विश्व दृष्टि को बलपूर्वक संचालित कराया जाना अथवा वैकल्पिक संदर्भ-संरचनाओं के लिए सुलभता को नकारा जाना।
4. **समस्याओं पर शक्ति** अर्थात अधिकारिता दृष्टिकोण का लक्ष्य शैक्षिक व्यवस्था, स्वास्थ्य व्यवस्था, परिवार जैसी सामुदायिक संस्थाओं पर लोगों की शक्ति बढ़ाना और इनसंस्थाओं में बदलाव करके इन्हें सभी लोगों के लिए सुलभ, अनुक्रियावादी तथा जवाबदेह बनाना है।
5. **संसाधनों पर शक्ति**, अर्थात संसाधनों के नियंत्रण और उपयोग पर सभी लोगों की प्रभावी शक्ति को अधिकतम बनाने तथा संसाधनों की असमानता का निवारण करने के लिए अधिकारिता रणनीति जरूरी है।

6. **आर्थिक गतिविधि पर शक्ति**, अर्थात उत्पादन, वितरण तथा विनिमय के मूलतंत्र किसी भी समाज में बहुत आवश्यक होते हैं और शक्ति पाने के लिए, व्यक्ति को इन तंत्रों पर कुछ नियंत्रण और सुलभता पाने के लिए दक्ष होना चाहिए। इसलिए अधिकारिता प्रक्रिया का प्रयोजन यह सुनिश्चित करना होगा कि आर्थिक गतिविधि पर शक्ति का और समानता से संचरण हो।
7. **पुनरूत्पादन पर शक्ति**, अर्थात पुनरूत्पादन प्रक्रिया में न केवल बच्चे के जन्म की प्रक्रिया सम्मिलित है, बल्कि बच्चे के पालन पोषण, शिक्षण तथा समाजीकरण की प्रक्रिया भी सम्मिलित है, से सभी तंत्र वे हैं जिनके द्वारा आने वाली पीढियों में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवहार का पुनर्जन्म होता है।

अधिकारिता प्राप्त करना

सामुदायिक संगठनकर्त्ता द्वारा वंचित तथा हशिए पर पड़े समूहों की अधिकारिता प्राप्ति के लिए अनुसरण की जा सकने वाली विभिन्न रणनीतियों को मौटे तौर पर निम्न शीर्षकों के अंतर्गत माना जा सकता है–

1. नीति तथा नियोजन

लोगों को व्यापक जागरूकता सृजन के जरिए उपलब्ध नीति प्रावधानों, कार्यक्रमों तथा सेवाओं का उपयोग करने और सुलभता की कमी से संबन्धित समस्याओ के निपटारे के लिए उपयुक्त तंत्रों की स्थापना में लोगों की मदद करने के अलावा, सामुदायिक कार्यकर्त्ता विनिर्दिष्ट समूहों के सामने उपलब्ध वंचनाओं कासामना करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई आदि सकारात्मक पक्षपात की और प्रगामी नीतियों पर बल देने पर ध्यान केंद्रित कर सकता है।

2. सामुदायिक तथा राजनीतिक कार्रवाई

इस दृष्टिकोण में राजनीतिक संघर्ष तथा अधिकाधिक प्रभावी शक्ति में बदलाव के महत्व पर जोर दिया जाता है। इसमें क्रियावादी दृष्टिकोण पर बल दिया जाता है और इसका प्रयोजन लोगों को सीधी कार्रवाई के किसी रूप के जरिए अपनी शक्ति के वृद्धि में सक्षम बनाना होता है।

3. शिक्षा तथा चेतना स्तर को उठाना

इस दृष्टिकोण की सहायता से अधिकारिता का जोर लोगों को अपनी शक्तियाँ बढ़ाने के लिए साजसज्जित करने के प्रयोजन से अनुसरण की गई शैक्षिक प्रक्रिया के महत्व पर होता है। इसमें चेतना स्तर को उठाने की धारणाएं, लोगों को समाज और दमन संरचना के बारे में समझना और उन्हें प्रभावपूर्ण बदलाव की दिशा में काम करने के लिए शब्दावली और कौशल प्रदान करना सम्मिलित होता है।

5.5 सामुदायिक संगठनकर्त्ता की भूमिका

समुदाय की कठिनाइयों को सामुदायिक संगठन कार्यकर्ता की सहायता से दूर किया जा सकता है। वह समुदाय के विभिन्न विचारों वाले व्यक्तियों के साथ अलग-अलग समयों में भिन्न-भिन्न रूपो में अपनी भूमिका रहता है इसलिए उसकी भूमिका का सटीक वर्णन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। कर्ता की मुख्य भूमिकायें निम्न रूपों में हो सकती है–

प्रस्तावना
↓
कार्यकर्ता की भूमिका के प्रमुख पक्ष →
↓
निष्कर्ष

- → मार्गदर्शन के रूप में
- → सामर्थ्यदाता के रूप में
- → विशेषज्ञ के रूप में
- → चिकित्सक के रूप में
- → सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में
- → अधिवक्ता के रूप में

1. **मार्गदर्शक के रूप में-** यह सामाजिक परिवर्तन का दिशा निर्देशक होता है जो एक मार्गदर्शन के रूप में निम्नलिखित कार्य करता है-
   - ➢ एक योग्य मार्गदर्शन के रूप में वह समुदाय के सदस्यों के जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं को पहचानने, उनकी पूर्ति के लिए उपयोगी आवश्यक साधनों को ढूँढ़ निकालने में सदस्यों की इस प्रकार सहायता करता है जिससे भविष्य की अवाश्यकताओं को स्वयं पहचानते हुए आवश्यक कदम उठा सके।
   - ➢ कर्ता मुख्यत:विकासशील देशों में सामुदायिक सदस्यों द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समस्याओं के निराकरण के लिए अपनाएँ जाने वाले परम्परागत पिछड़े रास्तों की कमियों को उन्हें महसूस कराते हुए उनके स्थान पर नये उपयोगी रास्तों को पहचानने तथा उनकी पूर्ति के लिए सहायता करता है जिससे नवीन लाभकारी रास्तो को अपनाकर सदस्य गण अपना जीवन स्तर उठा सके।
   - ➢ कार्य के प्रारम्भ में वह अपने उद्देश्य के साथ-साथ सामुदायिक सदस्यों की वर्तमान स्थिति को बिना किसी प्रशंसा या शिकायत के स्वीकार करता है। तत्पश्चात वह सदस्यों की अच्छी बातों की प्रशंसा करता है और बुरी व्यवस्था के परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देते हुए सदस्यों को लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करता है।

- वह समुदाय के लिए एक कुशल कलाकार की भूमिका अदा करता है। इस भूमिका के निर्वाह में वह समुदाय के प्रत्येक वर्ग, जाति व धर्म में सदस्यों की भावनाओं को जानकर सामुदायिक कल्याण के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उन्हें एकत्रित संगठित व संचालित करता है।
- अपने व्यावहारिक ज्ञान व अनुभव से कार्यकर्ता सामुदायिक सदस्यों से स्वीकृति प्राप्त कर उनसे व्यावसायिक संबंध स्थापित करता है। अपने विचारों तथा ज्ञान से वे न केवल सदस्यों को निर्देशित करता है बल्कि महत्वपूर्ण निर्णय लेने में उनकी सहायता करता है और उनमें स्वयं निर्णय लेने की योग्यता का विकास भी करता है।
- कर्ता सदस्यों को अपने ज्ञान तथा अनुभव की जानकारी देने के साथ-साथ अपने कर्तव्यों को भी स्पष्ट करता है अर्थात सदस्यों की नजरों में वह अपनी भूमिका को सार्थक एवं समझने योग्य बनाता है।

2. **एक सामर्थ्य दाता के रूप में-** सामुदायिक संगठन कार्य में कर्ता न केवल सदस्यों का मार्गदर्शन करता है बल्कि वह उनमें अपनी समस्याओं आवश्यकताओं को जानने तथा उनसे मुकाबला करने की योग्यता का निर्माण भी करता है। इस प्रकार सामर्थ्य दाता के रूप में वह निम्न कार्य करता है-
   - कर्ता सदस्यों को सामुदायिक असंतोष व्यक्त करने का पूरा अवसर देता है तथा व्यक्त न करने वाले सदस्यों को प्रोत्साहित करता है कि वे अपने विचारों को समुदाय के सामने रखे और व्याप्त असंतोष तथा सदस्यों की कार्य-क्षमताओं के बीच संतुलन स्थापित करता है जिससे तत्वों की प्राप्ति हो सके।
   - वह समुदाय के सदस्यों को संगठित होने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा उनके बीच व्याप्त मतभेदो को दूर करने का प्रयत्न करता है।
   - कर्ता समुदाय की वैमनस्यता, अंतर समूह तनाव एवं वर्ग विभेद को पहचान कर उनमें समयानुसार आवश्यक परिवर्तन स्थापित कर सदस्यों में सहकारिता स्थापित करने तथा उनके अंत: वैयक्तिक सम्बन्धों को मधुर बनाने का प्रयास करता है।
   - वह सार्वजनिक उद्देश्यों को प्राप्त करने पर बल देता है जिससे समुदाय के अधिकतम या सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।
3. **एक विशेषज्ञ के रूप में-** कर्ता अपने शिक्षण–प्रशिक्षण एवं व्यावहारिक अनुभव के कारण सामुदायिक संगठन कार्य का एक विशेषज्ञ होता है। सामुदायिक संगठन कार्य में एक विशेषज्ञ के रूप में वह अपनी भूमिका निम्निलखित प्रकार से अदा करता है-

- वह सामुदायिक कठिनाइयों के निदान में समुदाय की सहायता करता है तथा धीरेधीरे सामुदायिक सदस्यों में समस्याओं का निदान करने की योग्यता का विकास करता है जिससे भविष्य में उत्पन्न समस्याओं का वह स्वयं निदान कर सके।
- कर्ता सदस्यों में स्वयं अध्ययन कार्य करने तथा अध्ययन नीति तैयार उसे की योग्यता का विकास कर सदस्यों को सामुदायिक संगठन का कार्य अनुसंधान की निपुणता प्रदान करता है।
- कर्ता सामुदायिक सदस्यों में दक्षता एवं कर्मठता का विकास करने के सूचनाओं को उपलब्ध कराकर उनकी उपलब्धियों का उदाहरण प्रस्तुत कर उन्हें लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है।
- सामुदायिक संगठन कार्य के एक विशेषज्ञ के रूप में कर्ता समुदाय के सदस्यों को संगठित होकर सामुदायिक समस्याओं पर विचारविमर्श करने, समस्या समाधान के लिए कार्यक्रम का चयन करने तथा कार्यक्रम कार्यान्वियन जैसे विभिन्न उपयोगी विधियों एवं कला के ज्ञान से सदस्यों को अवगत कराता है जिससे सदस्य गणों में स्वयं सामुदायिक कल्याण कार्य करने की योग्यता का विकास होता है।
- कर्ता अपने ज्ञान तथा कौशल के आधार पर सदस्यों द्वारा लिए गये सामूहिक निर्णयों एवं संचालित कार्यक्रमों का मूल्यांकन करता है और उसके निष्कर्षों से सदस्यों को अवगत करता है तथा मूल्यांकन के निष्कर्षों के अनुसार कार्यक्रम पर पुनर्विचार एवं परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देता है।

4. **एक चिकित्सक के रूप में-** एक चिकित्सक के रूप में कर्ता समुदाय में व्याप्त समस्याओं तथा सामुदायिक संगठन कार्य में बाधक कारकों का पता लगाता है और सदस्यों के साथ उनके निराकरण के उपाय के विषय में विचार विमर्श करता है। सामुदायिक संगठन कार्य में आने वाली बाधाओं का मुकाबला करने कीयोग्यता का विकास होता है।
5. **एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में-** वे समुदाय जहाँ अधिकाधिक जनसंख्या अन्याय तथा पक्षपात का शिकार हो रही हो सामुदायिक संगठन कर्ता न्यायिक घटना के समान भूमिका अदा कर पुरानी जर्जर व्यवस्था में परिवर्तन कर एक कल्याणकारी एवं न्यायिक सामाजिक ढाँचे का निर्माण करता है। मोरिसरेइन तथा पानिक ने कर्ता की इस विवादास्पद भूमिका को आवश्यक बताया है।
6. **एक अधिवक्ता के रूप में-** कर्ता एक वकील या अधिवक्ता के रूप में समुदाय के सदस्यों की सहायता के लिए उसकी आवश्यकताओं तथा उपलब्धसाधनों का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात उनका पक्ष लेता है। वह विभिन्न जिम्मेदार संस्थाओं, संगठनों तथा व्यक्तियों के समक्ष उनके पक्ष को उजागर करता है और उन पर किये गये अन्याय की आलोचना करता है। वह उन संस्थाओं तथा संगठनों और व्यक्तियों के दुराग्रहों व एकतरफा बातों को चुनौती देता है जिसके कारण

सेवार्थी अन्याय के शिकार होते है। वह अपने ज्ञान तथा सामुदायिक शक्तियों से संस्थाओं एवं संगठनों की उन नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों और तोर तरीको में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है जो सामाजिक न्याय और विकास के लिए बाधक है। इसके साथ-साथ वह सदस्यों के जिम्मेदार संस्थाओं व उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली उपयोगी सेवाओं के बारे में जानकारी देता है जिससे सदस्य गण उन संस्थाओं के बारे में जानकारी देता है जिससे सदस्यगण इन संस्थाओं से आवश्यकतानुसार लाभान्वित हो सके।

5.6 सामुदायिक कार्य में कौशल

लोगों के साथ काम करने के किसी भी तरीके, अथवा मध्यस्थता रणनीति की तरह सामुदायिक संगठन में विनिर्दिष्ट कौशलों की जरूरत होती है। इन कौशलों से कार्यकर्त्ता के विनिर्दिष्ट कार्य सटीकता और न्यूनतम प्रयत्न से करने में सहायता मिलती है। सामुदायिक कार्यकर्ताओं के लिए**मैकमोहन** (1996) ने निम्नलिखित कौशलों की पहचान की है और इन्हें ‘‘समाज कार्य के लिए आधार कौशल’’ कहा है–

i. **सम्बन्ध कौशल**

सुनना	अनुक्रिया करना
महसूस करना	व्याख्या करना
स्पष्ट करना	सूचना देना
हवाला देना	

ii. समस्या निवारक कौशल

समस्या को पहचानना	आंकड़े संग्रह करना
आकलन/लक्ष्य निर्धारण	नियोजन/कार्य परिभाषित करना,
चयन और क्रियान्वयन	मूल्यांकन
मध्यस्थता	
समाप्ति	

iii. राजनीतिक कौशल

अधिवक्तृता करना	कानूनी कार्रवाई करना
साक्ष्य उपलब्ध कराना	सौदेबादी करना
संगठित करना	सार्वजनिक करना
प्रदर्शन करना	

iv. व्यावसायिक कौशल

अभिलेखन	शोध
समय प्रबंधन	टीमवर्क

रिवेरा एरलिच (1995) ने मूल्यों तथा अभिवृत्तियों के साथ कुछ कौशलों की पहचान की है–

i. समान सांस्कृतिक व जातीय पहचान।
ii. संस्कृतियों और परम्पराओं, सामुदायिक नेटवर्कों तथा मूल्योंसे परिचित होना।
iii. भाषा और उपसमूह की बोली का अंतरंग ज्ञान।
iv. नेतृत्व शैली और विकास।
v. राजनीतिक तथा आर्थिक विश्लेषण के लिए विश्लेषणात्मक फ्रेमवर्क।
vi. विगत संगठन रणनीतियों, उनकी शक्तियों और सीमाओं का ज्ञान।
vii. चैतन्यीकरण और अधिकारिता सम्बन्धी कौशल।
viii. सामुदायिक मनोविज्ञान का आकलन करने सम्बन्धी कौशल।
ix. संगठनात्मक व्यवहार तथा निर्णय-प्रक्रिया का ज्ञान।
x. मूल्यांकन तथा हिस्सेदारी दृष्टिकोण सम्बन्धी कौशल।
xi. कार्यक्रम नियोजन,विकास तथा प्रशासन सम्बन्धी कौशल।
xii. स्वयं के बारे में और व्यक्तिगत क्षमताओं/सीमाओं का ज्ञान।

सिद्दीकी (1997) ने निम्नलिखित ग्यारह श्रेणियों में कौशलों को सूचीबद्ध किया है –

i. प्रतिष्ठा निर्माण सम्बन्धी कौशल-

- समुदाय के साथ व्यावसायिक सम्बन्ध विकसित करने सम्बन्धी कौशल।
- वित्त पोषण संगठनों के साथ सामंजस्य विकसित करने सम्बन्धी कौशल।
- सहकर्मियों के साथ सम्बन्ध विकसित करने सम्बन्धी कौशल।

ii. आवश्यकताओं की पहचान सम्बन्धी कौशल-

- विभिन्न समुदायों की जरूरतों को पहचानने सम्बन्धी कौशल।
- आवश्यकताओं के निर्धारण और प्राथमिकताएं नियत करने सम्बन्धी कौशल।
- लोगों को समुदाय की जरूरतों के बारे में सर्वसम्मति बनाने में सहायता सम्बन्धी कौशल देने।

iii. संसाधन संचालन सम्बन्धी कौशल-

- संसाधनों के लिए जिन स्रोतों को तलाशा जा सकता है, उनकी पहचान सम्बन्धी कौशल।
- परियोजना प्रस्ताव तैयार करने सम्बन्धी कौशल।
- स्वनिर्मित संसाधनों की तलाश सम्बन्धी कौशल।

iv. कार्यक्रम प्रबंधन सम्बन्धी कौशल-

- समुदाय की जरूरतों के अनुरूप कार्यक्रम विकसित करने सम्बन्धी कौशल।
- कार्यक्रम को समुदाय की सांस्कृतिक जरूरतों तथा पारम्परिक सौहार्द के अनुरूप रखने सम्बन्धी कौशल।
- न्यूनतम संसाधनों के साथ स्वधारणीयता प्राप्त करने सम्बन्धी कौशल।

v. कार्यक्रम नियोजन सम्बन्धी कौशल-

- भूमिका विभाजन के लिए एक ब्लूप्रिंट विकसित करने सम्बन्धी कौशल।
- काम के लिए उपयुक्त व्यक्ति की खोज सम्बन्धी कौशल।
- मानीटरिंग तथा पर्यवेक्षण की एक पर्याप्त व्यवस्था विकसित करने सम्बन्धी कौशल।

vi. मूल्यांकन सम्बन्धी कौशल-

- संकेतकों के एक विनिर्दिष्ट सेट की पहचान सम्बन्धी कौशल।
- आँकड़ों के संग्रह सम्बन्धी कौशल।
- आंकड़ों के विश्लेषण सम्बन्धी कौशल।

vii. रिकार्डिंग सम्बन्धी कौशल-

- प्रक्रिया रिकार्डिंग सम्बन्धी कौशल।
- उपयुक्त रिकार्ड के अनुरक्षण सम्बन्धी कौशल।
- व्यक्तिगत रिकार्ड रखने सम्बन्धी कौशल।

viii. सामुदायिक हिस्सेदारी को प्रोत्साहित करने सम्बन्धी कौशल-

- लोगों को समुदाय कार्य की प्रत्येक अवस्था में निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित करने के तरीकों की पहचान सम्बन्धी कौशल।
- लोगों की हिस्सेदारी को संस्थागत करने के लिए उपयुक्त संरचनाएं विकसित करने सम्बन्धी कौशल।
- लोगों को कार्यक्रम की स्व-धारणीयता प्राप्त करने के प्रयोजन से कार्यक्रम प्रबंधन को धीरे-धीरे हस्तांतरित करने सम्बन्धी कौशल।

ix. समूह के साथ काम करने सम्बन्धी कौशल-

- समूह की स्थिति का विश्लेषण करने सम्बन्धी कौशल।

- समूह की भावनाओं पर काम करने सम्बन्धी कौशल।
- अन्तर-समूह सम्बन्धी विकसित करने सम्बन्धी कौशल।

x. व्यक्तियों के साथ काम करने सम्बन्धी कौशल-

- व्यक्ति स्तर के मामलों की पहचान तथा स्वीकार करने सम्बन्धी कौशल।
- समस्या के आकलन सम्बन्धी कौशल।
- रेफरल का इस्तेमाल करने सम्बन्धी कौशल।

xi. सामुदायिक कार्रवाई को संचालित करने सम्बन्धी कौशल।

- उपयुक्त मुद्दे की पहचान सम्बन्धी कौशल।
- एकाधिकरण नीतियाँ प्रयोग करने सम्बन्धी कौशल।
- मास मीडिया के प्रयोगसम्बन्धी कौशल।

सामुदायिक अभ्यास के लिए **वील (2005)** ने 21 वीं सदी में प्रासंगिक विशेषज्ञता प्राप्त कौशलों की निम्नलिखित श्रेणी की पहचान की है–

व्यवहार कौशल

नीति प्रैक्टिस

समर्थन जुटाना

अधिवक्तता

कार्यक्रम आरेखन, क्रियान्वयन तथा प्रबंधन

वित्तीय प्रबंधन

संगठन

अलाभकारी विकास

सामुदायिक विपणन

निधियाँ उगाहना

सुसाध्यता

नागरिक भागीदारी

नेतृत्व विकास

स्वयंसेवी प्रबंधन

प्रस्ताव विकास

संविदा प्रबंधन

मानव संसाधन प्रबंधन

जमीन स्तर पर नियोजन
क्षेत्रगत नियोजन
क्रास-सेक्टर नियोजन
अभियान
सार्वजनिक शिक्षा
प्रतिस्पर्धी कौशल
टकराव की युक्तियाँ
वार्ता
मध्यस्थता
स्थिति निर्धारण व लेखन
समूह तथा अन्तर-समूह विकास
आर्थिक व सामुदायिक विकास
सामुदायिक नियोजन
राजनीतिक तथा सामुदायिक कार्य
गठबंधन/नेटवर्क विकास

शोध सम्बन्धी कौशल

कार्यक्रम मूल्यांकन
भागीदारी शोध
प्रशासनिक आँकड़ों का प्रयोग
जीआईएस
एमआईएस
समुदाय का आकलन
समुदाय मानचित्रण तथा परिसम्पति मानचित्रण
प्रतिवेश विश्लेशण
नीति एवं गरीबी पर शोध
लागत लाभ/लागत प्रभावोत्पादकता विश्लेषण
समुदाय विश्लेषण
अधिकारिता सम्बन्धी शोध
कार्रवाई शोध
आँकड़ें
सामुदायिक सूचकांकों/संकेतकों का प्रयोग

5.7 सारांश

इस इकाई में शक्ति के आयाम और सामुदायिक संगठन में इसकी प्रासंगिकता पर चर्चा की गई है। इसके अलावा, आधिकारिता की व्याप्त धारणाएं और वे किस प्रकार जाति, श्रेणी तथा लिंग से उत्पन्न होने वाली असमानता से लड़ने के प्रयोजन से अधिक व्यापक आधार वाली तथा विशिष्ट रणनीतियों को परिभाषित करने में योगदान देती हैं, इस पर भी इस इकाई में विमर्श किया गया। अंत में, इकाई में सामुदायिक संगठनकर्त्ताओं द्वारा अपनी चुनौतीपूर्ण भूमिकाओं कोप्रभावपूर्ण ढंग से निभाने के लिए आवश्यक कौशलों तथा क्षमताओं की एक व्यापक श्रेणी पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

5.8 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: सामुदायिक शक्ति संरचना पर प्रकाश डालिए और साथ ही उसके साथ कार्यकर्ता के कार्य को भी स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 2: लैंगिक संवेदी सामुदायिकसंगठन के अभ्यास को प्रस्तुत कीजिये।

प्रश्न 3: वंचित समूहों के साथ सामुदायिक अभ्यास को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न 4: सामुदायिक संगठनकर्ता की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 5: सामुदायिक कार्य में कौशल पर विस्तृत वर्णन प्रस्तुत कीजिये।

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. कॉक्स, एफ.एम. ई टी अल (संस्करण) (1987) *स्ट्रैजीस ऑफ कम्यूनिटी ऑर्गेनाइजेशन; ए. बुक ऑफ रीडिंग*, चतुर्थ संस्करण इटास्का, 12, एफ-ई. पीकॉक।
2. दूबे, मुहकुंड(संस्करण) 1995, *इंडियन सोसायटी टूडे: चैलेंजस ऑफ इक्वालिटी, इंटिग्रेशन, एंड एम्पावरमेंट.* नई दिल्ली : (हर आनंद पब्लिकेशन)।
3. गंग्रेड, के.डी (1971), *कम्यूनिटी ऑर्गेनाइजेंशन इन इंडिया.* बम्बई : (पॉपूलर प्रशासन)।
4. घुरिया, जी.एस (1961) *क्लास, कास्ट एंड आक्यूपेशन*. बम्बई : (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेम)।
5. पास्कल, गिस्वर्ट एस.जे. (1999) *फंडामेंनटलस ऑफ सोश्योलॉजी*, हैदराबाद : ओरियंट लागमैन लि.।
6. पथानिया, सुनिता (1992) *ग्लोब्लाइजेशन कलचर एंड जेंडर: सम इश्यू ग्लोब्लाइजेशन, कलचर एंड वोमेन डेब्लपमेंट.* जयपुर : (रावत पब्लिकेशनस)।
7. पॉलो, फ्रेरे (1997) *पेडागोजी ऑफ द ओप्रेस्ड*, पेंगुइन बुक्स।
8. सिद्दकी एच.वाई (1997) *वर्किंग विद द कम्यूनिटीस, एन इंट्रोडक्शन टू कम्यूनिटी वर्क.* नई दिल्ली : हीरा पब्लिकेशन।
9. वेल, मैरी (संस्करण) (2005) द हैडबु*क ऑफ कम्युनिटी प्रैक्टिस*, सेज पब्लिकेशन, थाउसंड ऑकस।

खंड 3

सामुदायिक विकास के लिए सामाजिक क्रिया

इकाई - 1
सामाजिक क्रिया : अवधारणा एवं अनुप्रयोग

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 सामाजिक क्रिया का अर्थ एवं परिभाषा
1.4 सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ
1.5 सामाजिक क्रिया के उद्देश्य एवं क्षेत्र
1.6 सामाजिक क्रिया का इतिहास तथा प्रासंगिकता
1.7 सामाजिक क्रिया के संदर्भ में दुर्खीम, परेटो, वेबर और पारसन्स के विचार
1.8 सामाजिक क्रिया पुर्वावलोकन
1.9 सारांश
1.10 बोध प्रश्न
1.11 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप

1. सामाजिक क्रिया के अर्थ एवं परिभाषा की व्याख्या कर सकेंगे।
2. सामाजिक क्रिया के उद्देश्य क्षेत्र को रेखांकित कर सकेंगे।
3. सामाजिक क्रिया के इतिहास को चिन्हित कर सकेंगे।
4. सामाजिक क्रिया की विवेचना कर सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से समाज कार्य के वर्तमान वैज्ञानिक स्वरूप का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 1922 में मेरी रिचमण्ड ने सामाजिक क्रिया का उल्लेख, समाजकार्य की एक प्रणाली के रूप में किया था। जान फिंच ने सामाजिक क्रिया की प्रकृति के ऊपर एक महत्वपूर्ण शोधपत्र 1940 में एक कॉन्फ्रेंस में प्रस्तुत किया था। तत्पश्चात वर्ष बाद फिन्च ने *सोशल वर्क इयर बुक* में सामाजिक आंदोलन पर निबंध लिखा। 1945 से पहले सामाजिक क्रिया को सामुदायिक संगठन का एक भाग माना जाता था। लेकिन 1945 में केनिथ एलियम प्रे ने *''सोशल वर्क एण्ड सोशल एक्शन''* नामक एक लेख लिखा जिसके आधार पर यह माना जाने लगा कि सामाजिक क्रिया सामुदायिक संगठन का अंग न होकर समाज कार्य की एक अलग विधि है।

सामाजिक क्रिया समाज कार्य की एक सहायक प्रणाली है। सामाजिक क्रिया को प्रारंभिक समाज कार्य साहित्य में समाज सुधार का नाम दिया गया। यह समाजकार्य अभ्यास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सामाजिक क्रिया मानव समाज के विकास की प्रक्रिया का हिस्सा रही है। समाज विकास में शायद कोई ऐसा दौर नहीं रहा होगा, जहाँ लोगों ने स्वयं को संगठिततथा, अन्याय का विरोध न किया हो। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक असमानता को समाप्त करने या दूर करने की कोशिश न की हो । लोगों की शिकायतों को दूर करने की कोशिश, समाज के वंचित एवं

उपेक्षित लोगों की लड़ाई को बेहतर समाज बनाने के लिए तथा उनकी लड़ाई को लक्ष्य तक पहुँचाने की कोशिश सदैव की गई।

किसी भी विकास कार्य की कामयाबी के लिए स्वैच्छिक प्रयास और जनभागीदारी को महत्वपूर्ण एवं आवश्यक माना जाता है। लगभग प्रत्येक योजना दस्तावेजों एवं सरकारी नीतियों में सामाजिक क्रिया को जगह मिली है। सामाजिक क्रिया को विकास कार्य के लिए लोगों को एकजुट करने के लिए मुश्किल से एक औजार के तौर पर जगह मिल पाई। सत्ता में रहने वालों के लिए, सामाजिक क्रिया का मतलब बदलाव लाने के लिए संगठित प्रयास से था। कभी-कभी सत्ता के गलियारों में इसे हितों के टकराव के रूप में देखा जाता था।

सामाजिक क्रिया को सिर्फ समाज कार्य की पद्धति के रूप में ही न देखकर इसे भारत में समाज कार्य शिक्षा के पीछे निहित दर्शन के रूप में भी देखना चाहिए। भारतीय परिदृश्य में समाज कार्य के उदभव एवं इसके इतिहास की चर्चा इसी अध्याय में सामाजिक क्रिया का इतिहास तथा प्रासंगिकता विषय के अंतर्गत की जाएगी। सामाजिक वातावरण में जब अन्याय और असमानता का बोल बाला बढ़ जाता है, समाज के कुछ वर्गों में भेदभाव की भावना बढ़ जाती है तथा शोषण एवं गरीबी में वृद्धि होती है जिनका समाधान अनेक प्रयासों से भी नहीं हो पाता है तो ऐसी स्थिति में सामाजिक क्रिया की आवश्यकता पड़ती है। सामाजिक क्रिया समाज कार्य का वह तरीका है, जहाँ हाशिए पर खड़े लोगों या सीमांत समूहों के अधिकारों तथा हितों की रक्षा की जाती है। इसके लिए उस समाज व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं सेसंघर्ष करना पड़ता है। जिनके पास शक्ति एवं संसाधन होते हैं तथा जो समाज के कमजोर वर्गों की जरूरतों के प्रति असंवेदनशील होते हैं। प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में हमारा लक्ष्य तनावग्रस्त लोगों को उनकी समस्याओं का निदान करने एवं विवादों कोदूरकरने में सहायता करना होता है। सामाजिक कार्यकर्ता के तौर पर हम सामाजिक स्थिति में जिस भी तरीके का इस्तेमाल करते हैं हमारा मकसद लोगों के बीच बाधाओं तथा मतभेदों को दूर करना होता है। लोगों के सामाजिक संबंधों में प्रगाढ़ता लाना तथा उनकी समृद्धि को सुनिश्चित करना हमारा लक्ष्य होता है।

सामाजिक क्रिया के जरिए बेमेल संसाधनों और शक्तियों को समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए पुन: वितरित किया जाता है। सामाजिक क्रिया शब्द का प्रयोग स्वयंसेवी क्रिया की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। अनेक प्रकार की गतिविधियाँ जैसे दान देना, राहत कार्य ,सेवा आपूर्ति, लोकनीति संबंधी पहल,सामाजिक आंदोलन, जनपैरवी, अभियान, सामाजिक राजनीतिक संचालन वांछित बदलावों के लिए नेटवर्किंग इत्यादि सभी को सामाजिक क्रिया शब्द के अंतर्गत सम्मिलित कर दिया गया है। सामाजिक क्रिया सामाजिक तथा आर्थिक संस्थाओं में परिवर्तन अथवा सुधार का एक संगठित प्रयास होता है। भ्रष्टाचार, दहेज प्रथा, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, नशाखोरी, आवास, स्वास्थ्य आदि जैसी सामाजिक समस्याओं का सामना सामाजिक क्रिया केमाध्यम से किया जाता है। इसका ताजा उदाहरण अन्ना हजारे का भ्रष्टाचार आंदोलन रहा। सामाजिक क्रिया में सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक न्याय, मानवाधिकार, स्वतंत्रता तथा नागरिक स्वतंत्रता आते हैं। सामाजिक क्रिया को अगर मानवाधिकार के संदर्भ में देखा जाए तो यह सबसे उपयुक्तमाध्यम प्रतीत होती है जो जनसंख्या के एक बड़े वर्ग को लाभान्वित करने में मदद करती है। इसमें दीर्घकालिक परिवर्तनों, निष्कर्षों तथा आम जन को प्रभावित करते हुए समस्याओं के मूल कारणोंको समाप्त करने की कोशिश की जाती है तथा उसकी धारणीयता सुनिश्चित करने की प्रवृति होती है। सामाजिक क्रियाका उद्देश्य सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण को निश्चित आकार देना, विकास करना होता है ताकि सभी नागरिकों के लिए समृद्धतर जीवन संभव हो सके। समाज कार्य एक उभरती हुई विधा है जहाँ ऐसे तौर तरीकों को प्रारंभ करने, तलाशने

,बनाए रखने तथा संशोधित करते हुए, मध्यस्थता को गति दी जाती है जिनके द्वारा व्यक्ति को व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से उनकी सामाजिक कार्य प्रणाली में अवरोधों के समाधान में सहायता प्रदान की जा सके।

सामाजिक क्रिया का अर्थ एवं परिभाषा

मानव एक सामाजिक प्राणी है। अपने जीवन की सभी आवश्यकताएं, वह स्वयं ही पूर्ण नहीं कर सकता है वरन अन्य व्यक्तियों का भी उसे सहारा लेना होता है। आवश्यकता पूर्ति हेतु अन्य व्यक्तियों से सहयोग लेना होता है, साधन जुटाने होते हैं और अन्यव्यक्तियों के संदर्भ में व्यवहार करना होता है और यहीं सेसामाजिक क्रिया अस्तित्व में आती है। सामाजिक क्रिया के लिए कर्ता, परिस्थिति एवं प्रेरणा का होना आवश्यक है। **पारसंस** ने ***'द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन' (1937)*** तथा शिल्स के साथ लिखी अपनी पुस्तक ***'टू वर्ड्स ए थ्योरी ऑफ सोशल एक्शन'* (1951)** में यह स्थापित किया है कि सामाजिक क्रिया सिद्धांत वस्तुतः एकस्वैच्छिक क्रिया का सिद्धांत है। स्वैच्छिक इसलिए कि कर्ता अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उपलब्ध विकल्पों में से जो कुछ उसे सही दिखाई पड़ता है, ग्रहण कर लेता है। इस तरह सामाजिक क्रिया का स्वैच्छिक सिद्धान्त, उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद व आदर्शवाद को अपने अंदर समेट लेता है।

पोर्टर ली आर *के अनुसार (1937) "सामाजिक क्रिया का उद्देश्य समाज में प्रचलित परम्पराओं को बदलने कानून में परिवर्तन करने तथा नई व्यवस्था के लिए आंदोलन चलाना होता है। इसमें कुछ संगठन वर्ग-संघर्ष को आर्थिक रूप में बदल कर समाज में अधिक संतुलन बनाते हैं। इसमें जो विचार निहित है यही सामाजिक क्रिया है। सुरक्षा अभियान एवं सामुदायिक हित के आंदोलन, सामाजिक क्रिया के उदाहरण हैं। कोई भी ऐसा प्रयास प्रत्यक्ष या परोक्ष, जिससे सामाजिक कल्याण होता है, वह सामाजिक क्रिया है।"* ली के अनुसार चूंकि इसका संबंधऐच्छिक समूहों से है और विभिन्न समूहों की आपसी गतिविधियों से है, अतः यह सामाजिक संगठनों का अभिन्न अंग है।

कैनेथ एल. एम. प्रे (1945) के अनुसार, सामाजिक क्रिया *एक समझपूर्ण प्रयास है जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक परिस्थितियों एवं नीतियों पर पड़ता है तथा उससे सामाजिक बनावट* पर *अच्छा व खराब असर भी पड़ता है, जो सामाजिक कार्यकर्ताओं को देखना होता है। सामाजिक कार्यकर्ता को सामाजिक सेवा के दौरान कुछ मुश्किलों व बाधाओं का सामना करना होता हैजो उनको अच्छी सेवाएँ देने से रोकती है। सामाजिक क्रिया में इनको हल करते हुए आगे बढ़ाना होता है।*

आर्थर डनहेम (1958) के अनुसार, *"सामाजिक क्रिया, सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा समाज के लिए अच्छे समझे जाने वाले उद्देश्यों हेतु वर्तमान प्रचलित व्यवस्था में शिक्षा, जागरूकता, दबाव आदि माध्यमों के द्वारा बदलाव लाने का एक प्रयास है।"* उन्होंने कहा कि टकराव की स्थिति में लक्ष्य को पाने के लिए कार्रवाई की विधियों में परिवर्तन करना उचित है । सामाजिक क्रिया, स्थितियों के बीच टकराव है तथा उद्देश्यों को आगे बढ़ाती है । उन्होंने टकरावकी स्थिति में प्रक्रियात्मक एवं सीधे कार्यवाही को उचित ठहराया ।

भारतीय समाजकार्य के एनसाइक्लोपीडिया द्वारा 1965 में दी गयी परिभाषा के अनुसार, *सामाजिक क्रिया वह सामाजिक गतिविधि है जिसमें संगठित रूप से सामाजिक संस्थाओं को रूपांतरित करना,परिवर्तन करना, नीतियाँ बनाना है जिससे पूरासामाजिक परिवेश निर्मित होता है। सामाजिक क्रिया का संबंध एक बेहतर सामाजिक वातावरण बनाने से होता है। जिसमें सभी व्यक्तियों को सुविधाएं प्राप्त हो तथा उनके बीच अच्छा सहसंबंध हो जिससे उनकी दैनिक गतिविधि सुचारु रूप से चल सके। सामाजिक क्रिया के द्वारा एक नयी व्यवस्था उत्पन्न होती है, नये कल्याणकारी कार्यक्रम सामने आते हैं तथा उन बाधाओं को दूर करना होता है जो सुधार व कल्याणकारी परिवर्तन के रास्ते में आते हों।*

मूर्ति एम. वी. (1966) के अनुसार *"सामाजिक क्रिया से तात्पर्य लोगों की सामूहिक सामाजिक समस्याओं के समाधान से है यह केवल कानून के माध्यम से ही नहीं बल्कि सामान्य खतरों का मुक़ाबला करके भी किया जा सकता है । यह एक सामुदायिक संगठन की क्रियाशीलता है, जिसमें लोगों के अंदर जागरूकता,उनके द्वारा समस्याओं को देखना तथा उनका पूर्वानुमान लगानाएवं उन पर सामाजिक क्रिया को प्रजातांत्रिक तरीके से या कानूनी रूप सेकरना सम्मिलित है ।*

मैक्स वेबर लिखते हैं कि *"सामाजिक क्रिया वह क्रिया है जिसमें कर्ता या कर्ताओं द्वारा लगाये गये प्रतीतिक अर्थ (subjective meaning) के अनुसार दूसरे व्यक्तियों के मनोभाव एवं क्रियाओं का समावेश हो और उन्हीं के अनुसार उसकी गतिविधि तय हो" ।*

वेबर की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि सामाजिक क्रिया केवल उसी क्रिया को कहते हैं जिसमे कर्ता अन्य कर्ताओं के मनोभावों एवं क्रियाओं को ध्यान में रखकर करता है और प्रत्येक क्रिया काकर्ता के लिए कोई न कोई अर्थ होता है । वेबर सामाजिक क्रिया में व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार की क्रियाओं को सम्मिलित करते हैं ।

टाल्काट पारसन्स के अनुसार, *"सामाजिक क्रिया, कर्ता की परिस्थिति व्यवस्था में वह प्रक्रिया है जिसका अकेले कर्ता के लिए अथवा सामूहिक रूप में उस समूह के व्यक्तियों के लिए प्रेरणात्मक महत्व होता है ।"*

पारसन्स ने उपर्युक्त परिभाषा में सामाजिक क्रिया के तीन तत्वों कर्ता, परिस्थिति एवं प्रेरणा पर ज़ोर दिया है इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी सामाजिक क्रिया के लिए कर्ता या कर्ताओं का होना जरूरी है। ये कर्ता किसी न किसी उद्देश्य या प्रेरणा से प्रेरित होकर किसी-न-किसी परिस्थिति में ही क्रिया करते हैं । यह परिस्थिति उनके अनुकूल या प्रतिकूल हो सकती है।

1.4 सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ

सामाजिक क्रिया की परिभाषाओं से गुजरते हुए आपको उसकी विशेषताओं का अंदाज हो गया होगा। हम उन्हीं विशेषताओं को रेखांकितकरने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन यह भी ध्यान दिलाना चाहते हैं कि जरूरी नहीं उसमें हर तरह की सामाजिक क्रिया आ पाये। यह भी जरूरी नहीं कि सभी जानकार सामाजिक क्रिया की उन विशेषताओं से सहमत हों

- सामाजिक क्रिया *एक संगठित प्रयास* है। इसका मकसद सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ढांचे और उनके कामकाज के तौर तरीकों में बदलाव लाना है, ताकि बेहतर सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक व्यवस्था कायम हो सके। खास तौर पर समाज के हाशिये पर जुड़े समूह बेहतर महसूस कर सकें। इसे कमजोर वर्गों को एकजुट करने और सामूहिक कार्रवाई से निहित स्वार्थों के खिलाफ खड़े करने के तरीके के तौर पर देखा जाता है। इसमें तमाम तरह के सत्ता समूहों के शोषण आते हैं। चाहे वे राजनीतिक या आर्थिक या उद्योगया व्यापार से संबंधित हो
- सामाजिक क्रिया का *क्षेत्र बहुत बड़ा व्यापक* है, यानि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सुधार, सामाजिक अन्याय और धार्मिक असहिष्णुता की समाप्ति, मानव अधिकारों की बहाली, कानून बनवाना, फैसले लेने और लाभों में हिस्सेदारी, पर्यावरण संरक्षण, मौजूदा लोकाचारों की जकड़न से मुक्ति वगैरहमुद्दे इसमें शामिल हैं।

- सामाजिक क्रिया के उद्देश्य *आमूल परिवर्तनवादी या बदलावकारी हो सकते* हैं। मसलन, वह मौजूदा ढ़ाँचे की बुनियाद पर ही सवाल उठा सकते हैं। उसे ढहाने की बात कह सकते हैं। वेअक्सर उसका विकल्प सुझाते हैं। ये विकल्प पूरी तरह कारगर न हो पायें तब भी दूसरी ओर सामाजिक क्रिया व्यवस्था के भीतर भी बदलाव पर काम कर सकती हैं।
- सामाजिक क्रिया *वैश्विक मामलों* मसलन पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण, उसकी गिरावट को रोकने से ले कर *स्थानीय मुद्दे* जैसे- अपराध, शराब की बिक्री, ग्रामीण सामुदायिक संसाधनों पर हावीव्यक्तियों या समूहों का गलत इस्तेमाल, मजदूरों का शोषण, गलत काम करने वाले को सजा वगैरह के मुद्दे पर आधारित या केंद्रित हो सकते हैं ताकि उसके लिए जरूरी समर्थन जुटा लिया जाए और दबाव समूहों को संगठित कर लिया जाए।
- सामाजिक क्रिया का *भौगोलिक क्षेत्र और संख्यामुद्दों के लिहाज* से काफी कम और ज्यादा हो सकती है।
- सामाजिक क्रिया को चलाने *की ताकत बाहर से आ* सकती है। शुरूआती दौर में एकजुट किए बिना या रणनीति और लक्ष्य पर लोगों की हिस्सेदारी या आंशिक हिस्सेदारी से भी काम चल सकता है। लेकिन लगातार बेहतर नतीजे पाने के लिए रणनीति और लक्ष्यों पर लोगों की भागीदारी जरूरी है।
- सामाजिक क्रिया के *लक्ष्य कभी मूल्य तटस्थ* नहीं होते वे मूल्य आधारित होते हैं और चरित्र में आदर्शी या मानकीय होते हैं। हालांकि ये मूल्यऔर मानक किसी संस्कृति के स्वीकृत लक्ष्यों और मूल्यों से अलग हो सकते हैं।
- सामाजिक क्रिया में *संघर्ष के तत्व* रहते हैं। जरूरी नहीं कि वह पूरी तरह शांतिपूर्ण और पूरी तरह से अहिंसात्मक हों। यह अलग बात है कि हिंसा कोई बेहतर तरीका नहीं है।
- सामाजिक क्रिया कुछ मामलों में *ऐसे तरीके या लक्ष्य तय करती है, जो भविष्य के लिए* होते हैं। उनका दायरा खास वास्तविक और विस्तृत होता है। वह कानून से परे जा सकते हैं। फिर भी लक्ष्यों और तरीकों की सामाजिक और नैतिक मंजूरी भी महत्वपूर्ण है।
- सामाजिक क्रिया अभियान में *नेताओं की प्रतिबद्धता*लक्ष्यों और तरीकों में उनका भरोसा और भावात्मक भागीदारी जरूरी होती है।
- सामाजिक क्रिया *गैर-राजनीतिक नहीं होती फिर* भी ज्यादातर सामाजिक क्रिया के अभियान राजनीतिक पार्टियाँ नही चलाती।

1.5 सामाजिक क्रिया के उद्देश्य एवं क्षेत्र

उद्देश्य -

1. सामाजिक समस्याओं के प्रति जनता में जागरूकता और बोध उत्पन्न करना, कल्याणकारी योजनाओं की स्वीकृति प्राप्त करना और सामुदायिक नेताओं कासमर्थन प्राप्त करना।
2. अविकसित समूहों के विकास के लिए आवश्यक सेवाओं की मांग करना।

3. स्वास्थ्य एवं कल्याण के क्षेत्र में स्थानीय, प्रांतीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर किए जाने वाले कार्यों को करना।
4. समाज कार्य के क्षेत्रीय अनुभव, प्राविधिक कुशलता और ज्ञान पर आधारित सामाजिक समस्याओं के लिए आवश्यक सुझाव देना।
5. समाज कार्यकर्ताओं एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा एकत्रित सामाजिक आँकड़ों का विश्लेषण करना।

क्षेत्र -

किसी भी क्रिया का विस्तार या उपयोगिता उस व्यवसाय के तरीके, उद्देश्य, लक्ष्य व आशय को किस प्रकार परिभाषित किया गया है उस पर निर्भर करता है। दूसरा, उसका प्रयोग किस संदर्भ में किया गया है खास तौर पर सामाजिक व आर्थिक व सांस्कृतिक संदर्भ में जो कि संवैधानिक दायित्व भी है।

कैनेथ एल. एम. प्रे. सामाजिक क्रिया और समाजकार्य के बीच संबंध पर एक मुख्य प्रश्न उठाते हैं कि क्या समाजकार्य एक व्यवसाय के रूप में कोई विशेष उत्तरदायित्व लेता है? लोगों की आवश्यकता अनुरूप लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कौशल्य का प्रयोग करता है या फिर इस व्यवसाय का उत्तरदायित्व मात्र परिस्थितियों के दायरे में लोगों की सहायता करना रह गया है, चाहे वो परिस्थितियाँ कुछ भी हों? इस प्रश्न के उत्तर पर ही इस व्यवसाय का लक्ष्य निर्धारित होना चाहिए।

सामाजिक क्रिया का विस्तार इसके उद्देश्यों पर निर्भर करता है। इसका उद्देश्य समाज कार्य के व्यवसाय पर निर्भर है। यदि समाज कार्य व्यवसाय का उद्देश्य लोगों को साधन संपन्न बनाना है तो सामाजिक कार्यकर्ताओं का उद्देश्य मात्र बाधाओं को रोकना है न कि मूल समस्याओं का निवारण। यह इस पर निर्भर करता है कि मानवीय समस्याओं के कारणों को किस दृष्टिकोण से समझा गया है? यदि सामाजिक क्रिया का उद्देश्य किसी कानून में परिवर्तन करना या कोई आन्दोलन खड़ा करना है तो ये सब सामाजिक क्रिया के केन्द्र बिन्दु होंगे। कुछ उदार कार्यवाईयों में आर्थिक स्रोतों को बढ़ावा व सामाजिक सेवाओं को और विकसित करना आदि पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया जाता है। तब सामाजिक सेवाओं में अक्षमता तथा सामाजिक कानून और दूसरे मुख्य मुद्दे होते हैं। लेकिन प्रश्न उठता है कि क्या समानता आधारित विकास हो रहा है? या कोई प्रस्तावित विकास या नमूने का विकल्प है तो सामाजिक क्रिया का संबंध इन सभी प्रश्नों के समाधान से होता। ऐसे में सामाजिक क्रिया प्रचलित वैधानिक नियमों के दायरे के बाहर चली जाती है चूँकि वैधानिकता एक सापेक्ष अवधारणा है। तब सामाजिक लक्ष्य पश्चिम के अथवा विशिष्ट व्यक्तियों के दृष्टिकोण से निर्धारित होंगे तथा अन्य प्रश्नों को कौन निर्धारित करे कि लक्ष्य वांछनीय है, वैधानिक है या नहीं तथा ये किस आधार पर सामाजिक क्रिया की प्राथमिकता है? ये सभी मुद्दे विचारणीय हैं।

1.6 सामाजिक क्रिया का इतिहास तथा प्रासंगिकता

ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से समाज कार्य के वर्तमान वैज्ञानिक स्वरूप का अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि 1922 में ही मेरी रिचमंड ने सामाजिक क्रिया का उल्लेख समाज कार्य की चार प्रमुख प्रणालियों मे से एक प्रणाली के रूप में किया था। 1940 में जॉन फिंच ने एक कॉन्फ्रेंस में सामाजिक क्रिया प्रकृति के ऊपर एक महत्वपूर्ण निबंध प्रस्तुत किया इसके एक वर्ष बाद फिंच ने *सोशल वर्क ईयर बुक में* सामाजिक आंदोलन पर निबंध लिखा। 1945 में केनेथ एलियम प्रे ने *"सोशल वर्क एंड सोशल एक्शन"* नामक एक लेख लिखा जिसके अनुसार यह माना जाने लगा कि सामाजिक क्रिया सामुदायिक संगठन का एक अंग नहीं है यह समाज कार्य की एक अलग विधि है। बाद में चल कर बात स्पष्ट हो गयी कि सामुदायिक संगठन के अंतर्गत कार्य एक सीमित क्षेत्र में किया जाता है किन्तु सामाजिक क्रिया में कार्य बड़े पैमाने पर होता है। सामाजिक क्रिया उतनी ही पुरानी है जितना कि समाज। इसके सूत्र

ऐतिहासिक दस्तावेजों में उपलब्ध है– पाँचवी शताब्दी पूर्व रोम के विरूद्ध प्लैबियन विरोध के रूप में, प्राचीन रोम से अमेरिका के नागरिक अधिकारों के आंदोलन, तक सामाजिक क्रिया का एक लंबा इतिहास है। पश्चिम में भी इसका उदाहरण मध्य 16 वीं शताब्दी में नीदरलैंड से स्पेन के विरोध के रूप में उपलब्ध है। वर्ष 1880 में आयरलैंड के किसानों द्वारा बहिष्कार, वर्ष 1905 में खूनी रविवार के रूप में रूसी क्रांति, 1917 की रूसी क्रांति, वर्ष 1953 में पूर्वी जर्मनी का उदय, 1956 का हंगरी आंदोलन और अफ्रो–अमेरिकन द्वारा बस बहिष्कार आदि सामाजिक क्रिया के उदाहरण है।

भारत में बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का उदय भी एक धार्मिक आंदोलन द्वारा सामाजिक विरोध की कार्रवाई द्वारा हुआ। भारत में 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम जो अत्याचारी शासकों, दमनकारी आर्थिक नीतियों और राजनैतिक नीतियाँ जो भुखमरी का कारण बनी, अन्यायपूर्ण कर-नीति, बारदौली किसान आंदोलन, अस्पृश्यता संबंधी आंदोलन तथा भारत में कृषक आंदोलन, वर्तमान में अल्पसंख्यकों, बालकों एवं महिलाओं के आंदोलन,भ्रष्टाचार आंदोलन आदि प्रमुख हैं जो आज भी निरंतर जारी है।

भारत में औपनिवेशिक दौर में भी विभिन्न भागों में जनता के बदहाल जीवन स्तर सुधारने, शैक्षणिक अवसरों की असमानता, जातिवाद, अन्यायपूर्ण कराधान आदि के विरोध में कई आंदोलन हुए हैं और इस प्रकार सामाजिक क्रिया से सामाजिक सुधार हुए। ज्योतिबा फुले ,पंडिता रामाबाई ने स्पष्ट रूप से अपने आंदोलन को लोगों के जीवन स्तर को सुधारने एवं उनके आत्मविश्वास को बढ़ाने में केन्द्रित किया जो कि सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए थे। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान ही भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का जन्म हुआ जिसने प्रारम्भिक दौर में टकराव का रास्ता न चुन कर मिलजुल कर, सुधार का कार्य–साथ किया गया जो बाद में अलग-थलग हो गया।

आजादी के आंदोलन की शुरूआत योजनाबद्ध व स्पष्ट रूप से अंग्रेजीराज के विरूद्ध भारतीय नेताओं ने की थी जिसमें गांधी के सामाजिक सुधारों का कार्यक्रम, समग्र राजनैतिक, सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से स्वतन्त्रता से जुड़ा था। गांधी ने सृजनात्मकता के साथ सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्पराओं की व्यवस्था का सुंदर समागम किया और सभी बुराइयों का अहिंसक तरीके से विरोध का रास्ता अपनाया।

गांधी जी ने सभी संस्थागत बुराइयों के विरूद्ध जुझारू रूप से अहिंसक तरीकों का प्रयोग किया उदाहरण के तौर पर कई आंदोलन जैसे असहयोग आंदोलन, बारदौली सत्याग्रह, नमक सत्याग्रह इन आंदोलनों में गांधी का व्यक्तित्व एक क्रांतिकारी के रूप उभर कर आता है। सामाजिक क्रिया पर दृष्टि डालने पर पता चलता है कि गांधी की यह क्रांतिकारी सोच अच्छी थी। अन्याय के विरूद्ध गांधीजी के अहिंसक तरीकों का प्रयोग मार्टिन लूथर ने अश्वेत लोगों के अधिकारों की लड़ाई में किया और जयप्रकाश नारायण ने अपने सम्पूर्ण क्रान्ति आंदोलन में किया।

गांधी के प्रयोगों में अनुशासन, आज्ञा व नियंत्रण, आत्मकष्ट सहन जैसे प्रयोग में लाये जाने वाले हथियार का यथोचित समय पर विशेष ध्यान दिया गया तथा भड़काऊ, उद्देश्यहीन व हिंसक तरीकों को नजर अंदाज किया गया।

जयप्रकाश नारायण ने इन तरीकों को अपनाते हुए स्पष्ट किया कि किसी क्रांतिकारी आंदोलन के दौरान उद्देश्य ठीक वही नहीं रहते जो उसके प्रारम्भ के दौर में रहते हैं। उस आंदोलित माहौल का लाभ लेते हुए सामाजिक सुधार या लाभ के मुद्दों को उसमें सम्मिलित कर लेना चाहिए। जयप्रकाश नारायण का मानना था कि सामाजिक परिवर्तन के लिए सामाजिक क्रिया के मुक़ाबले राजनीतिक क्रिया गौण है। कुछ क्रियाएँ जो व्यावसायिक संस्थाओं के दायरे से बाहर है किन्तु सामाजिक क्रिया से ज्यादा सुसंगत है सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण औज़ार के रूप में प्रयोग में लाई जाती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारत में बहुत से संघर्ष हुए जैसे बारगर दल आंदोलन, मछली–पालने वालों का आंदोलन, महिला आंदोलन, भूमि अधिकार के लिए भूमिहीन आदिवासी आंदोलन, मानवाधिकार आंदोलन एवं नागरिक अधिकार आंदोलन इत्यादि। इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय आंदोलन, भ्रष्टाचार आंदोलन इत्यादि। भ्रष्टाचार आंदोलन जो कि अन्ना हज़ारे के नेतृत्व मे लड़ा गया सामाजिक क्रिया का अच्छा उदाहरण रहा और यहाँ तक कि इसे सत्ता परिवर्तन के रूप में देखा गया क्योंकि आंदोलन के कुछ महीने बाद सरकार बदल गयी।

सामाजिक क्रिया समाज कार्य की एक स्वतंत्र-सहायक पद्धति के रूप में स्वीकृति पा चुकी है किन्तु इसका उपयोग व्यापक स्तर पर नहीं होता। इसका एक कारण तो यह है कि यह व्यापक परिवर्तन से संबन्धित है इसमें बड़ी शक्ति और सामर्थ्य की आवश्यकता होती है; दूसरे, इसके परिणामों के प्रति भी लोगों को काफी संदेह बना रहता है। आमतौर पर राजनीतिक या आर्थिक समूहों से संबन्धित क्रियाओं का प्रभाव इतना अधिक होता है कि बहुत कुछ सामाजिक मूल्यों की स्थिति नियंत्रित ही रहती है। कोई भी समाज हो उसमें परिवर्तन तो होते ही रहते है और प्रायः अनेक आवश्यकताएँ पूरे सामाजिक पैमाने पर महसूस की ही जाती रहती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक स्थिति लाना अन्य तरीकों के अतिरिक्त बहुत कुछ सामाजिक क्रिया से भी संभव होता है। समाज कार्य की यह पद्धति समाज- कार्य के दर्शन और सिद्धांतों द्वारा मान्यता प्राप्त जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना एवं विकास हेतु प्रयोग में लायी जाती है। आज के समाज के ऊँच-नीच, पिछड़े और विकसित तथा स्त्री और पुरुष के आधार पर जो भेद हैं, उनको मिटाना जनतांत्रिक कार्य है। अनुसूचित जातियाँ, आदम जातियाँ, श्रमिक, महिला, अशिक्षित, कृषक, विधवा, वेश्या, इत्यादि ऐसे वर्ग हैं जिनका सामान्य समाज में सामान्य रूप से सामंजस्य होना चाहिए।

सवर्णों या धनिक-वर्गों में आंशिक रूप में आज भी अछूतों या गरीबों के प्रति हेय भावना है जो दूर होनी चाहिए, शासन तंत्र और पद्धति के ऐसे अनेक दोष हैं जिनसे कि कुछ अत्यंत साधारण स्थिति के व्यक्ति अपनी आवाज या प्रार्थना सक्षम अधिकारी तक नहीं पहुंचा पाते। देश के एक बहुत बड़े तबके में आज भी अशिक्षा विद्यमान है और जीवन–यापन के लिए आवश्यक न्यूनतम साधनों की भी कमी है। इन सब सामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिए बहुत से प्रयत्न किए जाते रहें हैं और किए जा रहे हैं। ये प्रयत्न सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही स्तरों पर हैं। इन प्रयत्नों के बावजूद ये सामाजिक समस्याएँ, आज भी अत्यधिक व्यापक है और कुछ नई ऐसी व्यक्तिगत या पारिवारिक मूल्यगत समस्याएँ भी उपस्थित होती जा रही हैं जो कि औद्योगिक युग की देन हैं। इन सभी समस्याओं कोकानूनों द्वारा या जन चेतना द्वारा काफी हद तक दूर करने की कोशिश की जा सकती है। चाहे शासन द्वारा कानून के निर्माण और उसके परिपालन की बात हो या संबन्धित वर्गों और समुदायों के मध्य जनभावना, जन शक्ति या लोकशक्ति को विकसित करने, उनके अधिकाधिक उपयोग की बात हो, दोनों ही स्थितियों में सामाजिक क्रिया की पद्धति को प्रयोग में लाया जा सकता है और इसकी मदद से अनेक ऐसी सामाजिक समस्याओं जो कि नव जनतांत्रिक-मूल्यों के ढ़ाँचे से दूर हो, हल किया जा सकता है।

नए जनतांत्रिक मूल्यों के अंतर्गत सबको भोजन, आवास, वस्त्र, औषधि और शिक्षा की मूल आवश्यकताओं के साथ–साथ अभिव्यक्ति और सहज उपलब्ध साधनों का समान रूप से उपभोग करने की स्वतंत्रता और संभावना होनी चाहिए। ऐसी स्थिति हेतु वैयक्तिक स्तर पर वैयक्तिक कार्य, छोटे-छोटे समूहों के स्तर पर सामूहिक कार्य व समुदायों के स्तर पर सामुदायिक संगठन से संबन्धित कार्यइत्यादि द्वारा प्रयत्न किए जाते है। किन्तु आज इन प्रयत्नों से न तो इतना अधिक लाभ हीं हो पा रहा है कि पूरे समाज का स्वरूप बदलता हुआ नजर आए और न इन प्रयत्नों द्वारा व्यापक स्तर पर कथित जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना और संभावना ही हो सकती है।

वर्तमान युग जनतांत्रिक युग कहा जाता है और राज्य तथा समाज का दायित्वसामाजिक न्याय, समानता और स्वतंत्रता का है। समय की इस चुनौती का सामना तभी हो सकता है जबकि सामाजिक पैमाने पर इन मूल्यों की स्थापना की चेष्टा की जाए। कोई भी सामाजिक कार्यकर्ता इस कार्य को सामाजिक क्रिया के माध्यम से ही कर सकता है। सामाजिक क्रिया की पद्धति का उपयोग कर समाजगत परिवर्तन की अपेक्षा को पूरा करना चाहिए। जब राजकीय कानूनों के स्वरूप को मानवीय दृष्टिकोण से ओत प्रोत और परिवर्तित करने की आवश्यकता महसूस की जाती है तो इस हेतु सामाजिक क्रिया का सहारा लिया जाता है। सामाजिक कार्यकर्ता, सामाजिक संगठन, सामाजिक अभिकरण या इनके बड़े बड़े संगठन, इसके लिए आवाज उठाते हैं। जब ऐसी आवाजें उठानी होती है तो इसके लिए वे तमाम संबन्धित स्थितियों का अच्छी प्रकार अध्ययन और चिंतन करते हैं। अपना दृष्टिकोण और कार्यक्रम निश्चित कर लेने के उपरांत वे शासन के पदाधिकारियों, विधानसभा या लोकसभा के सदस्यों और संबन्धित क्षेत्रों के विशेषज्ञों से संपर्क करते हैं। यह संपर्क पत्राचार द्वारा, प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा तथा समाचार पत्रों में वक्तव्यों के माध्यम से हो सकता है। ये कार्य अलग-अलग भी किए जा सकते हैं और संयुक्त रूप से भी। कभी-कभी संबन्धित अधिकारियों के पास अपने प्रतिनिधि मण्डल को भेज कर भी ऐसा किया जा सकता है।

अभिकरण या सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक जरूरतों से अभिप्रेरित इन कार्यों में समाज के उस वर्ग और व्यक्तियों को भी सम्मिलित करते हैं जिन पर इसका प्रभाव होता है। चारों ओर से विशेष सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता और उसकी आवाज उठाने पर ही यह ज्यादा संभव होता है कि समाज के अन्य समूह संबन्धित अधिकारी और संबन्धित शासन या सरकार भी इसका एहसास करे। इस एहसास के फलस्वरूप सरकारें ऐसी समितियाँ बना सकती हैं जो कि संबन्धित स्थिति की जांच-पड़ताल करके उसके पास अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करें। कई बार बिना इन समितियों के प्रतिवेदनों के भी सरकारें ध्यान देती है और विचार विनिमय करके अपना कदम निश्चित करती हैं। जब तक अपेक्षित सामाजिक परिवर्तन हेतु नियम-कानून संशोधन या निर्माण नहीं हो जाता अथवा उसके लिए आवश्यक अन्य व्यवस्थाएँ नहीं कर दी जाती तब तक सामाजिक क्रिया के ये प्रयत्न जारी रखे जाते हैं। जब समाज में व्यक्तियों के व्यवहारों को जनतांत्रिक मोड़ देने होते हैं तो सामाजिक क्रिया की मदद ली जाती है।

आज हमारे देश मे जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना होती हुई दिख रही है और इसको अधिक से अधिक व्यापक स्तर पर स्थापित करना बाकी है। इसके लिए व्यापक स्तर पर इन मूल्यों की आवश्यकता को समझना है और ऐसी जन-जागृति तथा जन-चेतना को बढ़ाना है, जिससे कि व्यापक जन समुदाय इन्हें आत्मसात कर सके। जब ऐसे मूल्यों को व्यापक पैमाने पर व्यक्तियों और समुदायों को ग्रहण या आत्मसातकरना या कराया जाना होता है तो इसके लिए सामाजिक क्रिया की मदद बहुत ही उपयोगी होती है। जनजागृति या जनचेतना द्वारा मूल्यगत, सामाजिक परिवर्तनों की अभिलाषा तृप्ति हेतु व्यवहारगत, सामाजिक चेष्टा या क्रिया के पूर्व, सभी संभावनाओं और शक्तियों का समुचित मूल्यांकन, अनुमान और ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक होता है। समाज में अनेक व्यक्तियों और वर्गों द्वारा अनेक सामाजिक प्रक्रियाओं का एक साथ ही प्रयोग होता रहता है। हम जानतेहैं कि सामाजिक प्रक्रियाएं जहाँ एक ओर विधायी होती है वहीं दूसरी ओर अन्य बहुत सी प्रक्रियाएं विघटनकारी भी होतीं हैं। विधायी प्रक्रियाओं का उपयोग करके सामाजिक क्रिया की गति को तीव्र करना चाहिए और विघटनकारी प्रक्रियाओं पर सतर्क दृष्टि रख कर उनसे बचाव के उपाय भी करते रहना आवश्यक होता है।

जन भावनाओं में परिवर्तन द्वारा सामाजिक मान्यताओंया मूल्यों के स्वरूप में परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि उसके अनुसार जन शिक्षा के कार्यक्रम चलाए जाएँ। यहाँ जन शिक्षा का अर्थ यहहै कि जो भी रूढ़िगत मूल्य या परम्पराएँ हों, उनकी आवश्यकता और हानिकारक स्थिति का वैचारिक स्तर पर आम लोगों को

एहसास कराया जाय और जो अपेक्षित परिवर्तन या मूल्य अथवा मान्यता हो उसकी आवश्यकता और संभावना समझायी और दर्शायी जाय। ऐसा करने के लिए समुदाय या समूह के व्यक्तियों में आवश्यक प्रचार किया जाता है और समाज के भौतिक और मानवीय साधनों का उपयोग किया जाता है, ऐसा करने से सारा कार्यक्रम जनता को अपना कार्यक्रम मालूम होता है। जनतंत्र के लिए यह आवश्यक शर्त भी पूरी होती है कि जो भी कार्य हो वे न मात्र जनता के लिए हो वरन जनता द्वारा भी हो। जनतंत्र का यह सिद्धांत समाज कार्य का भी एक सिद्धांत है और समाजकार्य में भागीदारी को अत्यधिक महत्व दिया जाता है और इसकी बड़ी उपयोगिता समझी जाती है। सामाजिक क्रिया उतनी ही सबल और सार्थक हो सकती है जितना की अधिक जन सहयोग और जन भागीदारी कि उपस्थिति होगी। जनता के विचारों में परिवर्तन के लिए जन-जन में प्रेम, सौहार्द और आस्था भी होना जरूरी है। यह प्रेम और आस्था जितनी ही अधिक होती है उतनी ही अधिक सफलता की स्थिति होती है।

सामाजिक कार्यकर्ता, अभिकरण या संस्थाओं को इनकी उपस्थिति और वृद्धिकी चेष्टा में संलग्न होना चाहिए। जब समस्या स्वयं की अनुभूति होती है और उसके निराकरण के उपाय स्वयं ही तैयार किए जाते है तो कार्य में दिलचस्पी ज्यादा स्वाभाविक तौर पर होती है। सामाजिक क्रिया के दौरान इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि सेवार्थी तथा जन समुदाय के प्रयत्नों के दौरान ऐसी चेष्टा होनी चाहिए जिससे कि ज्यादा से ज्यादा ऐसा मालूम हो कि सारे क्रिया-कलाप जन समुदाय के स्वयं के ही हैं।

1.7 सामाजिक क्रिया के संदर्भ में दुर्खीम, परेटो, वेबर और पारसन्स के विचार

दुर्खीम - दुर्खीम सदैव ही सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में सामाजिक व्याख्या देते रहे हैं। वे सामाजिक तथ्यों, घटनाओं, क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं के मूल रूप में समाज को ही स्वीकार करते हैं। सामाजिक क्रियाओं का जन्म व्यक्तिगत, उपयोगिता के कारण नहीं वरन् सामूहिक प्रतिनिधित्व (Collective Representation) के कारण होता है और यह भी सामाजिक तथ्यों का ही अंग हैं। सामूहिक प्रतिनिधित्व सामूहिक चेतना की उपज है। अनेक व्यक्तियों के सम्मिलन एवं पारस्परिक प्रभाव तथा अंतःक्रिया करने से व्यक्तिगत विचार के स्थान पर सामूहिक विचार जन्म लेते हैं जिन्हें समूह के सभी व्यक्ति स्वीकार करते हैं। ये विचार धाराएं एवं भावनाएं सारे समूह का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके पीछे सारे समूह की स्वीकृति एवं शक्ति होती है, कोई भी उनके उल्लंघन का साहस नहीं करता। ये सामूहिक प्रतिनिधित्व ही व्यक्ति की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार सामाजिक क्रिया सामाजिक कारकों का ही प्रतिफल है।

दुर्खीम ने इसे स्पष्ट करने के लिए धार्मिक कार्यों का उल्लेख किया है। दुर्खीम का कहना है कि धार्मिक क्रिया सामाजिक क्रिया है जिसका जन्म समाज के कारण ही हुआ है। धर्म का उद्भव, सामूहिक उत्तेजना के कारण होता है। त्यौहारों, उत्सवों आदि के समय, जब एक समूह या समुदाय के लोग एकत्रित होते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति को यह महसूस होता है कि समूह की शक्ति उसकी शक्ति से श्रेष्ठ और महान है। इससे व्यक्ति के मन में, समूह के प्रति भय, श्रद्धा, प्रेम एवं भक्ति की भावना पैदा होती है, समूह जिसे श्रेष्ठ एवं पवित्र मानता है, व्यक्ति भी उसे श्रेष्ठ एवं पवित्र मानकर उसकी पूजा व आराधना करने लगता है इससे धर्म का जन्म होता है। इस प्रकार धर्म की उत्पत्ति के लिए समाज ही उत्तरदायी है। अन्य सामाजिक क्रियाओं जैसे अपराध, आत्महत्या, श्रम विभाजन, अनुबंध आदि के लिए भी समाज ही उत्तरदायी है। ये सामाजिक तथ्य है और इनके निर्धारण में समाज ही मूल रूप से उत्तरदायी है।

मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक '*द थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड एकोनॉमिक आर्गेनाइजेशन*' में सामाजिक क्रिया की अवधारणा को रखने से पहले समाजशास्त्र को परिभाषित किया था। वेबर कहते हैं कि *''समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो*

सामाजिक व्यवहार का निर्वचनात्मक अध्ययन करता है और ऐसा करने में, वह इस तथ्य की व्याख्या करता है कि सामाजिक क्रिया के कौन-कौन से क्षेत्र हैं और यह कैसे होती है और इसके परिणाम क्या निकलते हैं''? जब वेबर समाजशास्त्र की व्याख्या सामाजिक व्यवहार से करते हैं तो उनका तात्पर्य सामाजिक क्रिया से है।

वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया -

वह सम्पूर्ण मानव व्यवहार जिसके साथ व्यक्ति परक अर्थ लगाया जाता है सामाजिक क्रिया है। इस अर्थ में क्रिया प्रत्यक्ष हो सकती है, विरोधी हो सकती है या व्यक्ति परक हो सकती है। किसी भी दशा में क्रिया, संचारात्मक निर्वचन कर सकती है। जानबूझ कर इस तरह के किसी निर्वचन न करने पर भी इसके साथ व्यक्ति परक अर्थ लग जाता है तो यह हर प्रकार से सामाजिक क्रिया है। पारसंस ने *''द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन (1937)''* में वेबर की सामाजिक क्रिया की व्याख्या व्यावहारिक सिद्धांत के संबंध मेंकी है। जब वेबर समाज शास्त्र में सिद्धांत निर्माण की चर्चा करते हैं तो उनका सामाजिक क्रिया की अवधारणा का प्रारंभिक बिंदु क्रिया है। पारसंस वेबर द्वारा दी गयी परिभाषा को निम्न प्रकार से रखते हैं - *"हम किसी भी मानव, अभिवृत्ति या गतिविधि को क्रिया कहते हैं जब तक इसमें कर्ता किसी तरह के व्यक्ति परक अर्थ को लगाता है"।*

सामाजिक क्रिया में व्यक्ति परक समझ का होना आवश्यक है, व्यक्ति जो अर्थ लगाता है उस अर्थ का निर्वचन या समझ उसको होता/होती है। जब तक मानव व्यवहार को इस तरह के व्यक्तिपरक बिन्दु से देखा नहीं जाता है वह क्रिया की श्रेणी में नहीं आता इसलिए वेबर इसे व्यवस्थित समाजशास्त्रीय सिद्धांत में सम्मिलित नहीं करते। वेबर ने व्यक्तिपरक अर्थ के साथ उद्देश्य और मूल्यों को भी जोड़ा है। कोई भी क्रिया जिसे कर्ता संपन्न करता है उद्देश्य प्राप्ति के लिए होती है। यह उद्देश्य भी विवेकपूर्ण होता है। इसके साथ ही मूल्यभी जुड़े होते है। सामाजिक क्रिया का दूसरा अर्थ सामाजिक संबंधों के साथ भी जोड़ा जाता है। वेबर ने सामाजिक क्रिया व सामाजिक संबंध इन दोनों अवधारणाओं को पर्यायवाची की तरह लिया है।

वेबर ने सामाजिक क्रिया के चार प्रारूप बताये हैं जो कि सामाजिक क्रिया का आदर्श प्रारूप है:

1. उद्देश्य से जुड़ी क्रिया- वेबर का कहना है कि सामाजिक क्रिया का पहला प्रकार, व्यक्ति के व्यवहार का विवेकपूर्ण होना है लेकिन यह विवेक लक्ष्य प्राप्ति के साधन के रूप में प्रयोग में आता है। व्यक्ति एक बार क्रिया करने से पहले अपना लक्ष्य निर्धारित कर लेता है इसके बाद वह उन साधनों को निश्चित करता है जो तार्किक है और लक्ष्य प्राप्ति के लिए उपयुक्त है। परन्तु स्थिति यह है कि लक्ष्य निर्धारित हो जाने के बाद कर्ता उपलब्ध साधनों में से तार्किक रूप से उन साधनों को अपनाता है जो लक्ष्य प्राप्ति के कारण हो सकते हैं।

2. मूल्य से जुड़ी तार्किक क्रिया- यह वह क्रिया है जिसमें व्यक्ति अपनी लक्ष्य प्राप्ति मूल्यों के आधार पर करता है। जब कोई व्यक्ति लक्ष्य प्राप्ति में मूल्यों को लगाता है और क्रिया तार्किक होती है तो वेबर इसे मूल्य अभिस्थापित तार्किक क्रिया कहते हैं। यहाँ वेबर ने साध्य-साधन की चर्चा की है, कर्ता साध्य का निर्धारण विवेक पूर्ण तर्क से करता है। इस साध्य को प्राप्त करने के लिए जिन साधनों को कर्ता अपनाता है, वे भी निश्चित सामाजिक मूल्योंसे जुड़े होते हैं।

3. अनुभवात्मक या संवेगात्मक क्रिया – अनुभवात्मक क्रिया सम्पूर्ण रूप से मनोदशा से जुड़ी होती है। इसमें मूल्य या लक्ष्य का निर्धारण नहीं होता है। व्यक्ति ऐसी क्रिया करने में भावुक एवं संवेगात्मक हो जाता है इसके पीछे कोई तर्क नहीं होता।

4. परंपरागत क्रिया – परम्परागत क्रिया के पीछे परम्परा, रीति-रिवाज, विश्वास आदि होते हैं न तो इनमें उद्देश्य होते हैं और न ही इनके पीछे तर्क या मूल्य होते हैं। इस क्रिया में जहाँ लक्ष्य और मूल्य नहीं होते वहीं किसी प्रकार की भावुकता और संवेग भी नहीं होते।

टालकॉट पारसंस का सामाजिक क्रिया सिद्धांत– पारसंस ने '*"द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन (1937)"* में तथा *'टू वर्ड्स ए थ्योरी ऑफ सोशल एक्शन'(1951)* में यह स्थापित किया है कि सामाजिक क्रिया सिद्धांत वस्तुत: एक स्वैच्छिक क्रिया का सिद्धांत है, स्वैच्छिक इसलिए कि कर्ता अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उपलब्ध विकल्पों में से जो कुछ उसे सही दिखाई देता है, ग्रहण कर लेता है। इस तरह का सामाजिक क्रिया का स्वैच्छिक सिद्धांत उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद व आदर्शवाद को अपने अन्दर समेट लेता है।

पारसंस कहते हैं कि सामाजिक क्रिया अर्थपूर्ण कोटि हैक्योंकि क्रिया के करने में जो अर्थ होता है उसे कर्ता स्वयं परिभाषित करता है।

सामाजिक क्रिया को परिभाषित करते हुए पारसंस कहते हैं कि सामाजिक क्रिया वह गतिविधि है, जिसका उद्देश्य किसी न किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। जब व्यक्ति किसी गतिविधि को करता है तो इसके लिए उसे शरीर की ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। कर्ता हंसता है, गाता है, चलता है, इन सभी में कम या ज्यादा ऊर्जा तो खर्च होती है लेकिन यदि यह गतिविधि समाप्त हो जाती है तो ऊर्जा के अतिरिक्त कर्ता को और कुछ खर्च नहीं करना पड़ता, लेकिन इस गतिविधि के पीछे लक्ष्यों की प्राप्ति होती है तो ऐसी गतिविधि, सामाजिक क्रिया कहलाती है । गतिविधि में लक्ष्य प्राप्ति जोड़ दी जाती है तो यह सामाजिक क्रिया हो जाती है-

सामाजिक क्रिया = गतिविधि + लक्ष्य ।

क्रिया के अभिप्रेरण के प्रकार – पारसंस का कहना है कि, किसी भी सामाजिक क्रिया को करने के लिए कई कारकों पर विचार करना पड़ता है मनुष्य मुख्य रूप से क्रिया के पीछे जो अभिप्रेरक होते हैं उन्हें देखता है। पारसंस ने अभिप्रेरकों *के तीन प्रकार* बताए हैं :

1. **संज्ञानात्मक अभिप्रेरण (Cognative motivation)-** यह अभिप्रेरण केवल क्रिया से संबंधित सूचनाएं ही कर्ता को देता है।
2. **कैथेटिक अभिप्रेरण(**Cathetic Motivation**)-** इसके अंतर्गत वैसे अभिप्रेरक आते हैं जिनके साथ कर्ता का संवेगात्मक जुड़ाव होता है।
3. **मूल्यांकन अभिप्रेरण (Evolution Motivation)**- इन अभिप्रेरणाओं में कर्ता मूल्यांकनात्मक दृष्टि से देखता है, कि वह जिस क्रिया को कर रहा है, उससे कितना लाभ मिलेगा ?

कर्ता सामाजिक क्रिया को करने से पहले क्रिया से जुड़े मूल्योंको भी देखता है। वेबर ने सामाजिक क्रिया के प्रकारों में एक प्रकार के रूप में मूल्यों से जुड़ी तार्किक क्रिया को भी बताया है।

कर्ता के ऊपर उसके व्यक्तिगत और सामूहिक मूल्योंका दबाव बना रहता है। कर्ता के ये मूल्य निम्न प्रकार हैं–

1. संज्ञानात्मक मूल्य 2. प्रशंसात्मक मूल्य 3. नैतिक मूल्य

संज्ञानात्मक मूल्य में व्यक्ति क्रिया के स्तर का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करता है। प्रशंसात्मक मूल्य वे मूल्य है जिनके लिए व्यक्ति समूह व समाज प्रशंसा करते हैं। नैतिक मूल्योंका संबंध नैतिकता से जुड़ा होता है।

पारसंस ने सिद्धांतीकरण की तीनों मुख्यधाराओं उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद और आदर्शवाद का संश्लेषण किया है साथ ही उन्होंने सामाजिक क्रिया को अवधारणाओं के परिवेश में बांध दिया है। क्रियाका उद्देश्य किन्हीं निश्चित अवस्थाओं या दशाओं में लक्ष्यप्राप्त करना है। इसमें अभिप्रेरणा और मूल्य दोनों महत्वपूर्ण होते हैं।

पारसंस का सामाजिक क्रिया सिद्धांत कई विचारधाराओं का संश्लेषण है। इसका मुख्य आधार कर्ता या सामूहिकता है, क्रिया के पीछे निश्चित अभिप्रेरणा व मूल्य होते हैं। कर्ता के द्वारा की गई इन क्रियाओं को किसी भी

व्यवस्था के संदर्भ में पारसंस यूनिटएक्टस कहते हैं और ये यूनिट एक्टस मिलकर सामाजिक व्यवस्था के बुनियादी आधार को तैयार करते हैं।

पैरेटो का विचार - पैरेटो का सामाजिक क्रिया सिद्धांत अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल से जुड़ा था। मार्शल का कहना है कि समाज का विकास रेखीय होता है। मार्शल की पीढ़ी के सभी विचारक रेखीय उद्विकास को समाज विज्ञान का अग्रणी सिद्धांत मानते थे लेकिन पैरेटो ने इस सिद्धांत को नहीं माना तथा कहा कि समाज का उद्विकास रेखीय न होकर चक्रीय क्रम से चलता है। इसलिए उन्होंने चक्रीय सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि समाज रेखीय तरीके से नहीं बदलता बल्कि समाज एक युग में पहुँचता है, यह युग गुजर जाता है, नया युग आता है यह बदल जाता है तथा एक ऐसी अवस्था आती है कि समाज जिस मुकाम से चला था वापस उसी मुकाम पर लौट आता है।

पैरेटो ने तार्किक एवं अतार्किक दो प्रकार की क्रियाओं काउल्लेख किया है। पैरेटो का मानना है कि अतार्किक व्यवहार विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।पैरेटो के अनुसार तार्किक क्रियाओं काआधार वैषयिक (Objective) है और अतार्किक क्रियाओं का प्रतीतिक(Subjective)। पैरेटो प्रत्येक व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रिया के दो आधार मानते हैं- *लक्ष्य* और *साधन*। प्रत्येक लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुछ साधन अपनाए जाते हैं तार्किक क्रिया में कर्ता लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, ऐसे साधन अपनाता है जो अनुभव सिद्ध (Empirical) एवं तर्क की कसौटी पर खरे उतरते हों। तार्किक क्रिया में लक्ष्य एवं साधन में सामंजस्य पाया जाता है, ऐसे तार्किक कार्यों को ही वैषयिक कार्य कहते हैं, इसके प्रतिकूल अतार्किक क्रिया में लक्ष्य और साधन के बीच सामंजस्य नहीं पाया जाता और न ही उन्हें तर्क के आधार पर प्रमाणित किया जाता है। अतार्किक क्रियाएं प्रतीतिक (Subjective) होती है। भावनात्मक अंश बहुलता से पाया जाता है। तार्किकता का प्रयोग विज्ञान में किया जाता है जबकि अतार्किक क्रियाएं कल्पना और अनुमान पर आधारित होती है। अतार्किक क्रिया का लक्ष्य व साधन में मेल नहीं होता है। मानवीय क्रिया का रूप तार्किक और अतार्किक दोनों हो सकता है। मनुष्य के सामने तार्किक एवं अतार्किक क्रिया से संबंधित तीन प्रकार की समस्याएं उभर सकती है :

(1) लक्ष्य व्यक्तिगत एवं सामाजिक हो सकते हैं। लक्ष्यों के ज्ञान के अभाव में साधन को तार्किक एवं अतार्किक समझना एक कठिन कार्य है।

(2) जब लक्ष्य का संबंध पारलौकिक हो तब तो यह जानना कठिन कार्य हो जाता है कि लक्ष्यव साधन के बीच उचित संबंध है यानहीं।

(3) उचित तथा अनुचित कार्यों का पता लगाना भी एक कठिन कार्य है क्योंकि एक कार्य जो एक समय में एक व्यक्ति के लिए उचित तो दूसरे व्यक्ति के लिए अनुचित हो सकता है।

उपरोक्त समस्याओं के कारण ही मानवीय समाज में अतार्किक क्रियाओं की प्रधानता रही है और समाजका अस्तित्व भी उसी पर निर्भर करता है । मानव में अतार्किक क्रिया के उत्पन्न होने के कई कारणों को पैरेटो ने बताया है वे इस प्रकार हैं -

1. मूल प्रवृत्तियां (Instincts) 2. चालक (Residues) 3. स्वार्थ (Interests) 4. मनोभाव (Sentiments) 5. भ्रांततर्क (Derivation)

इन उपरोक्त कारकों में भ्रांत-तर्क और चालक को मनुष्य ज्यादा महत्व देता है। चालक अपेक्षाकृत स्थायी व्यवहार को जन्म देते हैं। मूल प्रवृत्तियां एवं मनोभाव भी चालक के ही विशेष रूप हैं चालकों के माध्यम से मूल प्रवृत्तियों एवं भावनाओं कीअभिव्यक्ति होती है। भ्रांततर्क के द्वारा व्यक्ति, अपनी क्रियाओं के औचित्यको सिद्ध करके और अपने व्यवहार के असली प्रयोजन को छुपाने का प्रयास करता है।

1.8 सामाजिक क्रिया पूर्वावलोकन

सामाजिक परिवर्तन का एक अत्यंत शक्तिशाली उपकरण होने के बावजूद आज तक कई दशक बीत जाने के बाद भी सामाजिक क्रिया को समाजकार्य की शिक्षाओं के साथ समाज कार्य केअभ्यास में पर्याप्त जगह नहीं मिल सकी है। 1970 के दशक से समाज कार्य के शिक्षाशास्त्री सामाजिक विकास के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में सामाजिक क्रिया को देखने लगे। सामाजिक क्रिया की प्रासंगिकता तब बढ़ी जब अधिकारिता की विचारधारा ने गति पकड़ी। सामाजिक रूप से प्रासंगिक कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं का क्रियान्वयन जब हाथ में लिया गया तो नियोजन के तरीके में अद्वितीय बदलाव आया। शुरूआती दौर में नीति निर्माताओं तथा नियोजकों ने लोगों की समस्याओं तथा जरूरतों को ध्यान में रखते हुए जमीनी स्तर पर इनके लिए योजना बनाई। 73 वें और 74 वें संविधान संशोधन द्वारा जमीनी स्तर के लोग भी ग्राम सभा के लिए चयनित किए गए। तथा उन्होंने संसाधनों की जवाबदेही, पारदर्शिता तथा न्यायोचित उपयोग को संभव बनाया। वर्तमान में अगर हम पंचायती राज व्यवस्था का मूल्यांकन करे तो आभास होता है कि पंचायती राज व्यवस्था भी केवल कागज पर ही सफल हो पाई है। लेकिन संरचनात्मक दृष्टि से यह ठोस व्यवस्था मानी जा सकती है जिसे सामाजिक क्रिया की मध्यस्थता की सबसे अधिक आवश्यकता है क्योंकि सामाजिक क्रिया को प्रभावी बनाने के लिए लोगों की सक्रिय भागीदारी की जरूरत है।

समाजकार्य की विचारधारा की समृद्ध, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होने के वाबजूद इसको वास्तविक स्थान नहीं मिल सका है। अधिकांश शिक्षण संस्थामें समाजकार्य अभ्यास का प्रशिक्षण इस प्रकार से तैयार नहीं किया जाता कि विद्यार्थी समुदाय में आवश्यक समय व्यतीत कर संसाधनों को संचालित कर अपनी प्रतिष्ठाबना सकें। इन कठिनाईयों की वजह से छात्र इन मुद्दों को नहीं उठाते है यही कारण है कि प्रशिक्षुओं में सामाजिक क्रिया के लिए आवश्यक कौशलों का विकास नहीं हो पाता है। आज भी अनेक गैर-सरकारी संस्थाओं को धन के लिए अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों तथा सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है। इन एजेंसियों द्वारा वित्त प्रदान करने के लिए भी दिशा निर्देश बने होते हैं। ये संस्थाएँ उन कठोर मुद्दों के लिये धन नही देते है जिनमें सामाजिक क्रिया की आवश्यकता होती है इसके अतिरिक्त व्यावसायिक कार्यकर्ता अपने को इतने प्रेरित नहीं मानते जिससे समाज में समय और ऊर्जा का अंशदान कर सकें। लेकिन स्वयं सहायता की भी अपनी सीमाएँ होती है जो कभी-कभी आंतरिक रूप से होती है। अंततः हम कह सकते हैं कि सामाजिक क्रिया को करना बहुत कठिन होता है। इसके लिए कुछ कौशलों तथा निपुणता जैसे सम्प्रेषण में निपुणता, संरक्षण सामाजिक-आर्थिक स्थिति का विश्लेषण लोगों को एकत्रित करने की योग्यता अपनी बात मनवाने के लिए क्षमता, धरना, भूख हड़ताल आदि रणनीतीयों के इस्तेमाल की योग्यता आवश्यक होती है। जो प्रत्येक के बस की बात नहीं हैं । ऐसे संकटों का सामना करना प्रत्येक व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता के लिए आसान नहीं है।

तीसरी दुनिया के देशों में कल्याणकारी विचारधारा की प्रमुखता है क्योंकि धार्मिक दायित्व तथा परोपकार समाज कार्य के शुरूआत के बिन्दु है। आम सहमति के लिए इस संदर्भ में अधिकारितावादी दृष्टिकोण अपनाना आसान काम नहीं है। सामाजिक क्रिया की आवश्यकता प्राथमिक विधि के रूप में, अधिक से अधिक लोगों के विकास के लिए, आवश्यक रूप से समाज सेवाओं को उन लोगों तक सुगमता से पहुंचाने के लिए होगी सामाजिक क्रिया का यह दुर्भाग्य है कि आज भी इस पर ज्यादा लिखित साम्रगी नहीं बन पाई है। प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ताओं को सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया के लिए इसके लक्ष्यों तथा उद्देश्यों, विचारधारा और अवधारणात्मक ढ़ाँचा तथा विश्वास की व्यवस्था को स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है। सामाजिक क्रिया के लिए एक ऐसे सैद्धांतिक प्रबंध तथा दृष्टिकोण

का निर्माण करना जरूरी हो जाता है जो ज्ञान सम्प्रेषण तथा विभिन्न सामाजिक क्रिया अभ्यासों तथा संस्थानीकरण के प्रक्रिया में नई दृष्टि पर आधारित हो।

फिर भी हम कह सकते है कि सामाजिक क्रिया समाज कार्य व्यवसाय के सबसे चुनौती पूर्ण विधि के रूप में कार्य करती है तथा यह विभिन्न विवादों के घेरे में रहती है। सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया को अगर हम देखें तो कह सकते है कि यह बहुत बड़े पैमाने पर सांस्कृतिक लोकाचारों तथा आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक संदर्भों द्वारा रची जाती है। सामाजिक क्रिया में राजनैतिक तथा नैतिक दोनों विचारधारायें सम्मिलित होती है। इतना सब होने के बावजूद भी अगर हम सामाजिक क्रिया का मूल्यांकन करते तो पाते हैं कि आज भी इसके अभ्यास से न तो हमारे सामाजिक संरचना या ऐसे समस्याओं जैसेभ्रष्टाचार, बाल श्रम, महिलाओं परअत्याचार एवं इनका शोषण, निरक्षरता बेरोजगारी इत्यादि में व्यापक बदलाव नहीं आ सका है। इसका एकमात्र और वृहद कारण, सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा अपनी भूमिका को सीमित कर लेने से है तथा ये मुट्ठी भरसमाज कार्यकर्ता, समाजकार्य व्यवसाय के माध्यम से परितर्वन के वाहक बनने की लगातार कोशिश में हैं।

अगर हम भारत में सामाजिक क्रिया की बात करते हैं तो भारत में स्वतंत्रता से पहले या बाद में जितने भी परिवर्तन हुए हैं ये परिवर्तन गैरसामाजिक कार्यकर्ताओं के जरिए किए गए हैं। ऐसे गैर-सामाजिक कार्यकर्ताओं के पास न तो कभी समाज कार्य की पृष्ठभूमि, उसका सैद्धांतिक फ्रेम वर्क, विशेषज्ञता तथा कौशल रहा। उनके पास सिर्फ अगर कुछ था तो परिवर्तन के प्रति प्रतिबद्धता, दृढ़ता, विश्वास, सामाजिक मुद्दों की समझ एवं साहस की जरूरत थी।

1.9 सारांश

सामाजिक क्रिया, समाज कार्य अभ्यास की सबसे विवादास्पद, चुनौतीपूर्ण तथा शक्तिशाली विधि है। जिसका प्रयोग सामाजिक व्यवसाय में संरचनात्मक परिवर्तन लाने के लिए किया जाता है। इसकी समझ मानवाधिकार से प्रेरित है तथा यह समानता, स्वतन्त्रता और बधुत्व की भावना के साथ, पुर्नवितरण एवं न्याय के रास्ते अधिकारिता की प्रक्रिया द्वारा उपयोग में लायी जाती है। सामाजिक क्रिया के द्वारा विभिन्न सामाजिक समस्याओं जैसे गरीबी, शोषण, अपराध, पर्यावरण संबंधीमुद्दे, बालश्रम, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, बंधुओ मजदूर, महिला अधिकार हनन इत्यादि को समाप्त किया जा सकता है। सामाजिक क्रिया का मुख्य उद्देश्य सामाजिक समस्याओं के प्रति जनता में जागरूकता लाना, अविकसित समूहों के विकास के लिए आवश्यक सेवाओं की माँग करना, स्वास्थ्य एवं कल्याण के क्षेत्र को बढ़ावा देना है। इसमें विभिन्न प्रकार के आंदोलनों तथा गांधीजी द्वारा चलाए गए राजनीतिक एवं सामाजिक संघर्ष का अध्ययन करते हुए, सामाजिक क्रिया के इतिहास तथा उसकी प्रासंगिकता की चर्चा की गई है। सामाजिक क्रिया के क्षेत्र इतिहास एवं प्रासंगिकता की चर्चा मेंहमने यह पाया कि वर्तमान विश्व के समसामयिक एवं विकास संबंधी मुद्दों को सामाजिक क्रिया के जरिए आसानी से सुलझाया जा सकता है।

1.10 बोध प्रश्न :-

1. सामाजिक क्रिया के अर्थ को स्पष्ट करें।
2. सामाजिक क्रिया के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझाते हुए वर्तमान संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता को स्पष्ट करें।
3. मैक्स वेबर के सामाजिक क्रिया सिद्धांत को समझाइए।
4. टाल्काट पारसंस एवं परेटो के सामाजिक क्रिया सिद्धांत की तुलनात्मक व्याख्या करें।

1.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ-

1. अहमद, मिर्जा रफीउद्दीन (1967): *समाजकार्य दर्शन एवं प्रणालियाँ.* लखनऊ : ब्रिटिश बुक डिपो।

2. दोषी एस.एल. एवं त्रिवेदी एम.एस.(2013) : *उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन।
3. सिंह, सुरेन्द्र एवं मिश्र पीडी. (2010) : *समाजकार्य इतिहास दर्शन एवं प्रणालियाँ.* लखनऊ : न्यू रॉयल बुक कंपनी।
4. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.(2007) : *समाजकार्य*, लखनऊ : रैपिड बुक सर्विस ।
5. गुप्ता, एम एल .एवं शर्मा,डीडी.(1998):समाजशास्त्र,आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन
6. इग्नू ,*एम एस डब्ल्यू 003* सामुदायिक विकास के लिए समुदाय संगठन का प्रबंधन,नई दिल्ली : इग्नू।
7. Siddiqui, H.Y. (1984) : *Social Work and Social Action*. New Delhi : Harnam Publication.
8. Arthur, Hillman (1954) : *Community Organization and Planning.* New York : Macmillan Company.
9. Moorthy, M.V. (1966) : *Social Action*, Mumbai : Asia Publishing House.
10. Samuel John (2000) : *Social Action : An Indian Panorama* New Delhi :Voluntary Action Network India.
11. Singh, Surendra (1986) : *Horizons of Social Work* (Edited) By Surendra Sing and K.S. Soodan. Lucknow: Jyotsana publication
12. Davis, Martin (2000) : *The Blackwell Encyclopedia of Social Work* (Edited) Massachusetts : Blackwell Publication.
13. Friedlander, Walter. A. (1977) : *Introduction to Social Welfare.* New Jersey : Prentice Hall.
14. Foran, J. (2003) : *The Future of Revolutions*. London : Zed Books.
15. D. Paul Chowdhry (1964) : *Introduction to Social work History Concepts methods And Fields*. Delhi : Atma Ram and Sons.
16. Pathak S.H. (1971) *: Social Welfare and Family Planning*. New Delhi: Planning Commission GoI
17. Ogburn & Nimkoff (1957) : *A Hand Book of Sociology.* London : Rutledge and Kegan pall Limited.
18. Aptheker Herbert (1941) : *Basic Concepts in Social Work*. North Carolina : Press Chappel Hill.

इकाई – 2
सामाजिक क्रिया के मॉडल

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 अभिजातवादी सामाजिक क्रिया मॉडल
2.3 लोकप्रिय सामाजिक क्रिया मॉडल
2.4 संस्थागत तथा गैर-संस्थागत मॉडल
2.5 सामाजिक क्रिया का गांधीवादी मॉडल
2.6 सारांश
2.7 बोध प्रश्न
2.8 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप –

1. सामाजिक क्रिया के मॉडल का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
2. सामाजिक क्रिया के विभिन्न मॉडलों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. सामाजिक क्रिया के विभिन्न मॉडलों में विभेदकर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

समाज के वैसे लोग जो समाज में अपनी जिन्दगी जी पाने में असमर्थ है वे अपने अधिकारों के बारे में सोच नहीं सकते जिन्होंने अपने आप को परिस्थितियों का दास बना लिया है। इन बाध्यकारी स्थितियों पर सामाजिक क्रिया रोक लगा सकती है। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में सामाजिक क्रिया के इतिहास एवं प्रासंगिकता में सामाजिक क्रिया के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझते हुए देखा था कि सामाजिक क्रिया के लिए समाज के प्रगतिशील लोग दबे, कुचले एवं अक्षम वर्गों के लिए आवाज उठाते हैं। सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए व्यक्तियों को संचालित करते हैं तथा इस व्यवस्था को संचालित करने के लिए किसी विशेष कार्य पद्धति, शैली आदि की आवश्यकता होती है ठीक इसी प्रकार सामाजिक क्रिया को संचालित करने के लिए सामाजिक क्रिया के मॉडल की आवश्यकता पड़ती है।

सामाजिक क्रिया के अनेक मॉडल हैं। अगर हम सामाजिक क्रिया के मॉडल का शाब्दिक अर्थ निकालें तो इसका अर्थ शैली अथवा पद्धति से होता है अथवा किसी विशेष काम को करने की कार्य विधि से होता है जिसे दोहराया जा सकता है। सामाजिक क्रिया के मॉडल का अर्थ होता है ऐसी विशिष्ट प्रक्रिया जिसमें किसी विशेष अवस्थाओं और विशेषताओं कोचिह्नित कर निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना अर्थात दूसरे शब्दों में हम कहें तो सामाजिक क्रिया मॉडल का अर्थ इस प्रकार हो सकता है- सामाजिक क्रिया अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कई निश्चित तरीके या कार्य विधि अपनाती है।

सामाजिक क्रिया के मॉडल के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपने अलग-अलग मॉडल प्रस्तुत किए है। कुछ मॉडल सामाजिक क्रिया को एक प्रविधि के रूप में स्थापित करते है। गाँधीयन एवं अतिवादी प्रारूप वाले चिन्तक लोकतंत्र एवं लोकशक्ति में विश्वास रखते हैं। किसी भी समाज में पूर्ण परिवर्तन केवल अतिवादी सुधार, हिंसात्मक अथवा अहिंसात्मक आन्दोलनों से ही किया जा सकता है। अगर हम ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर सामाजिक क्रिया का अवलोकन करें तो हम देखते हैं कि समाज के अभिजात वर्ग के लोग समाज के उपेक्षित, वंचित समुदाय या वर्गों की भागीदारी के बिना अकेले ही इसको चलाते थे और आगे बढ़ाते थे इस प्रकार के उदाहरण के रूप में राजाराम मोहन राय को लिया जा सकता है जिन्होंने सती प्रथा के उन्मूलन के लिए सामाजिक विधान को बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। जिन मॉडलों में समाज के अभिजात्य वर्ग के लोग जनसंख्या के हाशिए पर रहे वर्गों को शामिल किए बिना या शामिल करके सामाजिक क्रिया में मुख्य भूमिका निभाते हैं, अभिजातवादी मॉडल की श्रेणी में आते है। अगर हम किसान आन्दोलन के संदर्भ में सामाजिक क्रिया के मॉडल का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि सामाजिक क्रिया पूर्णत: जमीनी स्तर से शुरू हुई है और इसकी सफलता पूर्णराष्ट्रीय स्तर के सहयोग पर समाप्त हुई। अगर हम कहें तो किसानों की समस्या के समाधान के लिए सामाजिक क्रिया ने जो राजनीतिक दृढ़ इच्छा शक्ति दिखाई वह संगठनात्मक तथा शैक्षणिक स्थिति से संबंधित थी एवं सहभागिता प्रारूप पर आधारित थी।

सामाजिक क्रिया के लोकप्रिय मॉडल के अन्तर्गत सामान्य जन समूह के संचालन में उत्प्रेरक की भूमिका निभाना, लोगों को क्रिया करने के लिए तैयार करना, अपने जीवन को बेहतर तरीके से जीने के लिए शक्ति संपन्न बनाना इत्यादि कार्य इस मॉडल के अंतर्गत आते हैं। लोकप्रिय मॉडल में हाशिए की जनसंख्या सामाजिक आन्दोलन का पूरा अधिकार अपने हाथों में ले लेती है। हालांकि इसमें सामाजिक कार्यकर्ता मार्गदर्शन की भूमिका निभाते हैं उदाहरण के तौर पर गाँधीजी द्वारा चलाया गया स्वतन्त्रता आन्दोलन लोकप्रिय सामाजिक क्रिया मॉडल का सबसे बेहतर उदाहरण है। अम्बेडकर द्वारा दलितों के अधिकार के लिए शुरू किया गया आन्दोलन भी सामाजिक क्रिया के इस मॉडल का उदाहरण है। अन्ना हजारे के भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता हैं।

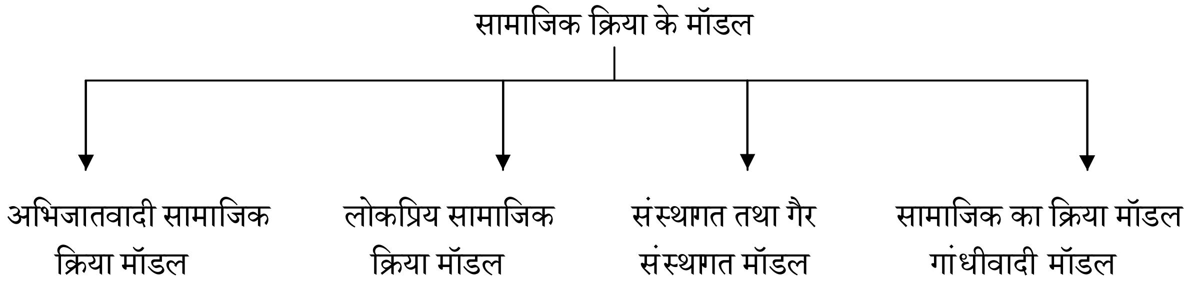

2.2 अभिजातवादी सामाजिक क्रिया मॉडल :-

अभिजात वर्ग से अभिप्राय उस वर्ग से है जिसमें विषय विशेषज्ञ एवं शिक्षित वर्ग के लोग आते हैं। अभिजात वर्ग के लोग ही सबसे पहले समस्या का अवलोकन करते हैं एवं उस पर विचार विमर्श भी करते हैं। उसके बाद समस्या क्या है? समस्या कितनी व्यापक है एवं समस्या के उत्पन्न होने में कौन-कौन से कारक उत्तरदायी हैं? इसका भी अध्ययन किया जाता है। तत्पश्चात सामाजिक क्रिया के माध्यम से उस समस्या को दूर करने कोशिश की जाती है। ब्रिट्रो 1984 ने सामाजिक क्रिया के दो मॉडलों की चर्चा की थी-

1. अभिजातवादी सामाजिक क्रिया मॉडल
2. लोकप्रिय सामाजिक क्रिया मॉडल।

अभिजातवादी सामाजिक क्रिया मॉडल में समाज के प्रेरित,प्रगतिशील और संवेदनशील लोग समाज के उपेक्षित एवं वंचित वर्गों की तरफ से या हाशिये पर खड़े वर्गों की तरफ से उस जनसंख्यासमूह की सक्रिय भागीदारी के बिना भी आवाज उठाते हैं तो इसे सामाजिक क्रिया का अभिजातवादी मॉडल कहा जाता है। अभिजातवादी सामाजिक क्रिया के तीन उपमॉडलों की भी व्याख्या बिट्रो ने की है-

I. विधायी सामाजिक क्रिया मॉडल
II. आर्थिक स्वीकृति मॉडल
III. प्रत्यक्ष भौतिक मॉडल

I विधायी सामाजिक क्रिया मॉडल :- विधायी क्रिया वह क्रिया है जिसमें यह प्रयास किया जाता है कि समाज में व्याप्त सामाजिक समस्याओं को सामाजिक विधान बनाकर दूर किया जाए। इस प्रक्रिया में सामान्यत: वर्तमान समस्या की विशालता, सीमा तथा तात्कालिकता को समझने का प्रयास किया जाता है। इसके लिये जनमत तैयार करना पड़ता है तथा सामाजिक विधान अथवा सामाजिक नीतियों में वांछित परिवर्तन लाने के लिये मध्यस्थता प्रक्रिया का निरूपण करना भी इसमें शामिल होता है। इस मॉडल का मुख्य तथ्य यह है कि सामान्य जनसंख्या या लक्ष्य समूह इस प्रक्रिया में सीधे तौर पर शामिल नहीं होती। बल्कि समाज के कुछ अभिजात वर्ग के लोग सामाजिक क्रिया के विभिन्न माध्यमों से सामाजिक नीति के अन्तर्गत व्यापक परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं। इसके लिए वे मीडिया अधिवक्ता, विधायी अधिवक्ता, न्यायिक अधिवक्ता, समर्थन जुटाना, नेटवर्किंग और संगठन जैसी रणनीतियाँ तथा तकनीके इस्तेमाल करते हैं। विधायी सामाजिक क्रिया मॉडल के अन्तर्गत सामाजिक नीति में परिवर्तन लाने के लिए कुछ विशिष्ट व्यक्ति समस्या के प्रति समाज में जन चेतना का प्रसार करते हैं। सामाजिक क्रिया के इस मॉडल की पूर्व आवश्यकताएँ सामाजिक प्रक्रियाओं एवं सामाजिक स्थिति काविश्लेषण, सूक्ष्म स्तर पर संपर्क और व्यापक जानकारी, विश्लेषण की अच्छी योग्यताएँ तथा संप्रेषण इत्यादि कौशल होते है जिसके तहत अभिजात वर्ग के लोग कार्य करते हैं। समाज के ये प्रबुद्ध वर्ग के लोग सामाजिक न्याय तथा अधिकारिता में विश्वास रखते हैं तथा शोषण एवं दमन के कारणों को भी समाप्त करने की कोशिश करते हैं। अभिजात वर्ग के पास सामाजिक पूँजी की शक्ति होती है अर्थात ऐसे लोगों के साथ इनका संपर्क होता है जो निर्णय प्रक्रिया में भाग लेते हैं,नीति निर्माता हैं या सामाजिक नियोजक हैं। ये सामाजिक क्रिया के अभिजातवादी मॉडल की प्रक्रिया में उत्प्रेरक की तरह काम करते हैं। उदाहरण के तौर पर जब राजाराम मोहन राय द्वारा सती प्रथा के विरूद्ध कानून लाने के लिए राज्य पर दबाव डाला गया तो उनके पास एक ऐसा दृष्टिकोण था जो सामाजिक न्याय द्वारा परिभाषित था उन्हें कानून की अच्छी जानकारी थी तथा निर्णयकर्ता तक उनकी पहुँच थी। ठीक उसी प्रकार जब सूचना के अधिकार कानून के अधिनियमन में अरूणा राय तथा अरविन्द केजरीवाल ने अपनी भूमिका निभाई थी तो ये कहीं न कहीं कमोबेश सामाजिक क्रिया के अभिजातवादी मॉडल का अनुसरण कर रहे थे। इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम 2006, किशोर न्याय अधिनियम 2006, अभिभावकों एवं वरिष्ठ नागरिकों की देख-रेख और कल्याण से संबंधित अधिनियम2007, खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013, इत्यादि समसामयिक सामाजिक विधान समाज के प्रबुद्ध लोगों की वजह से पारित हुए हैं। इन लोगों ने सामाजिक क्रिया का अभिजातवादी मॉडल अपनाया तथा सामाजिक क्रिया के जरिए विधानों में परिवर्तन लाने की कोशिश करते रहे।

II आर्थिक स्वीकृति मॉडल:- इस मॉडल में समाज के विशिष्ट व्यक्ति समाज के कल्याण हेतु सामाजिक तथा राजनैतिक कारकों पर नियंत्रण रखने की कोशिश करते हैं। इस मॉडल के तहत दमनकारियों की आर्थिक स्थिति, लाभों अथवा वित्तीय लेन-देन को अपनी शक्ति के इस्तेमाल द्वारा ऐसे लोगों को प्रभावित किया जाता है जो श्रमिकों को उनका हक देने से इनकार करते हैं। किसी भी समाज में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक कारक समाज को नई दिशा देते हैं यदि इनका उचित नियंत्रण नहींकिया गया तो समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। अत: इसके प्रति समाज के लोगों को जागरूक करना आवश्यक होता है। समाज के अभिजात लोगों का आर्थिक संसाधनों पर कुछ नियंत्रण होता है जिसका इस्तेमाल वे अपने सेवार्थी समूह के लिए लाभ उठाने हेतु एक हथियार के तौर पर करते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण रहे हैं जब श्रम अधिकारियों ने श्रमिक वर्ग को मेहनत का लाभ उठाने वाले प्रबंधन पर वेतनवृद्धि, चिकित्सा बीमा, श्रमिकों के बच्चों की शिक्षा, बिजली, शुद्ध जल, मनोरंजन के साधन इत्यादि के लिए दबाव ड़ाला। एक उदाहरण दिल्ली का दिया जा सकता है जब दिल्ली की सरकार ने वहाँ की झुग्गियों में रहने वाले गरीब लोगोंको उनके कार्य स्थल से बहुत दूरतथा शहर के बाहरी इलाकों में पुनर्वास करने की कोशिश की तब समाज कार्य के अनेक विद्यार्थियों ने अपने फील्ड वर्क के द्वारा सामाजिक क्रिया का अच्छा उदाहरण पेश किया। विश्व व्यापार संगठन सरकार की उदारीकरण की नीति, विशेष आर्थिक क्षेत्रों के विरूद्ध नागरिक समाज संगठनों, सामाजिक क्रिया समूहों, एन. जी. ओ. आदि द्वारा विरोध –प्रदर्शन सामाजिक क्रिया की पहले रही हैं।

III प्रत्यक्ष भौतिक मॉडल :- इस मॉडल में अभिजात वर्ग के लोग समानता के साथ सामाजिक न्याय पर विशेष ध्यान देते हैं तथा अन्याय के लिए जो लोग उत्तरदायी होते हैं उनको भी दण्डित करने के लिए तथा अपने सेवार्थी समूहों के लाभ के लिये भी प्रयास करते हैं। वे हमेशा यह प्रयास करते हैं कि समाज के दबे-कुचले लोगों को भी उचित न्याय मिले। बिट्रो के अनुसार यह बहुत विवादास्पद मुद्दा है क्योंकि इस मॉडल के तहत अभिजात वर्ग के लोग दमनकारियों को दण्डित करने के लिए कानून को अपने हाथों में ले लेते हैं। प्रियदर्शनी मट्टू और जेसिका लाल हत्याकाण्ड में न्याय के लिए मीडिया और विद्यार्थी, महिला समूह, इत्यादि द्वारा सामाजिक क्रिया प्रारम्भ किया जाना इसी तरह का मॉडल है। सामाजिक क्रिया के किसी भी मॉडल में रक्तपात और हिंसा का उपयोग विरोध दर्ज कराने के लिये नहीं किया जा सकता। सामाजिक क्रिया के इस मॉडल में लगे सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा जुलूस निकालने, मोमबत्ती जुलूस निकालने, धरना आदि को भी ध्यान में रखा जाता है।

2.3 लोकप्रिय सामाजिक क्रिया मॉडल

लोकप्रिय सामाजिक क्रिया मॉडल अभिजातवादी क्रिया मॉडल के विपरीत होता है। इस मॉडल में अभिजात वर्ग के लोग सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया में सेवार्थी समूह को सम्मिलित करते हैं या दलित समूह या समाज के अपेक्षित अथवा वंचित वर्ग के लोग स्वयं भागीदार बनकर इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। ऐसी सामाजिक क्रिया कोलोकप्रिय सामाजिक क्रिया का मॉडल नाम दिया जाता है। इस क्रिया में दमनकारी व्यवस्था और शोषण की दहलीज पार हो जाती है तो लोग घरों से बाहर निकलते हैं। तथा शोषण एवं दमन के विरूद्ध विद्रोह करते हैं। अभिजात वर्ग के लोग एवं सामाजिक कार्यकर्ता अन्याय तथा ऐसी परिस्थितियों के विरूद्ध लोगों का मार्गदर्शन करते हैं एवं जानकारी मुहैया कराते हैं। दलित समूह या वर्ग को राजनीतिक समीकरण के बारे में समझा भी सकते है या तटस्थभी रह सकते हैं। दलित और वंचित समुदाय केलोग अपने टकराव या संघर्ष को अन्यायपूर्ण अमानवीय संरचनाओं, एजेन्सियों अथवा दमनकारी एजेन्सियों के खिलाफ विद्रोह करते हैं।

लोकप्रिय सामाजिक क्रिया मॉडल को बिट्रों ने तीन उप मॉडलों में विभाजित किया है-

1. चैतन्य मॉडल
2. द्वन्द्वात्मक मॉडल
3. प्रत्यक्ष गतिशीलता मॉडल

1. **चैतन्य मॉडल :-** चैतन्यकारी मॉडल के अन्तर्गत मुख्य रूप से पावलॉव फ्रेरे की चैतन्यकरण की अवधारणा तथा विचारधारा आ जाती है अर्थात इस प्रकार के मॉडल में जनसाधारण के बीच शिक्षा के माध्यम से जागृति लाने का प्रयास किया जाता है। पावलॉव फ्रेरे ने जिस चैतन्यकरण की अवधारणा विकसित की थी उसका अर्थ लोगों को दमन तथा दमनकारी दोनों स्थितियों में वर्गों को शिक्षित करना था।

जिससे इनके बीच पारस्परिक सह-सम्बन्ध बढ़े, शक्ति संरचना में संतुलन आए या दमनकारी वर्ग से मुक्ति मिले, ऐसा इसलिए है कि दलित वर्ग अथवा दमनकारी वर्ग अपनी समस्याओं की पहचान स्वयं कर सकने में सक्षम हो सकता है। तथा समस्याओं को बेहतर तरीके से सुलझा सकता है। फ्रेरे काविश्वास था कि शिक्षा पुन: जागृति एवं सामाजिक क्रिया के लिए एक उपकरण का कार्य कर सकती है। इस प्रक्रिया का परिणाम केवल साक्षरता प्राप्त करने में ही नहीं होता बल्कि इसका लक्ष्य सभी दमनकारी संरचना में जो भागीदार दमनकारी समूह है उनसे मुक्त कराने में सहायता प्राप्त करना होता है। सामाजिक क्रिया के इस मॉडल में लोगों को उनके जीवन को अवरूद्ध करने वाली सामाजिक संरचनाओं काविश्लेषण और उनकी समझ को बढ़ाने का अवसर दिया जाता है। शिक्षा का अभिप्राय उत्तरोतर गुणात्मक परिवर्तन से होता है जिसके जरिए समाज के दलित वर्ग के लोग अपनी संरचनाओं में बदलाव करते हैं। शिक्षा के द्वारा मानवीकरण होता है तथा यह आशा किया जाता है कि दलित वर्ग के लोग अपनी बारी आने पर दमनकारी न बन जायें इसलिए चैतन्यकारी मॉडल का प्रयोग समुदाय को शिक्षित करने में तथा उनमें चेतना का प्रसार करने एवं उनकी चेतना को जागरूक करने में किया जाता है।

2. **द्वन्द्वात्मक मॉडल :-** यह एक ऐसा मॉडल है जो लोगों के बीच, सरकार एवं जनता के बीच में संघर्ष उत्पन्न कराता है क्योंकि समाज की किसी भी समस्या का समाधान अगर सरकारी व्यवस्था द्वारा नहीं किया जा रहा है जो उस तत्व के प्रति समाज के लोगों में असन्तोष फैलता है तथा लोग सरकारी तत्व के विरूद्ध विद्रोह कर देते हैं एवं एक मंच पर संगठित होकर आ जाते हैं। द्वन्द्वात्मक शब्द का अर्थ ही होता है ''तर्कपूर्ण विवाद की कला'' जब व्यक्ति या समूह उग्र स्थितियों को उठाते है, तर्क करते है तब एक पक्ष वाद एवं दूसरा प्रतिवाद मेंसंलग्न हो जाता है। तर्क-वितर्क के इस परिणाम से एक स्वीकार्य निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इस प्रकार विरोधाभाषी स्थितियों की उपस्थिति तथा बेहतर निष्कर्ष पर पहुँचने को तर्क रूप में द्वंद कहा जा सकता है। इस प्रकारद्वंदात्मक प्रारूप के तहत लोगों को विश्वास दिलाकर संघर्ष पैदा किया जाता है जिससे एक अच्छी व्यवस्था निर्मित हो सके।

3. **प्रत्यक्ष गतिशीलता मॉडल :-**प्रत्यक्ष गतिशीलता मॉडल में सामाजिक क्रियावादियों द्वारा समसामायिक तथा विशेष कारणों से संबंधित मुद्दे उठाए जाते हैं तथा उद्देश्योंको प्राप्त करने के लिए सामान्य जनता को विरोध प्रदर्शन, हड़ताल इत्यादि का सहारा लेने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस प्रक्रिया में नेतृत्व कर्ता एवं अभिजात वर्ग के लोग ऐसी समस्याओं एवं मुद्दों को उठाते हैं जोव्यापक रूप से लोगों को प्रभावित करते हैं उन कारकों का विश्लेषण करते हैं,जो अन्याय की जड़ होते हैं तथा वैकल्पिक प्रक्रियाएँ तथा नीतियों की तलाश की जाती है। निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से विरोध की गतिविधियों के लिए आम जनता को प्रेरित करते हैं। इसका वर्तमान उदाहरण भ्रष्टाचार पर नियंत्रण के लिए जन लोकपाल विधेयक का पास कराना है। भष्ट्राचार निवारण हेतु इस देश के सभी नागरिक अन्ना हजारे के साथ इसलिए एक जुट हो गये क्योंकि ये लोग भी कहीं-न-

कहीं भ्रष्टाचार से ग्रसित है तथा भ्रष्टाचार को मिटाना चाहते हैं। इस प्रकार ऐसे मॉडल में किसी विशेष कारणों को लेकर सामान्य जनता प्रोत्साहित किया जाता है।

2.4 संस्थागत तथा गैर संस्थागत मॉडल :- संस्थागत मॉडलों में सामाजिक क्रिया की शुरूआत राज्य द्वारा अथवा गैर सरकारी संगठनों द्वारा की जाती है जबकि गैर संस्थात मॉडल में समाज के वंचित उपेक्षित वर्ग के लोग सामाजिक क्रिया हेतु पहला कदम उठाते हैं। श्री सिंह 1984 ने सामाजिक क्रिया के कुछ मॉडलों को प्रतिपादित किया था जिसका आलेखन इस प्रकार है–

सामाजिक क्रिया के मॉडल

संस्थागत (राज्य) | संस्थागत (सामाजिक) | सामाजिक (संस्थागत) | जनवादी (आंदोलनकारी)

संस्थागत (राज्य) और संस्थागत (सामाजिक) यहाँ संस्था का अर्थ राज्य, स्वयं सेवी संगठन जैसे कानूनी तथा सामाजिक निकाय के साथ-साथ किसी औपचारिक संगठन से है। गैर संस्थात मॉडल की अपनी भी उप श्रेणीयाँ हैं: सामाजिक (संस्थागत) तथा जनवादी (आंदोलनकारी) गैर संस्थागत मॉडल से हमारा तात्पर्य समुदाय में सामाजिक रूप से सक्रिय अनौपचारिक समूह से है जैसे स्वयं सहायता समूह महिलाओं का दबाव समूह छात्रों का आंदोलनकारी समूह युवा मोर्चा क्लब इत्यादि।

- **सामाजिक क्रिया का संस्थागत (राज्य) मॉडल** :- यह सामाजिक क्रिया राज्य द्वारा चलाई जाती है इसके अन्तर्गत सामाजिक क्रिया अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करती है। इस क्रिया में बिना किसी सहभागिता के या बिना लोगों की भागीदारी के लोगों को लाभान्वित करने की कोशिश की जाती है। किसी भी राष्ट्र का यह कर्तव्य बनता है कि वह अपने नागरिकों को एक अच्छे वातावरण तथा कल्याणकारी योजनाएँ प्रदान करे जिससे उस देश या राष्ट्र की जनता गुणवत्तापूर्ण जीवनयापन कर सके। इस मॉडल के अन्तर्गत संसद, प्रतिनिधि, नौकरशाह, अभिजात वर्ग के लोग भाग लेते हैं तथा यह क्रिया -कानून के दायरे में होती है। उदाहरण के लिए सामुदायिक विकास के कार्यक्रम जैसे- शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराना, नि:शुल्क टीकाकरण कराना,स्वास्थ्य जाँच, गली नाली, सड़क, शिक्षा इत्यादि की व्यवस्था करना आदि शामिल होती है। खासतौर से भारत में संविधान के माध्यम से भारत को कल्याणकारी राज्य के रूप में सूचीबद्ध किया गया है इसलिए यह जनसंख्या के सभी वर्गों के लिए आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए बाध्य करती है।
- **सामाजिक क्रिया औपचारिक समूह मॉडल :-** संस्थागत/सामाजिक क्रिया मॉडल में सामाजिक क्रिया की शुरूआत स्वयं संगठनों द्वारा की जाती है। चाहे ये संगठन सरकार की ओर से आर्थिक सहायता ले रहें हों या नहीं । ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सामाजिक संस्था समाज के उत्थान के लिए कार्य करती है तथा इसके पीछे अंतर्निहित विचार कल्याणकारी अथवा जरूरत मंदों को राहत व सेवायें उपलब्ध कराने का होता है। क्रिया प्राय: कानून के दायरे में की जाती है। उदाहरण के तौर पर किसी एन.जी.ओ. द्वारा की गई सामाजिक क्रिया जिसमें मलीन बस्तियों में सफाई अभियान के दौरान उस क्षेत्र के नगर निगम द्वारा सफाई कर्मियों की नियुक्ति निश्चित कराना अथवा किसी समुदाय में स्कूल छोड़ने वाले लड़के-लड़कियों का फिर से स्कूल में नामांकन कराने के लिये आन्दोलन चलाना इत्यादि शामिल होता है।

- **सामाजिक क्रिया का अनौपचारिक समूह मॉडल :-** यह मॉडल वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्योंपर आधारित होता है। इसमें समाज के लोग अपनी समस्याओं कासमाधान एवं निदान स्वयं करने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार के क्रिया की प्रकृति संवैधानिक अथवा विधानेत्तर हो सकती है। इस प्रकार की सामाजिक क्रिया में सामाजिक सहभागिता जरूरी होती है। इसका कारण यह है कि कोई भी सामाजिक लक्ष्य जो सामाजिक समस्याओं से बँधा होता है तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि समाज के लोग जमीनी स्तर से जुड़ कर एक साथ कार्य न करें। इस मॉडल के अन्तर्गत नागरिक, स्वयं सहायता समूह, अभिजात वर्ग के लोग, वंचित वर्ग के लोग इत्यादि अपने कल्याण के लिए सामाजिक क्रिया करते हैं। बाद में इन लोगों को औपचारिक समूहों तथा संस्थाओं का सहयोग प्राप्तहोने लगता है।
- **सामाजिक क्रिया का जनवादी मॉडल :-** यह मॉडल आदर्श मॉडल कहा जा सकता है क्योंकि यह पूरी तरह से लोकप्रिय सामाजिक आधार और शक्ति पर निर्भर करता है। यह लोगों को आत्म विश्वास के साथ समस्याओं से लड़ने को प्रेरित करता है । जब समाज के अधिकांश लोग सामाजिक समस्याओं से त्रस्तहो जाते हैं तो वे संगठित होकर एक मंच से समस्याओं को दूर करने की कोशिश करते हैं। यह मॉडल सामूहिक प्रयास सक्रिय भागीदारी तथा निरंतर शिक्षा के माध्यम से स्वावलंबन पर बल देता है। यह मॉडल लोगों को सामान्यत:अहिंसात्मक क्रिया करने की प्रेरणा देता है। जिससे समस्या उत्पन्न करने वाले कारक स्वत: ही विशाल जन समूह को देखते हुए अलग हो जाते है अथवा कर दिए जाते हैं ।अधिकांशव्यक्ति परिवर्तन हेतु तैयार रहते हैं तथा इस परिवर्तन में बाधा उत्पन्न करने वाले समस्त विरोधी शक्तियों को उखाड़ फेंकते हैं।

2.5 सामाजिक क्रिया का गांधीवादी मॉडल:- भारत में सामाजिक क्रिया का इतिहास गांधीवादी विचार अहिंसा और रचनात्मक कार्य के सिद्धान्त से ज्यादा प्रभावित है। गांधीवादी मॉडल लोगों में अहिंसा, वैचारिक शुद्धता तथा नैतिकता पर विशेष बल देता है। यह मॉडल रचनात्मक सोच, संचालन, संगठन तथा कार्रवाई पर आधारित है इस मॉडल के आधार पर स्वयं गांधीजी ने कई प्रकार के आन्दोलन किए जिनमें चंपारण आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन,भारत छोड़ो आन्दोलन इत्यादि प्रमुख थे। गांधी जी यह मानते थे कि कोई भी राज्य सत्तात्मक या लोकतांत्रिक सरकार आसानी से समाज कल्याण हेतु तैयार हो सकती है क्योंकि यदि किसी भी व्यक्ति के सामने नैतिकता का प्रदर्शन किया जाए तो उसका हृदय परिवर्तित होगा क्योंकि वह भी एक सामान्य मनुष्य है। गांधीवादी मॉडल की भी कुछ अपनी उपश्रेणियाँ है जो निम्नलिखित हैं-

गांधीवादी मॉडल

- उग्र अहिंसात्मक परम्परा
- विनम्र अहिंसात्मक परम्परा
- रचनात्मक कार्यक्रम का नागरिकता मॉडल
- लोकशक्ति मॉडल

1. उग्र अहिंसात्मक परंपरा मॉडल- सामाजिक क्रिया एक ऐसा मॉडल जो महात्मा गांधी द्वारा अपनाये गए अहिंसात्मक आन्दोलन से प्रेरित है। इस मॉडल में लोग सामाजिक ससमस्या को दूर करने के लिए अहिंसात्मक आन्दोलनों का सहारा लेते हैं तथा कभी-कभी वे उग्र रूप भी धारण कर लेते हैं। इसके पीछे का कारण यह है कि

सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा उचित तरीके से ध्यान नहीं दिया जाता है। इस मॉडल में केवल शान्तिपूर्ण उपाय और जमीनी स्तर पर किए गए रचनात्मक कार्य ही निर्भर नहीं करते बल्कि क्रिया के लिए जन सामान्य के संचालन के माध्यम से शक्ति एवं संसाधनों के पुनर्वितरण पर भी ध्यान दिया जाता है। इस तरह की घटनाओं के उदाहरण के रूप में चिपको आंदोलन का उदय व्यवसायिक प्रयोग हेतु वनों की बेतहाशा कटाई तथा वनों के विनाश के विरूद्ध प्रदर्शन से हुआ था। इस तरह के अन्य उदाहरण रेल रोकना, धरना देना इत्यादि क्रिया की जाती है जो उग्र तो होती है लेकिन यह हिंसा से परे होती है।

2. विनम्र अहिंसात्मक परंपरा मॉडल :- इस प्रकार के मॉडल में समाज की सभ्य एवं विशेषज्ञ जनता सामाजिक समस्या को समाप्त करने के लिए संकेतात्मक आन्दोलन करती है जिसमें लोग अहिंसात्मक रूप से सरकारी तंत्र का विरोध करते हैं तथा सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का प्रतिरोध भी करते हैं। विनम्र अहिंसात्मक मॉडल में लोग प्रतीकों के रूप में काली पट्टी तथा अन्य साधनों का प्रयोग करते हैं जिससे उनकी आवाज सरकार तक पहुँच सके। उदाहरण के रूप में बिनोवा जी द्वारा किया गया सत्याग्रह का कार्य गाँव व समुदाय की पुर्नसंरचना हेतु गांधीवादी सामाजिक क्रिया के विनम्र अहिंसक रूप का उत्तम उदाहरण है। गांधीवादी समाजवादी समुदाय के लिए भूदान एवं ग्राम दान इसके महत्वपूर्ण उदाहरण है।

3. रचनात्मक कार्य का नागरिकता मॉडल :- इस प्रकार के मॉडल में सामाजिक क्रिया मुख्यत: शिक्षा के जरिए जमीनी स्तर पर बदलाव लाने के लिए की जाती है। यह रचनात्मक कार्य पर निर्भर होती है तथा इसमें विश्वास किया जाता है कि सामाजिक व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन सही समय पर ही होंगे। यह मॉडल सामाजिक बदलाव हेतु तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विरोध-प्रदर्शन, सत्ता से टकराव तथा बहिष्कार की विचारधारा को निरंतर करता है। इसके द्वारा विचार क्रान्ति और पद्धति क्रान्ति की परिकल्पना की जाती है तथा लोक समिति एवं नागरिकता की भूमिका को प्राथमिकता दी जाती है। इस मॉडल का जन्म महात्मा गांधी द्वारा किए गए आन्दोलनों पर आधारित है। गाँधीवादी दृष्टिकोण में यह कहा गया है कि सरकार लोगों पर निर्भर करती है न कि लोग सरकार पर। गांधी जी का यह भी मानना था कि सभी प्रकार की समस्याएँ केवल राज्य स्तर अथवा सरकार के माध्यम से नहीं सुलझाई जा सकती है बल्कि इनका निराकरण जनता स्वयं भी कर सकती है। उपरोक्त गांधीवादी सामाजिक क्रिया के सभी मॉडलों में लोगों के आधार को महत्वपूर्ण माना गया है जहाँ अहिंसक और नागरिकता मॉडल सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के हल पर केन्द्रित होते हैं वहीं उग्र अहिंसात्मक मॉडल में परंपरागत राजनीतिक आयाम भी जोड़े जाते हैं।

इसके अतिरिक्त हम गांधीवादी सामाजिक क्रिया के तीनों प्रकारों के अतिरिक्त एक अन्य मॉडल का प्रयोग करेंगे जिसमें गांधीवादी मॉडल के तीनों प्रकारों की विशेषताएँ उसमें शामिल हैं जिसे हम लोक शक्ति मॉडल भी कहते हैं।

1. **सामाजिक क्रिया का लोकशक्ति मॉडल :-** सामाजिक क्रिया का लोकशक्ति मॉडल गांधीवादी दृष्टिकोण पर आधारित सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने के लिए आम जनता द्वारा संचालित एक क्लासिकल मॉडल है। गांधीवादी रचनात्मक कार्य की परंपरा में मुख्यत: दो दृष्टिकोण होते हैं एक दृष्टिकोण या एक समूह यह विश्वास करता है कि वर्तमान कानून और संवैधानिक ढ़ाँचे में आवश्यक बदलाव रचनात्मक समाजकार्य के माध्यम से धीरे –धीरे लाया जा सकता है। इस मॉडल का प्रयोग लोगों को शिक्षित करने तथा जिनके पास संपत्ति और शक्ति है उन लोगों की चेतना को जगाने तथा अपील करने पर केन्द्रित होता है कि वे इसका त्याग कर दे। रचनात्मक कार्यक्रम में जागरूकता उत्पन्न करने के साथ-साथ समुदाय के पुननिर्माण के लिए राज्य की सहायता से कार्यक्रम चलाया जाता है। वही दूसरे दृष्टिकोण या दूसरे समूह का मानना है कि सामाजिक संस्थाओं में आवश्यक बदलाव

अथवा अतिवादीक्रिया की जरूरत उस समय उत्पन्न होती है जब राज्य का तंत्र अथवा संवैधानिक आय समुदाय की आवश्यकताओं एवं सेवाओं की आपूर्ति में विफल रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप जन क्रिया की आवश्यकता पड़ सकती है। इस अवधारणा का लक्ष्य शोषण और गरीबी को मिटाना है सभी को समान अवसर उपलब्ध कराना तथा भौतिक और नैतिक संसाधनों का पूर्ण विकास करना शामिल होता है। गांधीवादी समाजवादियों का मानना है कि समाजवादी समाज में लोगों को समाज के हितों के लिए अपनी इच्छाओं तथा हितों को त्याग करने के लिए स्वयं प्रयास करना पड़ता है। ऐसे समाजवाद की प्राप्ति क्रिया से नहीं की जा सकती बल्कि इसके लिए सामाजिक क्रिया की भी आवश्यकता होती है। सर्वोदय को भी एक सामाजिक आन्दोलन माना जा सकता है जो व्यक्ति व सामाजिक क्रिया पर लक्षित होता है। इसमें स्वराज्य तथा सु-राज की प्राप्ति के लिए लोकशक्ति व समिति पर बल दिया जाता है साथ ही साथ इसमें वैचारिक क्रान्ति और नागरिकों की भूमिका का भी ध्यान रखा जाता है। लोकशक्ति मॉडल की अवधारणा गांधीवादी रचनात्मक कार्य परंपरा में अत्यधिक प्रासंगिक है। लोकशक्ति का तात्पर्य लोगों की सामूहिक क्षमता अथवा शक्ति से है। प्रभावोत्पादक होने के उद्देश्य से लोक शक्ति में नैतिक अच्छाइयों और अपील का गुण होना चाहिए और इसे सामाजिक बदलाव के लिए अहिंसक तरीके अपनाने चाहिए। लोक शक्ति की अवधारणा में यह बात छिपी हुई है कि जब तक समुदाय के लोगों की ऊर्जाओं व क्षमताओं को गतिशील नहीं किया जाएगा तब तक वे सामूहिक औरस्वैच्छिक रूप से पहल करने के लिए स्वावलंबी तथा सक्षम नहीं हो सकते। लोकशक्ति लोकतंत्र का सार तत्व है। राज्य शक्ति अपने उद्देश्यों को लोकशक्ति के बिना पूरा नहीं कर सकती।

2.6 सारांश

इस इकाई में सामाजिक क्रिया के मॉडलों के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है तथा यह बताया गया है कि सामाजिक क्रिया के कौन-कौन से मॉडल होते हैं। इस अध्याय में सामाजिक क्रिया के अभिजातवादी मॉडल, लोकप्रिय सामाजिक क्रिया मॉडल, विधाई सामाजिक क्रिया मॉडल, आर्थिक स्वीकृति मॉडल, प्रत्यक्ष भौतिक मॉडल का भी उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक क्रिया के संस्थागत तथा गैर संस्थागत मॉडल का भी विवरण दिया गया है। अन्त में सामाजिक क्रिया के गांधीवादी मॉडल की व्याख्या के साथ- साथ सामाजिक क्रिया के लोकशक्ति मॉडल की भी व्याख्या की गयी है।

2.7 बोध प्रश्न

1. सामाजिक क्रिया मॉडल का अर्थ स्पष्ट करते हुए समाजकार्य में इसकी महत्ता पर प्रकाश डालें।
2. लोकप्रिय सामाजिक क्रिया मॉडल की व्याख्या उसकी विभिन्न उप श्रेणियों सहित करें।
3. संस्थागत तथा गैर संस्थागत मॉडल की अवधारणा को स्पष्ट करें।
4. वर्तमान सन्दर्भ में सामाजिक क्रिया के गांधीवादी मॉडल की प्रासंगिकता को रेखांकित कीजिए ।

2.8 **सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ**

1. अहमद, मिर्जा रफीउद्दीन (1967) : *समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियाँ.* लखनऊ : ब्रिटिश बुक डिपो।

2. सिंह, सुरेन्द्र एवं मिश्र पी.डी. (2010) : समाज कार्य इतिहास दर्शन एवं प्रणालियाँ, लखनऊ : न्यू रॉयल बुक कंपनी।

3. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.(2007): *समाज कार्य.* लखनऊ : रैपिड बुक सर्विस।

4. गुप्ता, एम एल .एवं शर्मा,डीडी.(1998): *समाजशास्त्र.* आगरा:साहित्य भवन पब्लिकेशन

5. इग्नू ,*एम एस डब्ल्यू 003* सामुदायिक विकास के लिए समुदाय संगठन का प्रबंधन नई दिल्ली : इग्नू।

6. Siddiqui, H.Y. (1984): *Social Work and Social Action*. New Delhi : Harnam Publication.

7. Arthur, Hillman (1954): *Community Organization and Planning.* New York : Macmillan Company.

8. Moorthy, M.V. (1966): *Social Action*, Mumbai : Asia Publishing House.

9. Samuel John (2000): *Social Action : An Indian Panorama* New Delhi :Voluntary Action Network India.

10.Singh, Surendra (1986): *Horizons of Social Work* (Edited) By Surendra Sing and K.S. Soodan. Lucknow : Jyotsana publication

11. Davis, Martin (2000): *The Blackwell Encyclopedia of Social Work* (Edited) Massachusetts : Blackwell Publication.

12. Friedlander, Walter. A. (1977) : *Introduction to Social Welfare.* New Jersey : Prentice Hall.

13. Foran, J. (2003) : *The Future of Revolutions*. London : Zed Books.

14. D. Paul Chowdhry (1964) : *Introduction to Social work History Concepts methods And Fields.* Delhi : Atma Ram and Sons.

15. Pathak S.H. (1971) *: Social Welfare and Family Planning.* New Delhi: Planning Commission GoI

16. Ogburn & Nimkoff (1957) : *A Hand Book of Sociology*. Landon : Rutledge and Kegan pall Limited.

17. Aptheker Herberl (1941) : *Basic Concepts in Social Work*. North Carolina : Press Chappel Hill.

इकाई - 3
सामाजिक क्रिया में रणनीतियाँ तथा कौशल

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 सामाजिक क्रिया में रणनीतियाँ एवं युक्तियाँ
3.4 रणनीतियों का नियोजन
3.5 प्रबंधकीय रणनीतियाँ
3.6 सामाजिक क्रिया में कौशल
3.7 सारांश
3.8 बोध प्रश्न
3.9 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

3.1 उद्देश्य -

इस इकाई में सामाजिक क्रिया करने के दौरान अपनाई जाने वाली रणनीतियों एवं कौशलों पर चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. सामाजिक क्रिया में रणनीतियों का अर्थ, महत्व तथा प्रासंगिकता को रेखांकित करने में सक्षम हो सकेंगे।
2. नियोजन, जनसमूह संचालन, प्रबंधन तथा मूल्यांकन की विभिन्न अवस्थाओं में अपेक्षित आवश्यक रणनीतियों तथा कौशलों की व्याख्या कर सकेंगें।
3. संप्रेषण तथा नेटवर्किंग में रणनीतियाँ तथा उसके प्रयोग को बेहतर तरीके से उपयोग करने में सक्षम हो सके।

3.2 प्रस्तावना

सामाजिक क्रिया के क्रियान्वयन में सामाजिक क्रिया कार्यकर्ताओं द्वारा हिंसा को छोड़कर एक ऐसी सार्थक रणनीति का इस्तेमाल, वांछित परिणाम पाने, लोगों को संगठित करने, संचालित करने, उनके जीवन को प्रभावित करने, आर्थिक वास्तविकता से अवगत करने, सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने अथवा इसमें होने वाले परिवर्तन से अवगत कराने के लिए किया जाता है। ये रणनीतियाँ, युक्तियाँ तथा कौशल भिन्न-भिन्न प्रकार के होते है। यह लक्ष्य समूह, नीति निर्माता, नौकरशाह, जनता, मीडिया आदि के साथ काम करते समय भिन्न-भिन्न होती है। सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया में सहयोग, प्रेरणा, बातचीत, मध्यस्थता, दृढ़ विश्वास, टकराव तथा विवादों का सुलझाव शामिल होता है और प्राधिकरण के विरूद्ध अपने असंतोष को दर्शाने के उद्देश्य से धरना, भूख हड़ताल, विरोध मार्च, बहिष्कार, नारो के प्रदर्शन आदि अन्य रणनीतियों तथा युक्तियों का सहारा लेना पड़ सकता है।

सामाजिक क्रिया के दौरान महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए विभिन्न कौशलों का प्रयोग करते हुए सामाजिक स्थिति का विश्लेषण किया जाता है। प्रथम अवस्था में समाज की मुख्य धारा से पिछड़े समूह की समस्याएँ और मुख्य चिंताएँ क्या हैं? इनको ढूँढने का प्रयत्न किया जाता है। नीति की रूपरेखा तथा नीतिगत उद्देश्यों के क्रियान्वयन में क्या अंतर है? नीति तथा कार्यक्रम के स्तर पर कौन से परिवर्तन संभव हो सकते हैं? समाज की

मुख्यधारा से वंचित समूह इन अंतरों से कैसे प्रभावित होगें? विधान, विनियम, कानूनी निर्णय, संस्थागत, व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों के प्रकार विश्लेषण के लिए आवश्यक उपकरण जैसे-समस्या वृक्ष, भौतिक संसाधन मानवीय तथा वित्तीय विश्लेषण, सहभागी ग्रामीण समीक्षा (पी.एल.ए. तकनीके) स्वॉट (SWOT) (दृढ़ता, दुर्बलता, अवसर, चुनौतियाँ (Strengths, Weakness, Opportunity and Threats) आदि पहली अवस्था में अत्यंत उपयोगी हो जाते हैं। सामाजिक क्रिया के संचालन के लिए आवश्यक गठबंधन बनाने, भागीदारियों को मजबूत बनाने, संसाधनों के वितरण, नेटवर्क, प्रेरण एवं संप्रेषण केमाध्यम से विवादों को हल करने, आंतरिक असंतोष का निदान करने आदि संबंधित पक्षों के लिए आवश्यक रणनीतियाँ अपनाई जाती है। यदि एक अवस्था में सफलता या असफलता हमें मिलती है वहीं इस दूसरी अवस्थामें हमें अपनी युक्तियाँ और रणनीतियाँ तैयार करने में मदद मिलती है। इस अवस्था में प्रभावी ढंग से प्रयोग की गई सम्प्रेषण रणनीतियाँ सामाजिक क्रिया की सफलता को विश्लेषित करने में सहायक होती हैं। लाए गए परिवर्तन को सुनिश्चित करने एवं सामाजिक क्रिया में हुई मध्यस्थता का मूल्यांकन करने के लिए विभिन्न प्रकार की रणनीतियों की आवश्यकता होती है।

3.3 सामाजिक क्रिया में रणनीतियाँ तथा युक्तियाँ

सामाजिक क्रिया को संगठित करने के लिए या चलाने के लिए कुछ आवश्यक रणनीतियों तथा युक्तियों की आवश्यकता होती है, क्योंकि इनके बिना हम लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाएँगे। सामाजिक क्रिया की रणनीतियों एवं युक्तियों पर व्यापक प्रकाश डालने की कोशिश इस इकाई मे की जाएगी, लेकिन उससे पहले हम रणनीति एवं युक्ति के अर्थ को जानने की कोशिश करेंगे।

शब्दकोश में रणनीति का अर्थ योजना /नीति/ दृष्टिकोण/नीति/ चतुराई से होता है। इसी प्रकार युक्ति का अर्थ चाल/दाँव/पेच आदि से होता है। अगर इनको देखा जाए तो लगता है कि दोनों एक जैसे हैं। फिर भी 'रणनीति' एक व्यापक शब्द है जो सामाजिक क्रिया के रूप या मॉडल के बराबर या समकक्ष होती है। जबकि युक्ति का तात्पर्य आवश्यक सामाजिक क्रिया से हैं। सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया को रणनीतियाँ तथा युक्तियाँ ऊर्जा प्रदान करती है। जो रणनीतियाँ अभी उपलब्ध है एवं जो संभावित उपलब्धियाँहैं उनकी सार्वभौमिकता हेतु आम सहमति बनाना कठिन है। जब हम सामाजिक क्रिया की विभिन्न अवस्थाओं में समय बदलने के साथ नई प्रकार की रणनीतियों तथा युक्तियों का प्रयोग करते हैं तब सामाजिक क्रिया की रणनीति को समाज कार्य के विद्वान किस नजरिये से देखते हैं? इसको समझने की कोशिश करें। 1984 में देसाई नें सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए आवश्यक तीन प्रकार की रणनीतियों का वर्णन किया है जो इस प्रकार हैं-

- **सहयोगवादी रणनीति : -** सहयोगवादी रणनीति इस सोच पर आधारित हैं कि संघर्ष का रास्ता अपनाये बिना भी समाज में सामाजिक बदलाव लाए जा सकते हैं, क्योंकि सत्ता में बैठे लोग इसके (संघर्ष के) बिना बदलाव के लिए तैयार हो जाते हैं। कारण यह है कि यह होने वाला बदलाव इस या उस बुराई से कम होता है। व्यवस्था का कुछ हिस्सा प्रारंभ में अडियल रुख अपना सकता है लेकिन फिर भी सत्ता में बैठे लोग उन कारणों की स्वयं पहचान कर लेते हैं जिससे उस संस्थाका अस्तित्व ही खतरे में दिखाई पड़ता हैं या उनके लक्ष्यों की उपलब्धि खतरे में हो या वे असंतुष्टहो या उनका मोह भंग हो गया हो। इस कारण वे बदलाव के लिए राजी हो जाते हैं।
- **लेन-देन, बातचीत और वकालत :-** जब किसी व्यवस्था में अडियलपन का रूख आ जाता है तो वहाँ हल्का-सा दबाव जरूरी हो जाता है। देसाई का कहना है कि इसमें बातचीत और लेनदेन की तकनीक

शामिल हो सकती है। मीडिया के माध्यम से वकालत और प्रचार के रास्ते से बदलाव के लक्ष्य को लेकर दिक्कत हो सकती है। बड़ी संख्या में ये समुदाय के विचारों से लक्ष्य समूह को अलग-थलग करने की कोशिश हो सकती है। इस दौरान न इस्तेमाल होने वाली तकनीक, आपसी सामान्य व्यवहार से कुछ हद तक दूर हो जाती है तथा हालत को नाटकीय ढंग से तैयार करने वालेसत्याग्रह मोर्चा आदि तरीकों से जनमत को विकसित कर लेते हैं।

- **संघर्षवादी:-** संघर्षवादी रणनीति के तहत अक्सर यह माना जाता है कि विचारों और स्थितियों में बुनियादी अंतर होता है इसलिए जबरदस्तदबाव का इस्तेमाल आवश्यक हो जाता है। मसलन इसके लिए प्रदर्शन, सविनय अवज्ञा या सीधी कार्रवाई आवश्यक हो जाते हैं। संघर्षकी अतिवादी अभिव्यक्तियों का मतलब मिटा देना, खत्म कर देना, हरा देना या अधीनता है। लेकिन देसाई ने इनका जिक्र नहीं किया है क्योंकि ये समाजकार्य के शिक्षा दर्शन से मेल नहीं खाते।

इसके अलावा लीज (1972) ने सामाजिक क्रिया की रणनीतियों का वर्गीकरण किया है जो निम्नानुसार है:

- **सहयोग –समझौता :-** लीज का कहना है कि शक्ति समीकरण में बदलाव लाने के लिए हमेशा संघर्षपूर्ण रणनीतियों का सहारा नहीं लिया जा सकता। प्राधिकारी-प्रति क्रियात्मक हो सकते हैं और वंचित समूहों के साथ संसाधनोंका समान बँटवारा करने के लिए आवश्यक परिवर्तन ला सकते हैं। वर्तमान सामाजिक नीति में आवश्यक बदलाव लाने के लिए सामाजिक कार्यक्रम स्थानीय अधिकारियों एवं अन्य प्राधिकारियों अथवा एजेंसियों से सहयोग करता है। सहयोग की नीति में शांतिपूर्ण प्रदर्शन एवं उपायों के माध्यम से सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाया जा सकता है। ऐसे उपाय शिक्षा प्रत्ययता, प्रदर्शन तथा प्रयोग हैं। समझौता वहाँ उपयोगी है जहाँ यह प्रयास हो कि मुद्दा कैसे एवं किस तरह हल होना चाहिए? या फिर यह उम्मीद हो जाए कि एक बार मुद्दे के तय हो जाने पर वह समझौते के स्तर पर पहुँच जायेगी।
- **प्रतिस्पर्धा या होड़ :-** प्रतिस्पर्धा या होड़ वहाँ प्रासंगिक होता है जहाँ हितों को लेकर टकराव या संघर्ष हो। यहाँ परिवर्तन एजेंट को उन युक्तियों का सहारा लेना पड़ता है जो पूरी तरह से प्रतीकात्मक न हो बल्कि दबाव के जरिए परिवर्तन लाए। प्रतिस्पर्धी पक्ष किसी कारगर समझौते पर पहुँचने के लिए वार्ता करने, दबाव ड़ालने, सौदेबाजी के लिए सामान्य तौर पर स्वीकार्य अभियान की युक्तियों का प्रयोग करते हैं।
- **विघटन :-** विघटन उस स्थिति में होता हैं जब समझौते की संभावना न के बराबर या बहुत कम होती है। इसमें क्रिया के अलग-अलग तरीके जैसे हड़ताले, शांतिपूर्ण प्रदर्शन, बहिष्कार, उपवास, कर अदायगी न करना, धरना, आदि शामिल है। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते है कि इसमें शांतिपूर्ण-प्रदर्शन से लेकर क्रांतिकारी हल चल तक शामिल होती है।

ग्रैबियल ब्रिटों ने 1984 में गांधीवादी मॉडल का प्रयोग लोगों को सामाजिक क्रिया के लिए एकजुट करने तथा रणनीतियों को पहचानने के लिए किया।

- **विश्वसनीयता बढ़ाना:** इसका मकसद सामाजिक मूल्यों के आधार पर नेतृत्व, प्रायोजकों और इसमें हिस्सेदारी कर रहे लोगों में बेहतर छवि बनाना हैं जिससे कि विश्वसनीयता बढ़ाया जाय तथा लोगों को सामाजिक क्रिया हेतु तैयार किया जा सके।

- **वैधता :** आंदोलन के उद्देश्यों को नैतिक तौर पर सही साबित करने के लिए तथा कार्रवाई को सामाजिकता तथा नैतिकता के स्तर पर स्वीकार एवं वैध कराने के लिए वैधता की आवश्यकता पड़ती है।
- **नाटकीकरण :** नाटकीकरण का प्रयोग भावनात्मक अपीलों, जोरदार भाषणों, मीडिया को भरोसे में लेते हुए जन समर्थन हासिल करने हेतु बेहतर तरीके अपनाते हुए धारदार नारों, जुलूसों, विरोध प्रदर्शनों और इसी तरह की और तकनीकों के प्रयोग से लोगों को एकजुट करना होता है जिससे कि लोग सामाजिक क्रिया में भाग ले सकें।
- **बहुआयामी रणनीतियां :** बहुआयामी रणनीतियों से मतलब क्रिया के समन्वित कार्यक्रम से है। जैसे वकालत, शिक्षा, समझाना-बुझाना, कार्रवाई को अंजाम देना, दबाव बनाना वगैरह इससे सामाजिक क्रिया को बल मिलता है।
- **दोहरी सोच** : दोहरी सोच से मतलब एक ऐसी प्रति व्यवस्था को विकल्प के तौर पर तैयार करना है या ऐसी व्यवस्था को फिर से जिंदा करना है जो ढह रही है या जो ढह चुकी है। बशर्ते वहव्यवस्था लाभकारी हो तो एक रचनात्मक प्रतिक्रिया योजना का प्रस्ताव मौजूदा व्यवस्था के विरोध में होगा। अगर मौजूदा व्यवस्था को अन्यायी, शोषक और अनचाही माना जाए।
- **बहुस्तरीय कार्यक्रम :** बहुस्तरीय कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कार्यक्रमों को विकसित किया जाता है ताकि सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए लोगों को एकजुट किया जाए और राजनीतिक आजादी हासिल हो सके। इसमे ऐसे कार्यक्रम बनाए जाते हैं जिससे लोगों को लगे की यह कार्यक्रम उनका है इसमें हर एक का सुझाव लिया जाता है। इसके अंतर्गत नाटक, कविता लेखन, जागरूकता कार्यक्रम,पोस्टर ,नारे,इत्यादि हो सकते हैं।

सिद्दीकी(1984) ने भी रणनीतियों तथा युक्तियों की चर्चा की हैं। सर्वोदय रणनीति में इस्तेमाल हो रहे स्तरों का वर्णन किया जा रहा है जो गाँधी दर्शन की सर्वोदय सामाजिक आन्दोलन से प्रेरित है इस प्रकार है-

1. प्रचार
2. परिचय
3. अध्ययन या सर्वे
4. संघ
5. सेवा
6. प्रतिकार या विरोध
7. समुदाय सेवा का निर्माण कार्य
8. बदलाव के लिए माहौल बनाना

पाँच से लेकर आठ तक के स्तर बताते हैं कि रचनात्मक समाज सेवा और शांतिपूर्ण अहिंसा ये समाज को बदलने वाले गांधीवादी तरीके बुनियादीस्तर के हैं। दरअसल, गांधीवादी कार्यकर्ता 'रचनात्मक कार्यक्रम' की जोरदार वकालत करते हैं। इन कामों में आपातकाल के समय राहत काम जैसे बाढ़, सूखा या बुनियादी शिक्षा, विद्यालय, खादी हस्तशिल्प और अन्य कुटीर उद्योगों को बढ़ावा, शराबबंदी प्रचार-प्रसार के अलावा हरिजनों और महिलाओं के बीच समाजकार्य शामिल है।

अहिंसक सामाजिक क्रिया मॉडल के बारे में दासगुप्ता(1984) ने कहा था, कि अहिंसक सामाजिक कार्रवाई भी संघर्ष और विरोध का रास्ता इस्तेमाल करती है। लेकिन उसका उदेश्य दुश्मन को 'हराना' नहीं, उसे 'जीतना' होता है। वहाँ साध्य किसी व्यक्ति को तोड़ना या बर्बाद करना नहीं होता। चाहे वह व्यवस्था के किसी भी पायदान पर हो। वहां तो उद्देश्य व्यवस्था को बदलना होता है। उसके शरीर को बचाना होता है। उस विरोधी के मन को बदलना ही उद्देश्य होता है। वह अपना ही भला नहीं सोचता उस विरोधी के भले के लिए भी सोचता है। उसका उद्देश्य महज लड़ाई को जीतना नहीं होता बल्कि नये मूल्य और आदर्श स्थापित करना होता है। उससे एक नये समाज की नींव रखी जाती है। अहिंसक लड़ाई में साधन ही साध्य होता है और साध्य ही साधन होता है। अहिंसक कार्रवाई में दोनों एक-दूसरे से जुड़े होते है। सिर्फ साध्यपाने के लिए साधन को सही नहीं ठहराया जा सकता। यहां तो शुद्ध साध्यके लिए शुद्ध साधन का इस्तेमाल करना पड़ता है।

सामाजिक क्रिया के कई विद्वानों ने यह बताने की कोशिश है कि अहिंसक तकनीक से लोगों की सोच को एकजुट कर दबाव बनाने से व्यवस्था में होने वाला बदलाव सीमित नहीं हो जाता है बल्कि यह उग्रवाद, नफरत का सिलसिलेवार इजहार, गुस्सा, नापसंदी, अवमानना आदि इत्यादि को ताकतवर तरीके से दबाने में मदद करता है। ताकत का मतलब हर हाल में हिंसा ही नहीं है।1987 में दासगुप्ता ने इस सिलसिले में 'संघर्ष एवं गैर अहिंसक मॉडल का जिक्र किया है। उनका कहना है, 'हिसा' की जगह 'गैर अहिंसक मॉडल' का विशेषण जान बूझकर किया गया है ताकि अगर वे अहिंसक मॉडल को नकार दें, तो हिंसा के रास्ते पर सहमत हो सकें।

अब चाहे जो वर्गीकरण हो यह याद रखना जरूरी है कि अलग-अलग रणनीतियाँ एक-दूसरे के विरोध में नहीं होती, न ही वे व्यवस्थित आंदोलन का प्रतिनिधित्व करती है। मसलन शांतिपूर्ण प्रदर्शन से लेकर विघटनकारी रणनीतियों को भी लिया जा सकता है तथा कभी-कभी संघर्ष का मॉडल अपनाया जाता है जब अन्य मॉडल नाकामयाब हो जाते हैं। कभी-कभी एक तरह का मॉडल इस्तेमाल तो किया जाता है लेकिन अन्य मॉडल एवं तरीके भी इस्तेमाल कर लेते हैं।

युक्तियां :- सामाजिक क्रिया की परिभाषाओं और उनकीरणनीतियों पर चर्चा से आप समझ गए होंगे कि सामाजिक क्रिया में कई तरह की युक्तियां इस्तेमाल की जाती हैं। कभी-कभी तो मिली-जुली युक्तियाँ भी इस्तेमाल होती हैं। यह प्रयोजकों के दर्शन और विचारधारा से जुड़ी होती हैं। यह दूसरीपार्टियों की इस्तेमाल की गयी तकनीक से भी तय होती हैं और कभी स्थितियां उन्हेंतय करती हैं।

कुछ युक्तियों की तो साफ-साफ पहचान हो गयी है। वे हैं : -

- तथ्यान्वेषण या पड़ताल
- औपचारिक और अनौपचारिक माध्यम का इस्तेमाल करते हुए प्रचार, प्रसार, वकालत।
- शिक्षा: जागरूकता अभियान, अंतर्आत्माकी जागृति।
- स्थापित सांस्थानिक ढाँचे और राजनीतिक प्रक्रियाओं के जरिए समर्थन जुटाना और जनमत बनाना।
- क्रोध, कोप और घृणा को नाटकीय और नए ढंग से अभिव्यक्त करना।
- सहयोग/समझौता
- नारों का इस्तेमाल
- संधिवार्ता या बातचीत, लेनदेन, मध्यस्थता

- विघटन और हल्का बलप्रयोग जैसे विरोध, प्रदर्शन जुलूस, मोर्चा, धरना, हड़ताल, बहिष्कार, अनशन, घेराव आदेशों की अवहेलना, और अलग-अलग तरह के आर्थिक प्रतिबंध।
- भारी बलप्रयोग के तरीके जैसे गैर वैधानिक तरीके और सीधी कार्रवाई।

रणनीति ही युक्तियों को तय करती है। हालांकि सामाजिक क्रिया में संघर्ष और टकराव निहित होता है। लेकिन ज्यादातर सामाजिक कार्यकर्ता या क्रियावादी हिंसा का प्रयोग नहीं करना चाहते। वे यह चाहते हैं कि संघर्ष का हल नैतिक और जन दबाव बनाकर कर लिया जाय वैसे भी ज्यादातर सामाजिक क्रिया व्यवसृथा को पलट देने के लिए नहीं होती बल्कि यह तो व्यवस्था को मानवीय बनाना चाहती है।

3.4 रणनीतियाँ नियोजित करना

सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया में नियोजन एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। नियोजन सामाजिक क्रिया में कौन सी कार्रवाई की जानी है उसका ब्लू प्रिंट (खाका) तैयार करता हैं। सामाजिक क्रिया में नियोजन की अवस्था में प्रस्तुत समस्या के कारणों के बारे में पर्याप्त सूचना एकत्रित करके विश्लेषण किया जाता है। नियोजन प्रक्रिया का आरंभ समस्या की मूल जड़ तथा उसकी पृष्ठभूमि संबंधी सूचना के एकत्रीकरण से होती है। समस्या किस कारण उत्पन्न हुई, उसमें कौन-कौन से कारक भागीदार रहे, समस्या की गंभीरता और सीमा, समाज या समुदाय के वंचित समूह की सामाजिकआर्थिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि क्या रही है? उनके द्वारा अनुभव की आवश्यकता, बिना अनुभव की गई आवश्यकता तथा आकांक्षाएँ क्या है? इन समस्त पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है।

1. **स्थितिगत विश्लेषण :-** यह रणनीति समस्या की प्रकृति की स्पष्ट और व्यापक तस्वीर पेश करती है तथा सामाजिक क्रिया को न्यायोचित ठहराती है। यह राजनीतिक कारकों का समस्या के आधार पर वस्तुनिष्ठ तरीकों से विश्लेषण करती है। यह राजनीतिक कारकों में अनुकूल या प्रतिकूल राष्ट्रीय, क्षेत्रीय नीतियों तथा कार्यक्रमों से संबंधित विधान एवं नियम, स्थानीय सुधार नीतियों एवं उसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करती हैं। यह संस्थागत कारकों जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था तथा समस्या, इसको संभालने की कुशलता एवं उनकी स्थिति का विश्लेषण करती है। आर्थिक तथा वित्तीय संसाधनों का गरीबों पर क्या प्रभाव पड़ता है? उसकी स्थिति का विश्लेषण, अवसंरचना तथा नागरिक सुविधाओं सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में विभिन्न सामाजिक तथा जातीय भाषायी समूह, लैंगिक भूमिकाएँ, धार्मिक तथा जाति व्यवस्था, सामाजिक मूल्य एवं अभिवृत्तियाँ, पर्यावरणीय कारकों जैसे प्राकृतिक संसाधन, भौगोलिक तथा मौसम स्थितियों के बारे में सूचना एकत्रित कर स्थिति का विश्लेषण किया जाता है, ताकि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाया जा सके।
2. **समस्या का विश्लेषण :-** समस्या के विश्लेषण में न केवल समस्या के मूल कारणों का बल्कि इसके विविध प्रभावों का भी विश्लेषण किया जाता है। यह विश्लेषण समस्या के कारकों तथा उसके प्रत्यक्ष कारणों पर आधारित होता है। उदाहरण हेतु किसी गाँवमें जहाँ सवर्ण एवं निम्न जाति के लोग दोनों रहते हैं वहाँ निम्न जाति के लोगों को सुरक्षित पेय जल और शौचालय उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन इसका वास्तविक कारण सवर्णों का निम्न जाति के प्रति द्वेष या जाति भावना न होकर राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का भाव पंचायत स्तर पर हो सकता है। अत: समस्या का विश्लेषण भागीदारी के साथ होना चाहिए न कि व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा की गई बौद्धिक कार्रवाई द्वारा।
3. **संसाधन विश्लेषण :-** संसाधन विश्लेषण के अंतर्गत मानवीय संसाधन, वित्तीय संसाधन भौतिक, सामाजिक, राजनीतिक संसाधनों एवं तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता एवं अनुपलब्धता की स्थिति का

विश्लेषण किया जाता है। संसाधन विश्लेषण के अंतर्गत उन सभी संबंधित पक्षों की भी पहचान की जाती है जिनके पास संसाधन होते हैं। साथ ही जिनके पास संसाधन नहीं होते उन तक संसाधनों को पहुँचाने के लिए सामाजिक क्रिया आरंभ की जाती है। वंचितों एवं शोषितों के विकास के लिए संसाधनों का राजनैतिक पुनर्वितरण आवश्यक होता है।

4. **संबंधित पक्षों का विश्लेषण :-** यह समझौते के केन्द्र बिन्दु को तीव्र करने, आगे की कार्यवाही एवं उसकी रणनीति को तैयार करने में मदद करती है। संबंधित पक्षों केविश्लेषण के अंतर्गत संबंधित समूहों जैसे लक्षित समूह, प्रत्यक्ष लाभान्वितों तथा अंतिम लाभान्वितों के बारे में सामाजिक क्रिया कार्यकर्ता सूचना उपलब्ध कराता है। साथ ही यह तथ्य भी विश्लेषित करता है कि ये समूह अनुकूल है या प्रतिकूल। समस्या से प्रभावित उन विभिन्न पक्षों जैसें वंचित समूह जो समस्याद्वारा प्रभावित होता है, या वैसे समूह जो स्थिति को प्रभावित करते हैं जैसे, राज्य, अभिजात वर्ग, दमनकारी समूह आदि इन सबका विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक क्रिया रणनीति को नियोजित करने में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या प्रिंट मीडिया उपयोगी एवं सहयोगी होते हैं। प्रशासक अथवा नेता विवादित भागीदार हो सकते है या मध्यस्थता कर सकते है। विभिन्न संबंधित पक्षों के हितों तथा उम्मीदों की पहचान करना, तथा उनकी क्षमताएँ क्या है तथा वे क्या योगदान कर सकते हैं इन सभी संबंधित पक्षों का विश्लेषण किया जाता है।
5. **स्वॉट** (SWOT) **दृढ़ता, दुर्बलता, अवसर तथा चुनौतियों का विश्लेषण :-** यह विश्लेषण संबंधित पक्षों के विश्लेषण के साथ-साथ चलता है। यह लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए तैयार की गई रणनीति की मध्यस्थता प्रक्रिया में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इस स्वॉट विश्लेषण में सामाजिक कार्यकर्ता /नेता/सुविधा कर्ता यह विश्लेषण करते हैं कि उनकी उनके विरोधियों की तुलना में शक्ति तथा दुर्बलता क्याहै? उनके लिए कौन से अवसर उपलब्ध हैं तथा इनकी चुनौतियाँ व बाध्यताएँ क्या हैं? यह मूल रूप से ऐसा विश्लेषण होता है जिसमें यह देखने की कोशिश की जाती है कि लागत एवं लाभ क्याहै ? इसके बाद मध्यस्थता की रणनीति तैयार की जाती है।

3.5 प्रबंधकीय/संचालन रणनीतियाँ

प्रबंधकीय या संचालन रणनीतियाँवंचित समूह को, दमन व शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने में मदद करती है। प्रबंधकीय संचालन रणनीतियों का लक्ष्यसमाज के वंचित वर्गो के जीवन को सुधारने के लिए संसाधनों तथा शक्ति का पुनर्वितरण करना है। साथ ही साथ इसका लक्ष्य उन लोगों को भी प्रभावित करना है जो सामाजिक संरचना में आर्थिक, सामाजिक, तथा राजनैतिक रूप से मजबूत है। प्रबंधकीय रणनीतियों में मुख्यत: शामिल होती है जनमत बनाना, सहमति बनाना, विरोध ,धरना, हड़तालें, प्रदर्शन, हस्ताक्षर अभियान तथा अनेक विधायी प्रयास, जिससे सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक संरचना मेंव्यापक परिवर्तन लाकर सामाजिक असमानता को कुछ कम किया जा सके।

सामाजिक क्रिया कार्यकर्ता एक वकील या अधिवक्ता के रूप में सामाजिक क्रिया के प्रमुख रणनीतियों का संयोजक होता है जिसका लक्ष्य सामाजिक व्यवस्थाओं में बदलाव लाना तथा विभिन्नसामाजिक संस्थाओं के बीच शक्ति तथा राजनीतिक संबंधों कोप्रभावित करना होता है। यह जनता के कमजोर वर्गो की तरफ से आवाज़ उठाता है जिनके पास राजनीतिक शक्तियों तथा आर्थिक संसाधनों की कमी होती है जिनकी आवाज़ उच्च अधिकारियों तक पहुँचने से पहले दम तोड़ देती है तथा जो नौकरशाहों की दया पर निर्भर रहते हैं। कार्यकर्ता उनकी निर्भरता को कम करता है। अधिवक्ता की सफलता रणनीतियों, युक्तियों, कार्यकर्ता एवं नेतृत्वकर्ता की क्षमताओं, समस्या के बारे में

ज्ञान, नीतियों तथा मीडिया के उपयुक्त प्रयोग पर निर्भर करता है। अधिवक्ता मध्यस्थता का एक शक्तिशाली उपकरण होता है। अधिवक्ता का आरंभ कोई भी कर सकता हैं। अनेक सफल अधिवक्ता अभियान ज्ञानी और प्रबुद्ध लोगों द्वारा चलाए गए है जो इसके लिए प्रतिबद्ध हैं।

अधिवक्ता के माध्यम से एकजुट होने का अवसर प्रारंभ होता है। जनमत तैयार करने के लिए विभिन्न समूहों तथा समुदायों को चर्चा के लिए प्रेरित किया जा सकता है। अधिवक्ता प्रक्रिया के रास्ते संबंधित मुद्दे एवं उनके संसाधनों का पता चलता है लोगों को जो समस्याएँ प्रभावित करती हैं, उनके प्रति एक समझ विकसित होती हैं। अधिवक्ता प्रक्रिया विभिन्न स्तरों पर की जाती है। अत: इन स्तरों एवं व्यवस्थाओं के बारे में ज्ञान महत्वपूर्ण होता हैं। व्यवस्था की संरचना औपचारिक एवं अनौपचारिक हो सकती है। व्यवस्था के बारे में केवल ज्ञान का होना ही आवश्यक नहीं होता बल्कि व्यवस्था को प्रभावित करने वाली रणनीतियाँ तथा युक्तियाँ भी अपेक्षित होती है। सामाजिक क्रिया की रणनीतियों को बनाते समय व्यक्ति को यह आकलन करने में भी सक्षम होना चाहिए कि यदि विरोधी पक्ष समझौते की कोई काट निकाल लेता है तो अगली रणनीति या अगला कदम क्या होगा?

अधिवक्ता के विभिन्न स्तर हो सकते है- निजी स्तर, पारिवारिक स्तर, सामुदायिक स्तर, क्षेत्र स्तर, राष्ट्रीय स्तर तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निजी स्तर पर दैनिक जीवन के मुद्दों को उठाया जाता है। पारिवारिक स्तर पर बाल-शोषण, वृद्धों का शोषण, लैगिंक भेदभाव, पारिवारिक संसाधनों का असमान वितरण आदि हो सकता है। सामुदायिक स्तर पर जातीयता, धर्म, वंश, समुदाय से जुड़ा, कोई मुद्दा जो समुदाय को प्रभावित करता है, हो सकता है। क्षेत्र स्तर पर स्वास्थ्य, सफाई, जल, सामाजिक एवं आर्थिक सुविधायें, मूलभूत सुविधाएं तथा विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक एवं अप्रशासनिक मुद्दे हो सकते हैं। राज्यस्तर के अंतर्गत विभिन्न योजनाएँ ,कार्यक्रम नीतियाँ भूमि अधिकार, समानता से संबंधित मुद्दे उठाए जाते है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संधियाँ जैसे विश्व व्यापार संधियाँ, वैश्विक ऋण, हथियारों का सौदा, अवैध व्यापार, सीमा तथा पर्यावरण से संबन्धित मुद्दे हो सकते हैं। दीर्घावधि तथा टिकाऊ परिवर्तनों के लिए अनेक स्तरों पर अधिवक्ता की जानी चाहिए क्योंकि एक स्तर पर लिए गए निर्णय, दूसरे एवं अन्यस्तरों पर भी लोगों को प्रभावित करते हैं। लोगों की सक्रिय भागीदारी से सामाजिक क्रिया की विश्वसनीयता बढ़ती है जो कुशल नेतृत्व एवं संचालन के लिए महत्वपूर्ण होती है।

समाज के वैसे वर्ग जो अभी भी मूलभुत सुविधाओं से वंचित,हैंऐसे लक्ष्य समूह जो आज भी लोकतंत्र में अपने अधिकार से वंचित है, इन वर्गों को यह सूचित करने का प्रयास किया जाता है कि लोकतंत्र में सभी को समान अधिकार मिलना चाहिए नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य होता है। इस देश का जिम्मेदार नागरिक होने के नाते हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने अधिकार एवं कर्तव्य से जुड़े मुद्दों के प्रति सचेत रहे। वर्तमान में जो सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से पिछड़े हुए हैं वे अधिकारों का उल्लंघन करते नजर आ रहे हैं क्योंकि न चाहते हुए भी उन्हें मजबूरी में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इनका उल्लंघन करना पड़ता है सिर्फ वे लोग जो सामाजिक कार्यकर्ता या ऐसे सेवा प्रदाता है जो समस्याओं को अधिकारों के नजरिये सेदेखते हैं तथा उसको सुलझाने में लगे रहते हैं। मुख्यत: कुछ ऐसे अधिवक्ता है जो सामाजिक क्रिया की रणनीतियों एवं प्रबंधन के सफल संचालन हेतु उपयोगी है तथा इनकी जानकारी एक सामाजिक कार्यकर्ता एवं सामाजिक क्रियावादी को होना आवश्यक होता है।

विधायिका से संबंधित अधिवक्ता :- विधायिका से संबंधित अधिवक्ता का उद्देश्य विधायी प्रकिया को प्रभावित करना, नये कानून बनाने के लिए सिफारिश करना, कानूनों में संशोधन कराना तथा साथ ही ऐसे अध्यादेश जो प्रस्तावित हैं या स्वीकृत हो चुके हैं या ऐसे अभिलेख जो कानून के कार्यान्वयन के विरूद्ध होते हैं, उनके विरूद्ध

आवाज़ उठाना है। संसद अथवा विधान सभा में यह विधायी प्रक्रिया संपन्न होती है। विधायी प्रक्रिया के अंतर्गत प्रश्नकाल जो सदन का पहला घंटा होता है लोकसभा तथा राज्यसभा में प्रश्न पूछने तथा जवाब देने के लिए सुरक्षित रखा जाता है। पहले घंटे तथा सदन के अगले सत्र का मध्यशून्य काल कहलाता है यह भी विधायी प्रक्रिया में शामिल होता है इसके अतिरिक्त स्थगन प्रस्ताव, संसदीय विशेषाधिकारों का उल्लंघन, ध्यान आकर्षित प्रस्ताव याचिका इत्यादि को विधायी प्रक्रिया के लिए इस्तेमाल किया जाता है। निश्चित आचार संहिता, विभिन्न प्रकार के नियम आदि संसद भवन में निश्चित होते हैं, जिनका हमें पालन करना पड़ता है। विधायी प्रक्रियाओं की जानकारी तथा इनकी शक्तिशाली कार्यप्रणाली एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में अधिवक्ता समूह के लिए कार्य करती है।

नौकरशाही अधिवक्ता :- कभी-कभी नौकरशाही तथा लालफीताशाही जैसी व्यवस्था गरीबों की सहायता के लिए बनाये गये नीतियों एवं कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में काफी बाधा उत्पन्न करते हैं। जिसके कारण नौकरशाही तथा लालफीताशाही के विरूद्ध सामाजिक प्रतिक्रिया की आवश्यकता पड़ती है। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 ने पारदर्शितापूर्ण उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने एवं नौकरशाही के वैसे पहलुओं जो समाज में नकारात्मक प्रभाव ड़ालते हैं के विरूद्ध आवाज उठाने का एक सशक्त माध्यम बन गया है।

न्यायिक अधिवक्ता :- न्यायिक अधिवक्ता का मुख्य उद्देश्य उन कार्यक्रमों एवं नीतियों को चुनौतीदेना है जो राज्य के अधिकांश गरीब जनता या वंचित समूह के विरूद्ध होता है। जनता के हित की रक्षा करना, जनहित याचिका दायर करना तथा संवैधानिक उपचारों के अधिकारों के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय से हस्तक्षेप की माँग करना तथा न्यायिक प्रक्रिया के साथ समानता, न्याय आदि की प्राप्ति करना भी शामिल होता है।

अधिवक्ता के रूप में मीडिया :- सामाजिक दृष्टिकोण से देखें तो मीडिया अधिवक्ता सबसे लोकप्रिय रणनीति है। सामाजिक क्रिया के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए मीड्यिा का उपयोग मीडिया अधिवक्ता कहलाता है। वर्तमान समय में प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रॅानिक मीडिया, सोशल साईट नेटवर्क आदि ऐसे माध्यम हैं जिनसे अधिवक्ता की भूमिका निभाई जाती है। रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र, नुक्कड़ नाटक, कहानियाँ, इन्टरनेट तथा ऐसे ही अन्य माध्यमों का उपयोग अधिवक्ता के तौर पर किया जाता है। इसके माध्यम से न केवल नीति निर्माण में लगे लोगों बल्कि नौकरशाही व्यवस्था पर दबाव डालने जनमत तैयार करने, सामाजिक क्रिया के उद्देश्य तक पहुँचने के लिए प्रत्येक आदमी को संचालित करने व उनको शामिल करने हेतु किया जाता है।

सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए संप्रेषण या संवाद की आवश्यकता होती है तथा यह सामाजिक क्रिया में संप्रेषण रणनीति के रूप में समूहबद्ध की गई है। इसका इस्तेमाल विभिन्न पक्षों के संबंध में जानकारी जुटाने, संचालित करने, अधिवक्ता करने, चर्चा करने, सौदेबाजी करने आदि के लिए किया जाता है। सामाजिक क्रिया की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि संबंधित पक्षों के साथ मुद्दों पर कैसे तथा किस प्रकार का संवाद स्थापित किया गया है? उपयुक्त रणनीतियों के उपयोग से वंचित वर्ग एवं वंचित समूह का संचालन सुनिश्चित होता है। सामुदायिक विकास कर्ता को सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया के दौरान सौहार्द निरूपण से लेकर समस्या के विभिन्न आयामों, समस्या के कारणों, निहितार्थों की खोज करना, वंचित समुदाय की समस्या और वैकल्पिक समाधानों के बारे में सूचित करने, अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित करने, विवादों को सुलझाने, लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहित करने, बातचीत करने, तर्कपूर्ण वाद विवाद में सम्मिलित होने तथा सामाजिक क्रिया के उद्देश्यों के पूरा होने के बाद सामाजिक क्रिया के प्रत्याहार तक भिन्न-भिन्न रणनीतियों को अपनाना पड़ता है।

संप्रेषण की प्रक्रिया का अर्थ सूचना साझा करना, संदेश भेजना, प्राप्त करना तथा देना होता है। संदेश मौखिक या लिखित या दोनों का सम्मिश्रण हो सकता है। संदेश की व्याख्या में कौशल होता है जो लोगों को प्रेरित और

संचालित करने अथवा दमनकारी व्यवस्था के साथ तर्क करने के लिए हो सकता है। सामाजिक क्रिया की सफलता के लिए सामाजिक कार्यकर्ता संप्रेषण का प्रयोग स्थिति के मुताबिक उपयुक्तशब्दों के रूप में करता है क्योंकि उसका ज्ञान उसको होता है। संदेश को भेजने के लिए अनेक तरीकों जैसे –पोस्टरों तथा बैनरों, नुक्कड नाटक, समूह बैठकों, रेडियों, टेलीविजन, समाचार पत्रों, ई-मेल तथा इन्टरनेट का इस्तेमाल किया जा सकता है। संचार के माध्यम का पर्याप्त चयन विभिन्न मानदण्डों पर आधारित होता है। जैसे- लोगों तक पहुँचने के माध्यम की क्षमता, सहयोग माँगने की क्षमता, लागत की प्रभावोत्पादकता आदि। अच्छा संदेश मुख्य बिंदु पर केन्द्रित, आसानी से याद करने योग्य और उद्धरणीय हो। तुकबंदिया गाने, नारे इत्यादि अक्सर लोगों का ध्यान खींचते है और स्पष्टता से संचालन में मदद करते है।

3.6 सामाजिक क्रिया में कौशल

सामाजिक कार्यकर्ता को जो सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया में भाग लेते हैं, इन क्रियाओं को संपन्नकरने के लिए कुछ निपुणताओं या कौशलों की आवश्यकता होती है जो सामाजिक क्रिया के नियोजन के दौरान सामाजिक कार्यकर्ता की मदद करती है। सामाजिक क्रिया के कौशल निम्नानुसार हैं:-

१) **संबंधस्थापित करने का कौशल :-** सामाजिक कार्यकर्ता के पास व्यक्तियों तथा समूहों के साथ संबंध स्थापित करने की कुशलता होनी चाहिए। उन्हें सेवार्थियों के साथ व्यावसायिक संबंध बनाने और अनुरक्षित करने में सक्षम होना चाहिए। सेवार्थी समूह के बीच किसके पास नेतृत्व का गुण हैं, उसको पहचानने की क्षमता, सामाजिक कार्यकर्ता के पास होनी चाहिए तथा इन गुणों का उपयोग सामाजिक क्रिया में किस प्रकार हो सकता है? इसका ज्ञान होना आवश्यक है। समूह के बाहर एवं भीतर के विवादों से प्रभावपूर्ण तरीके से निपटने में सक्षम होना चाहिए। समाज में, तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों को पहचानने एवं उसका निदान स्थिति के गंभीर होने से पहले तथा दमन करने की निपुणता होनी चाहिए। लोगों की सहायता करने के लिए समाज मे कार्यरत विभिन्न सरकारी एवं गैरसरकारी संगठनों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने में कुशल होना चाहिए।

२) **संप्रेषण कौशल :-** संप्रेषण कौशल सामाजिक क्रिया के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। स्थानीय संगठनों तथा नेताओं के साथ प्रभावपूर्ण जनसंपर्क स्थापित करने की निपुणता सामाजिक कार्यकर्ता में होनी चाहिए। उन्हें प्रभावशाली भाषण देने एवं इसके लिए लोगों को पहचानने की क्षमता होनी चाहिए। मीडिया को लक्षित समूहों के साथ संवाद स्थपित करने के लिए तैयार करने में निपुण होना चाहिए। विभिन्न समूहों के अनुकूल कार्यक्रम बनाने एवं उसको लागू करने में निपुण होना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता को जन मीडिया तथा विविध समूहों के अनुकूल लोकमूल्यांकन करने और इसका इस्तेमाल करने में निपुण होना चाहिए। संप्रेषण कौशल का उपयोग नारे बनाने, प्रेरक गीत तैयार करने, जनसमूहों के कुशल संचालन के लिए भाषण तथा सूचना शिक्षा संचार सामग्री आदि तैयार करने के लिए किया जाता है। सामाजिक कार्यकर्ता में स्पष्ट रूप से इस आवश्यक कौशल का ज्ञान होना चाहिए जिससे वह सरल वार्ता आदि कर सकें।

३) **विश्लेषण एवं शोध से संबंधित कौशल-** सामाजिक क्रिया में भाग ले रहे सामाजिक कार्यकर्ताओं को सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक समस्याओं इत्यदि के वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने की क्षमता होनी चाहिए। उन्हें सेवार्थी समूह की आवश्यकताओं तथा समस्याओं की पहचान करने में सक्षम होना चाहिए। इन्हें सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करने, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, विचारधारात्मक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय पहलुओं पर समस्यामें बढ़ोतरी करने वाले कारकों के प्रभावों का विश्लेषण करने में

सक्षम होना चाहिए। उन्हें शोध करने तथा शोध अध्ययन के संभावित प्रभावों को समझने में सक्षम होना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ता के पास यह कौशल रहे कि वे समुदाय के लोगों को अपनी आवश्यकताओं के बारे में बिना हिचकिचाएं बोल सके और उनकी प्राथमिकता तय कर सके। सामाजिक कार्यकर्ता को समुदाय के लोगों पर सामाजिक स्थिति या समस्याओं के बारे में अपनी खुद की विचार या समझ नहीं थोपनी चाहिए।

४) **मध्यस्थता कौशल :-** सामाजिक कार्यकर्ता में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह सेवार्थी समूह की समस्या से निपटने के लिए व्यावहारिक मध्यस्थता रणनीति तैयार कर सके। सामाजिक क्रिया के दौरान प्राधिकारियों के साथ टकराव अपेक्षित होता है इसलिए सेवार्थी समूह को विभिन्न विकल्प उपलब्ध कराने चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ताओं को धरनों, बहिष्कारों, हड़तालों जैसे कदम उठाने से पहले उसके दुष्परिणामों से समुदाय को अवगत करा देना चाहिए। कार्यकर्ता को समुदाय के लोगों के बीच आवश्यक परिवर्तन लाने हेतु असंतोष तथा भावनात्मक उद्देश्य की अनुभूति, उत्साह तथा साहस का वांछित स्तर अधिक समय तक बनाएँ रखने में सक्षम होना चाहिए क्योंकि लक्ष्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने से पहले समूह संचालन की विफलता कम हो सके। सामाजिक कार्यकर्ता को धैर्य एवं शांति बनाए रखने में सक्षम होना चाहिए क्योंकि उन्हें सेवार्थी समूह के भावनात्मक आवेग का सामना करना पड़ सकता है। मध्यस्थता प्रक्रिया का विकास आवश्यक संसाधनों तथा समुदाय के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

५) **प्रबंधकीय कौशल :-** सामाजिक कार्यकर्ता के पास प्रबंधकीय कौशल का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें विभिन्न समूहों तथा स्थानीय नेताओं के साथ समन्वय व सहयोग करने में सक्षम होना चाहिए, जिससे सेवार्थी समूह को अपेक्षित मध्यस्थता के लिए एकजुट किया जा सके। नीतियाँ तथा कार्यक्रम बनाने, कार्यक्रम नियोजन, समन्वय, रिकार्डिंग, बजटिंग तथा विभिन्न रिकार्ड का अनुरक्षण करने में कुशल होना चाहिए। सामाजिक कार्यकर्ताओं को मानवीय तथा भौतिक संसाधनों की निगरानी करने तथा लक्षित समुदाय के कल्याण एवं विकास के लिए उसकी प्रभावी उपयोगिता कैसे हो? का भी कौशल होना चाहिए।

६) **प्रशिक्षण कौशल :-** सामाजिक कार्यकर्ता को प्रशिक्षण कौशल का ज्ञान होना चाहिए क्योंकि उसे स्थानीय नेताओं तथा जो नेता चिन्हित किए गए हैं उन्हें जनसमूह का संचालन संभालने तथा विभिन्न अधिकारियों से टकराव हेतु प्रशिक्षित करने में कुशल होना चाहिए। सामाजिक, क्रिया के लिए उठाये गए मुद्दे तथा टकराव प्रक्रिया समेत मध्यसृथता कैसे की जाती है तथा स्थानीय स्तर पर चयनित लोगों को प्रशिक्षित करने में सक्षम होना चाहिए। जनमत तैयार करने तथा लोगों की पहचान कर सामजिक क्रिया में शामिल करने के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। बिना हिंसा का सहारा लिए सामाजिक क्रिया की रणनीतियों तथा युक्तियों का प्रयोग करने के लिए उनको प्रशिक्षित करने में कुशल होना चाहिए।

3.7 सारांश

इस इकाई में हमने सामाजिक क्रिया की विभिन्न रणनीतियों तथा युक्तियों के बारे में अध्ययन किया है। सामाजिक क्रिया की विभिन्न अवस्थाओं में कौन-कौन सी रणनीति अपनाई जाती है? इसकी व्याख्या की गई है। रणनीतियाँ नियोजित करने के लिए स्थितिगत विश्लेषण, स्वाट विश्लेषण, समस्या विश्लेषण आदि रणनीतियों पर विस्तार से चर्चा की गई है। सामाजिक क्रिया के संचालन एवं प्रबंधन के लिए अधिवक्ता रणनीतियों की चर्चा की गई है जैसे – विधायी अधिवक्ता, न्यायिक अधिवक्ता नौकरशाही तथा मीडिया अधिवक्ता को बताया गया है। साथ ही सामाजिक क्रिया की विभिन्न अवस्थाओं में संप्रेषण संवाद तथा इसकी रणनीतियों की भी व्याख्या की गई है। सामाजिक क्रिया

के विभिन्न कौशलों जैसे –संबंध स्थपित करने का कौशल, संप्रेषण कौशल, विश्लेषणात्मक तथा शोध संबंधी कौशल, मध्यस्थता कौशल, प्रबंधकीय कौशल तथा प्रशिक्षण कौशल पर विस्तार से चर्चा की गई है।

3.8 बोध प्रश्न

1. सामाजिक क्रिया की विभिन्न रणनीतियों को स्पष्ट कीजिए।
2. सामाजिक क्रिया में रणनीति नियोजन की आवश्यकता क्यों हैं ? स्पष्ट करें।
3. सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक क्रिया के प्रमुख रणनीतियों का संयोजक होता है। व्याख्या करें।
4. संप्रेषण कौशल क्या है? यह सामाजिक क्रिया के दौरान कैसे कार्य करती है? समझाइए।

3.9 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

1.अहमद, मिर्जा रफीउद्दीन (1967): *समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियाँ* लखनऊ : ब्रिटिश बुक डिपो

2. दोषी एस.एल. एवं त्रिवेदी एम.एस.(2013) : *उच्चतर समाज शास्त्रीय सिद्धांत* जयपुर: रावत पब्लिकेशन

3. सिंह, सुरेन्द्र एवं मिश्र पी.डी. (2010): *समाज कार्य इतिहास दर्शन एवं प्रणालियाँ* लखनऊ : न्यू रॉयल बुक कंपनी।

4. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.(2007): *समाज कार्य* लखनऊ : रैपिड बुक सर्विस।

5. गुप्ता, एम एल .एवं शर्मा,डीडी.(1998): *समाजशास्त्र* आगरा : साहित्य भवन पब्लिकेशन।

6. इग्नू ,एम एस डब्लू 003 सामुदायिक विकास के लिए समुदाय संगठन का प्रबंधन नई दिल्ली:इग्नू।

7. Siddiqui, H.Y. (1984) : *Social Work and social Action* New Delhi : Harnam Publication.

8. Arthur, Hillman (1954) : *Community organization and Planning* New York : Macmillan Company.

9. Moorthy, M.V. (1966) : *Social Action* Mumbai : Asia Publishing House.

10. Samuel John (2000):*Social Action: An Indian Panorama Voluntary Action* Network India.

11. Singh, Surendra (1986):Horizons of Social Work (Edited) By Surendra Sing and K.S. Soodan. Lucknow :Jyotsana publication

12. Davis, Martin (2000): *The Blackwell Encyclopedia of Social Work (Edited)* Massachusetts : Blackwell Publication.

13. Friedlander, Walter. A. (1977): *Introduction to Social Welfare* New Jersey : Prentice Hall.

14. Foran, J. (2003) : *The Future of Revolutions* London : Zed Books.

15. D. Paul Chowdhry (1964): *Introduction to Social work History Concepts methods And Fields* Delhi : Atma Ram and Sons.

16. Pathak S.H. (1971): *Social Welfare and Family Planning* New Delhi : Planning Commission GoI

17. Ogburn & Nimkoff (1957): *A Hand Book of Sociology* Landon : Rutledge and Kegan pall Limited.

18. Aptheker Herbert (1941): Basic Concepts in Social Work North Carolina : Press Chappel Hill.

इकाई – 4
सामाजिक क्रिया-समाज कार्य का एक तरीका

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 सामाजिक क्रिया : समाज कार्य की विधि के रूप में
4.4 सामाजिक क्रिया के मूल्य
4.5 सामाजिक क्रिया के सिद्धांत
4.6 समाज कार्य की अन्य विधियों के साथ संबंध
4.7 सामाजिक आंदोलन के साथ संबंध
4.8 सारांश
4.9 बोध प्रश्न
4.10 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

4.1 उद्देश्य :-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. समाज कार्य की एक विधि के रूप में सामाजिक क्रिया की पहचान कर सकेंगे।
2. सामाजिक क्रिया के मूल्यों एवं सिद्धांतों से परिचित हो सकेंगे।
3. सामाजिक क्रिया की समाज कार्य की अन्य विधियों के साथ क्या संबंध है? इसे व्याख्यायित कर सकेंगें।
4. सामाजिक आंदोलनों के साथ सामाजिक क्रिया का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

सामाजिक क्रिया को व्यावसायिक समाज कार्य के एक तरीके या विधि के रूप में स्थापित करने के लिए बहुत बहस एवं विचार हुआ है। इसका कारण यह है कि समाज कार्य की अवधारणा तथा अभ्यास से जुड़ी चीजें आज भी परोपकार की भावना, धार्मिकता व नैतिकता तक ही सीमित हैं तथा इसके अंतर्गत रहने के लिए बाध्य है। अक्सर सामाजिक कार्यकर्ताओं से समाज के शोषित, दमित तथा वंचितों के लिए विनम्र दृष्टि अपनाने, सुधारवादी और कल्याणकारी उपाय उपलब्ध कराने की कोशिश की जाती है। भारत में समाज कार्य के उदय को सामाजिक न्याय तथा समानता के लिए संघर्ष अर्थात सामाजिक क्रिया के रूप में देखा जाता है। जबकि पश्चिमी देशों में वैयक्तिक सेवा कार्य और सामूहिक कार्य पर अधिक ध्यान दिया जाता था। पश्चिमी देशों में मानसिक स्वास्थ्य आंदोलन के कारण समाज कार्य के विधि या तरीके के रूप में वैयक्तिक सेवा कार्य तथा सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य ज्यादा लोकप्रिय हुए। भारत में जातीय सोपान में हाशिए के लोगों के साथ अमानवीय व्यवहार, महिलाओं की उपेक्षा, निरक्षरता, गरीबी, किसानों की दयनीय अवस्था, गरीबों के लिए कम अवसर, बढ़ती बेरोजगारी, भष्ट्राचार आदि ज्वलंत मुद्दे हैं। समाज

के शोषित और वंचित वर्गों को केवल राहत उपलब्ध करा देने से स्थितियों में सुधार नहीं आ सकता, इन पर प्रभाव तभी पड़ सकता है, जब शक्ति तथा संसाधनों का संरचनात्मक समायोजन तथा उनका पुनर्वितरण किया जाय।

वर्तमान संदर्भ में, सामाजिक क्रिया की सार्थकता को कम करके नहीं देखा जा सकता, क्योंकि इसकी ऐतिहासिक प्रासंगिकता है। भारत आज भी अज्ञानता, गरीबी, बाल मजदूरी, वेश्यावृत्ति, महिलाओं और बच्चे/बच्चियों का व्यापार, आतंकवाद, सांप्रदायिकता जैसी गंभीरसमस्याओं का सामना कर रहा है। इन समस्याओं के हल हेतु अधिवक्ता और सामाजिक क्रिया की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार तथा नौकरशाही व्यवस्था के कारण आज भी नीतियाँ तथा कार्यक्रमों का लाभ वंचितों शोषितों एवं उपेक्षितों तक पहुँचने में असमर्थ है।

भारत स्वतंत्र होने के बाद एक धर्मनिरपेक्ष एवं कल्याणकारी राज्य के रूप में अस्तित्व में आया। भारत के संविधान ने दलितों, पिछड़ों उपेक्षितों एवं वंचितों के विकास का उत्तरदायित्व इसी कल्याणकारी राज्य को सौंपा। आरंभ में सरकार ने इन लक्षित समूहों के लिए अनेक कार्यक्रम चलाएं किंतु ये कार्यक्रम उनकी अवस्था में परिवर्तन नहीं ला सके क्योंकि कार्यक्रम तो चलाया गया लेकिन उसमें कोई संरचनात्मक परिवर्तन नहीं किया गया। क्योंकि नियोजन ऐसे उच्चस्तरीय अधिकारी करते थे जो गरीबी से अवगत नहीं थे वे केवल गरीबों की समस्याओं कीकल्पना करते थे वास्तविकता नहीं जानते थे। उनकी कल्पना अक्सर सही नहीं होती थी तथा निरक्षता एवं ज्ञान के अभाव में गरीब भी अपने लाभों को ले पाने में निष्क्रिय बने रहें।

वर्तमान समय में अधिकारिता के दृष्टिकोण से समाज कार्य की विधि के रूप में सामाजिक क्रिया अत्यधिक प्रासंगिक हो चुकी है। इस इकाई के तहत हम सामाजिक क्रिया के मूल्यपरक एवं नीतिगत आधार तथा सामाजिक क्रिया अभ्यास में प्रयुक्त होने वाले सिद्धांतों को समझेंगे। सबसे पहले हम समझेगें कि सामाजिक क्रिया को एक तरीका या विधि क्यों माना जाता है?

4.3 सामाजिक क्रिया : समाज कार्य की एक विधि के रूप में

समाज कार्य के क्षेत्र में सामाजिक क्रिया वैयक्तिक, सामूहिक अथवा अंत सामूहिक प्रयत्नों की प्रक्रिया है जो समाज कार्य दर्शन ज्ञान और कौशल के संदर्भ में की जाती है। इसका उद्देश्य सामाजिक नीतियों और सामाजिक संरचनाओं की कार्य विधियों में संशोधन कर समाज कल्याण को बढ़ावा देना है। समाज कार्य को व्यावसायिक समाज कार्य कहा जाता है। अत: प्रत्येक व्यवसाय में, ज्ञान का एक परीक्षित समूह होता है, जिसका कि अपना सिद्धांत, अपने तरीके, तकनीके, प्रक्रियाएँ, उपकरण शब्दावली तथा वाद होते हैं। यही समाज कार्य व्यवसाय पर भी लागू होता है। समाज कार्य प्रकृतिवश अन्तर्विषयी होता है अर्थात यह अन्य विषयों जैसे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवविज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों से जुड़ा है, तथा समाज कार्य में इनसे अनेक संकल्पनाएँ ली गई है। तथापि कुछ निश्चित संकल्पनाएँ तथा वाद हैं जो विशेष तौर से समाज कार्य व्यवसाय से संबंधित है। समाज कार्य में लोगों के साथ काम करने की विधियों जैसे वैयक्तिक कार्य, समूह कार्य, समुदाय संगठन, सामाजिक क्रिया, समाज कल्याण प्रशासन तथा समाज कार्य शोध तथा इससे संबंधित नैतिकताएँऔर सिद्धांत शामिल हैं। समाजकार्य में सामाजिक क्रिया एक विधि या तरीके के रूप में ऐसा दृष्टिकोण व तकनीक प्रदान करती है, जो लोगों को अपनी जीवन स्थिति को सुधारने और समाज कार्य प्रणाली को विस्तार देने में सक्षम होती है।

सामाजिक क्रिया को व्यावसायिक समाज कार्य की एक विधि क्यों माना जाता है? व्यावसायिक समाजकार्य की विधि समाज कार्य के दर्शन पर आधारित मूल्यों का दृष्टिकोण होती हैं, इसकी प्रक्रिया में पहचानी जा सकने वाली अवस्थाओं के साथसाथ, एक स्थापित प्रक्रिया, सैद्धातिक ढाँचा, दिशा-निर्देश और अच्छी तरह मान्य कौशल तथा रणनीतियाँ होती है। समाज कार्य की अन्य विधियों के विपरीत सामाजिक क्रिया में ऐसे परिवर्तनों पर बल दिया जाता है

जो दीर्घकालीन होते हैं। सामाजिक क्रिया में स्वतंत्रता, नागरिक स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, धार्मिक एवं राजनीतिक न्याय तथा मानवाधिकार आते हैं। अधिकारिता तथा मानवाधिकार के संबंध में जब सामाजिक क्रिया को देखा जाता है तो लगता है कि यह ऐसा प्रभावशाली तरीका है जो अपनी कोशिशों से जनसमूह के एक बड़े भाग को लाभान्वित करने में मदद करता है। यह आम जन को प्रभावित करने के साथ-साथ दीर्घकालीन परिवर्तनों, निष्कर्षों तथा समस्याओं के मूल कारणों को समाप्त करने या उसे कम करने की कोशिश करता है तथा उसकी धारणीयता सुनिश्चित करने के लिए अग्रसर होता है।

समाज कार्य की अन्य विधियों की तरह सामाजिक क्रिया में भी मान्य एवं व्यवस्थित अवस्थाओं की कुछ प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। प्रारंभ में पूर्वाग्रहों पर नियंत्रण करते हुए पक्षपातों को कम कर,शोध के वैज्ञानिक तरीकों का इस्तेमाल करते हुए, आकस्मिक तथा अवक्षेपी कारकों के साथ-साथ समस्या के मूल कारणों का पता लगाया जाता है तथा उसका विवेचनात्मक विश्लेषण किया जाता है। समस्या से संबंधितविश्लेषण के लिए विश्लेषण की विभिन्न रणनीतियाँ अपनाई जाती है। तत्पश्चात समस्या के कारणों को लोगों तक संप्रेषित किया जाता है जिसके लिए लोगों की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर, संदेश को ध्यानपूर्वक तैयार किया जाता है। लोगों की समस्या समाधान हेतु सामूहिक और सहयोगात्मक क्रिया सुनिश्चित करने के लिए संवाद–संप्रेषण के माध्यमों की आवश्यकता पड़ती है। समन्वित तथा आवश्यक मध्यस्थता से लोगों को जुटाने एवं लक्ष्योंको प्राप्त करने हेतु क्रिया करने के लिए उपयुक्त रणनीतियाँ व तकनीकें तैयार करनी पड़ती हैं और अंत में क्रिया करनी होती है। सामाजिक कार्यकर्ता जो व्यावसायिक हो या क्रियावादी इन विभिन्न अवस्थाओं में कार्य करने हेतु आवश्यक ज्ञान तथा कौशलों प्रक्रियाओं, रणनीतियों, सिद्धांत आदि से युक्तहोते हैं तथा समय–समय पर इसका उपयोग करते रहते हैं।

सामाजिक क्रिया करने के दौरान सामाजिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं तथा संरचना के साथ टकराव अवश्यंभावी होता है इसके बाद भी समाज कार्य व्यवसाय के मूल्यों, नैतिकताओं एवं दर्शन का कठोरता से पालन किया जाता है। मनुष्य के मूल्य तथा गरिमा में विश्वास रखकर दृढ़ता से यह लोकतंत्र एवं सामाजिक न्याय के आदर्श प्रारूप को पेश करता है। यह दृढ़ता से विश्वास करता है कि मनुष्य को प्रभावित करने वाली समस्याओं केसमाधान हेतु उनके पास क्षमताएँ है। सामाजिक क्रिया शक्तिशाली के जीवित रहने के सिद्धांत को नकारता है साथ ही यह अहस्तक्षेप को भी नहीं मानता है। सामाजिक क्रिया का मानना है कि समाज के कमजोर एवं वंचित लोगों को भी उतने अधिकार मिलने चाहिए जितने कि समाज के ताकतवर और अमीर लोगों को मिले हुए हैं। लोगों को अपने विकास हेतु स्वयं की भागीदारी होनी चाहिए यह सामाजिक क्रिया की महत्वपूर्ण मान्यता है।

सामाजिक क्रिया के लक्ष्य तथा उद्देश्य स्पष्ट होते है। सामाजिक क्रिया का मुख्य लक्ष्य जनसंख्या के सभी वर्गों के बीच संसाधनों तथा शक्ति का पुनर्वितरण करना है जिससे कि सामाजिक न्याय को उपलब्ध कराया जा सके। इसका उद्देश्य ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण का विकास करना है जिसमें सभी नागरिकों के लिए पूर्ण तथा समृद्ध जीवन संभव हो सके। सामाजिक क्रिया सामाजिक समूह या जनसमूह की समस्याओं के वास्तविक समाधान हेतु अग्रसर होती है। उदाहरण के रूप में गरीबी को केवल यह नहीं माना जा सकता कि उनकी आय कम हैं बल्कि यह माना जा सकता है कि उन्हें अर्थ पूर्ण जीवन जीने, उनके वृद्धि एवं विकास हेतु तथा स्वतंत्रता के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध होने चाहिए। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को गरिमापूर्ण जीवन स्तर प्रदान करने के लिए वैयक्तिक कार्य एवं समूह कार्य की प्रासंगिकता नहीं रह जाती है। सामाजिक क्रिया में समाज के वे प्रभावित लोग, जिनका उत्थान जरूरी होता है, शामिल होते हैं साथ ही निर्णय प्रक्रिया, संसाधनों के समान वितरण, सामाजिक समस्याओं में परिवर्तन

के लिए मध्यस्थता, नियोजन व क्रियान्वयन में समाज के गरीबों वंचितों तथा पिछड़े हुए लोगों की भागीदारी बढ़ाई जानी चाहिए।

एक विधि के रूप में सामाजिक क्रिया अद्वितीय है क्योंकि इसमें प्रतिस्पर्धा, बहिष्कार, हड़ताल, आवास कर देने से मना करना, घेराव, जुलूस अवरोध, सम्मानों की अस्वीकृति आदि शामिल होती है। ये सामाजिक क्रिया की रणनीतियाँ होती है। इन रणनीतियों के चयन में यह सदैव ध्यान रखा जाता है कि सत्ता से टकराने के दौरान रक्तपात तथा हिंसा न हो। इसके लिए शांतिपूर्ण जुलूस तथा अहिंसक तरीके से शांति मोर्चा इत्यादि निकाले जा सकते हैं।

सामाजिक क्रिया वह विधि हैं जिसके अंतर्गत समाज के अपेक्षित शोषित, वंचित वर्गों के लिए तथा उनके विकास के लिए एवं उन्हें समय के साथ चलने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को बदलने या सुधारने का एक ऐसा प्रयास होता है जो संगठित होता है। इसका लक्ष्य आम लोगों के जीवन को बेहतर बनाने हेतु सामाजिक विधियों एवं नीतियों में आवश्यक परिवर्तन लाना होता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि सामाजिक क्रिया, समाज कार्य व्यवसाय की विधि के रूप में, वंचित समूह या जनसंख्या की कल्याण के लिए सामाजिक व्यवस्था में सकारात्मक बदलाव लाने का एक माध्यम एवं उपकरण है।

4.4 सामाजिक क्रिया के मूल्य तथा नीतिशास्त्र

सामाजिक क्रिया के दौरान सामाजिक संरचना के साथ-साथ वर्तमान सामाजिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं से टकराव होता है। राजनीतिक क्षेत्र में नये शक्ति समीकरण बनते हैं तथा पुराने शक्ति समीकरण टूटते हैं। यह समाज कार्यव्यवसाय के मूल्यों, नैतिकताओं तथा विचारधारा से मजबूती से बँधी हुई होती है। यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया के साथ-साथ मनुष्यों की गरिमा और जीवन मूल्य में पूर्ण विश्वास रखती है तथा स्वयं को उद्देश्य के लिए दृढ़ संकल्पित करता है।

सामाजिक क्रिया का मुख्य लक्ष्य समाज कार्य प्रणाली में विकास करना एवं समाज के अपेक्षित वंचित एवं शोषितों के शोषण को कम करना साथ ही उनका सशक्तिकरण करना है। सामाजिक क्रिया डार्विन के सिद्धांत एवं सर्वश्रेष्ठ के जीवित रहने में विश्वास नहीं रखती। समाज कार्य व्यवसाय का सम्पूर्ण लक्ष्य समाज के विवादित मुद्दों को सुलझा कर समाज कार्य की विधियों को सुगम बनाना है। सेवार्थी की क्षमता में वृद्धि करना ताकि वह अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान कर सके साथ ही साथ ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना, जिसमें पूर्ण समानता हो।

समतापूर्ण व्यवस्था की स्थापना करना सामाजिक क्रिया का एक उद्देश्य होता है। जिस सामाजिक व्यवस्था में संसाधनों का वितरण असमान होता है तथा जो जनसंख्या के किसी वर्ग को हाशिए पर ढ़केल देती है वहाँ सामाजिक क्रिया का उपयोग समाज कार्य की एक विधि के रूप में किया जाता है। उदाहरण के तौर पर हम यह देख रहे हैं कि हमारा देश उच्च आर्थिक वृद्धि दर प्राप्त कर रहा है। साथ ही साथ हमारी जनसंख्या का आधा भाग खराब आर्थिक स्थिति या गरीबी रेखा से नीचे जीवन जीने को मजबूर है।

हम कह सकते हैं कि विकास हेतु अवसर व संसाधन केवल मुट्ठी भर लोगों के हाथ में आ गया है। निर्णय की प्रक्रिया में जनसंख्या के कमजोर वर्गों का प्रतिनिधित्व बहुत कठिनाई से ही मिल पाता है। इन सभी बातों का ध्यान रखते हुए सामाजिक क्रिया का लक्ष्य नीतियों तथा सामाजिक विधान में संशोधन करना है जिससे कि संसाधनों के वितरण एवं निर्णय प्रक्रिया में समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो। 73 वे तथा 74 वें संविधान संशोधन द्वारा महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण तथा अनुसूचित जाति एवं जनजातियों को सामान्य जनसंख्या के अनुपात के आधार पर आरक्षण उपलब्ध कराया गया है जिससे कि निर्णय प्रक्रिया में समान भागीदारी हो सकें। समाज कार्य व्यवसाय के मूल्य समानता, सामाजिक न्याय, मनुष्य की स्वतंत्रता तथा गरिमा, उसकी क्षमता का विकास आदि है।

सामाजिक क्रिया इन्हीं मूल्यों पर टिकी हुई है। सामाजिक क्रिया में असमानता पर ध्यान दिया जाता है। असमानता भेदभाव, वंचना, दमन, तथा शोषण को जन्म देती है। समाज कार्य के साथ-साथ सामाजिक क्रिया का भी मूल लक्ष्य प्रत्येक नागरिक के लिए मानवाधिकार सुनिश्चित करना है। 1948 ई. में विश्व मानवाधिकार दिवस पर उद्घोषणा के अनुसार मानवाधिकार की समझ समाज कार्य तथा सामाजिक क्रिया के मूल्य तथा विचारधारा संबंधी आधार को समझने में लाभदायी होगी क्योंकि मानवाधिकार सामाजिक क्रिया की रीढ़ हैं और इन्हीं से मध्यस्थता हेतु संकल्पनात्मक ढ़ाँचा तैयार होता है। ये अधिकार निम्नलिखित हैं :-

1. स्वतंत्रता तथा समानता का अधिकार
2. जीवन जीने का अधिकार
3. प्रताडित हुए बिना जीवन जीने का अधिकार
4. स्वास्थ्य का अधिकार
5. विवाह तथा परिवार बनाने का अधिकार
6. शिक्षा का अधिकार
7. सांस्कृतिक परिपाटियों का अधिकार
8. धर्म का अधिकार
9. कानून के समक्ष समानता तथा सुरक्षा का अधिकार
10. अभिव्यक्ति का अधिकार
11. संपत्ति का अधिकार
12. कार्य का अधिकार

मानवाधिकारों तथा मूल्यों के बीच एक सम्पर्क रेखा दिखाई देती है जिस पर की सामाजिक क्रिया टिकी हुई है। यह सामाजिक क्रिया के कार्यों को संचालित करता है जिसका लक्ष्य सभी नागरिकों के मानवाधिकारों की रक्षा करना व यह सुनिश्चित करना है कि उपरोक्त वर्णित किसी भी मानवाधिकारों के उल्लघंन से सामाजिक क्रियावादियों के हस्तक्षेप की आवश्कता होगी। जहाँ जाति एवं वर्ग के आधार पर शोषण एवं दमन होता है, लैंगिक भेदभाव होता है, किसी विशेष धर्म या विशेष क्षेत्र के लोगों की उपेक्षा होती है। उस स्थिति में अधिवक्ता एवं सामाजिक क्रिया की आवश्यकता पड़ती है। सामाजिक क्रिया व्यक्तियों के अंदर निहित मूल्यगरिमा एवं निष्ठा पर विश्वास करती है।

सामाजिक क्रिया की यह मान्यता है कि निष्पक्ष न्याय एवं सामाजिक बदलाव सुनिश्चित करना राज्य का कर्तव्य होता है। राज्य आम आदमी के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए जवाबदेह पारदर्शी होता है। सामाजिक परिवर्तन नीचे के स्तर से प्रारंभ होता है और नीतियाँ उस सामाजिक बदलाव का माध्यम होती हैं।

सामाजिक क्रिया का नैतिक ताना-बाना सामाजिक न्याय तथा मानवाधिकारों से बनता है। सामाजिक क्रिया अपने आप को समाज के वंचित वर्गों की अधिकारों के रक्षा के लिए संकल्पित करती है। सामाजिक क्रिया में लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास किया जाता है। तथा प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर निहित गरिमा तथा उसके अधिकारों में पूर्ण विश्वास रखते हुए शोषितों को अपनी आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया जाता है। सामाजिक क्रिया में एक न्यायपूर्ण समाज का सृजन करने एवं सभी लोगों को अधिकतम वृद्धि एवं विकास का समान अवसर प्राप्त हो, ऐसा ध्यान में रखा जाता है। सामाजिक क्रिया लोकतंत्र को बढ़ावा देने तथा नागरिक समाज की अधिकारिता में विश्वास रखती है। जिसमें आम आदमी को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार उपलब्ध हो। सामाजिक कार्यकर्ता या सामाजिक क्रियावादियों को मूलभूत मानवाधिकारों में पूर्ण विश्वास तथा भरोसा करना

चाहिए। सामाजिक क्रिया वहाँ चलानी चाहिए जहाँ किसी विशेष समूह या समुदाय को गरिमामय जीवन जीने के अधिकार तथा अवसर उपलब्ध नहीं होते। सामाजिक कार्यकर्ता का पूरा ध्यान वंचितों की गरिमा तथा अधिकारों को सुनिश्चित करने या रक्षित करने का होता है। सामाजिक क्रियावादियों का उत्तरदायित्व सेवार्थी तथा समुदाय के प्रति होता है जिसमें वह नैतिक रूप से शोषित, वंचित तथा हाशिये के लोगों से अपना ध्यान नहीं हटा सकता। सामाजिक कार्यकर्ता को नियोक्ता एजेंसी के प्रति नैतिक कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए अर्थात हम यह कह सकते है कि सामाजिक कार्यकर्ता से यह आशा की जाती है कि वह एजेंसी के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों से बँधा रहे। लेकिन कभी-कभी यह बात उन्हें दुविधा में डाल देती है, अगर एजेंसी वंचितों के ऊपर हो रहे अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने से पीछे हटने का निर्णय ले लेती है। सामाजिक कार्यकर्ता का समाज कार्य व्यवसाय के प्रति भी उत्तरदायित्व होता है। वह नैतिक एवं नीतिगत रूप से समाज कार्य व्यवसाय के मूल्यों तथा विचारधाराओं से बंधा होता है। उपर्युक्त चर्चा के आधार पर सामाजिक क्रिया में संलिप्त व्यावसायिक कार्यकर्ताओं के लक्ष्य तथा उद्देश्य इस प्रकार हो सकते हैं:-

1. समाज में संरचनात्मक परिवर्तन लाने के लिए संसाधनों का समान वितरण।
2. ऐसी सामाजिक बुराईयों को मिटाना जो मानव गरिमा के विरूद्ध हो।
3. लक्षित समूह या जनसंख्या के लिए अधिक अवसर को बढ़ावा देना।
4. लोगों की भलाई हेतु अनुकूल सामाजिक संस्थाओं को मजबूत करना
5. अपराध तथा शोषण पर अंकुश लगाना।
6. शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य के साथ-साथ सामाजिक स्वास्थ्य को संरक्षित करना।

4.5 सामाजिक क्रिया के सिद्धांत

समाज में समानता लाने, संसाधनों का उचित वितरण करने हेतु सामाजिक क्रिया शक्ति समीकरणों तथा निर्णय प्रक्रिया में आवश्यक परिवर्तन लाने का कार्य करती है। सामाजिक क्रिया में जो शक्ति कार्य करती है वह कोई अलग या दूसरी शक्ति नहीं है बल्कि वह प्रजातांत्रिक पद्धति में विश्वास करने वाली शक्ति है। सामाजिक क्रिया के मुख्य अवयव, वांछित सामाजिक परिवर्तन एवं राजनीतिक क्रिया का प्रयास है। सामाजिक क्रिया के अंतर्गत राहत, परोपकार तथा कल्याण से लेकर सम्पूर्ण स्तर शामिल होता है। इसका दायरा बहुत विशाल है। सामाजिक क्रिया का प्रयोग स्थानीय स्तर पर शोषण तथा दमन के विरूद्ध, आम लोगों को जागरूक करने तथा उनमें परिवर्तन लाने के उद्देश्य से किया जाता है। सामाजिक क्रिया को रचनात्मक कार्य कहा जा सकता है क्योंकि इसमें वैसी रणनीतियाँ शामिल होती है जिनमें उपेक्षित, वंचित एवं गरीबों के वैकल्पिक विकास की बात होती है। सामाजिक क्रिया का स्वरूप सामाजिक होता है क्योंकि यह एक संयुक्त क्रिया है। जिसका लक्ष्य गरीबों एवं वंचितों की प्रस्थिति को बदलना होता है। सामाजिक क्रिया के सिद्धांतों का विस्तृत चर्चा करने पर हमें यह मालूम होता हैं कि सामाजिक क्रिया नीतियों में परिवर्तन लाने का प्रयास करती हैं और ऐसे जनमत का निर्माण करती है जिनमें सबकी भागीदारी होती है।

सामाजिक क्रिया के सिद्धांत सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया के लिए दिशा-निर्देश के रूप में कार्य करते हैं। सामाजिक क्रिया के सिद्धांत निम्नानुसार है-

1. **विश्वसनीयता का सिद्धांत :-** सामाजिक क्रिया के दौरान सामाजिक क्रिया को सुचारू रूप से संचालित करने एवं सामाजिक कार्यवाही को प्रारंभ करने हेतु विश्वसनीयता का निर्माण करना पड़ता है। क्योंकि जब तक जनमानस में नेतृत्व एवं सामाजिक क्रिया हेतु विश्वास उत्पन्न नहीं किया जाएगा तब तक यह सही तरीके से कार्य नहीं कर सकती अत: इसके लिए विश्वास उत्पन्न करना आवश्यक हो जाता है। जन कल्याण हेतु जो भी कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं उसके प्रति जनता में जागरूकता होनी चाहिए ताकि लोगों को लगे कि यह

सबकी भलाई के लिए है। आम जन को आंदोलन में भाग लेने वाले लोगों के बारे में विश्वास हो कि वे वास्तविक रूप में न्याय ईमानदारी और सत्य के पैरोकार हैं। विश्वसनीयता निर्माण करने से यह लाभ होता है कि जिनके लिए अर्थात समाज के उपेक्षित एवं वंचित लोगों हेतु कार्य किया जाता हैं तो उनसे समर्थन मिलता ही है साथ ही साथ विरोधियों और आंदोलन में बाहर से भाग लेने वालों से भी सामाजिक क्रिया हेतु कानूनी मान्यता हासिल करने में सहायता मिलती है। जनमानस को इस बात का भी विश्वास होना चाहिए कि जो सामाजिक क्रिया की जा रही है या आंदोलन चलाया जा रहा है वह उनकी भलाई के लिए है। इससे समूह लाभान्वित हो न कि कोई व्यक्ति विशेष। कभी-कभी विश्वसनीयता बढ़ाने के लिए उदाहरण भी स्थापित करना पड़ता है। उदाहरण जनता के साथ-साथ सभी पक्षों को दिखाने के लिए होता है कि जिन मूल्यों एवं नैतिकता हेतु आप आवाज उठा रहे है वे काल्पनिक न होकर वास्तविक जीवन के व्यवहार के लिए है। इससे कार्य की विश्वसनीयता सुनिश्चित होती है तथा कार्यकर्ताओं को अच्छा संदेश मिलता है। उदाहरण हेतु गांधी जी का जीवन हमेशा अहिंसा, सहनशीलता और सत्य पर आधारित था क्योंकि उनके व्यवहार एवं सिद्धांत में कोई अन्तर नहीं था, उन्होंने सहन शीलता, अहिंसा एवं सत्यको कभी नही छोड़ा। भारत में जलपुरूष के नाम से विख्यात मैग्सेसे पुरस्कार विजेता डॉ. राजेन्द्र सिंह ने बहुत वृहत स्तर पर जल संरक्षण आंदोलन आरंभ करने से पहले राजस्थान के गाँवों में छोटे-छोटे बांध बनाकर जलसंरक्षण का उदाहरण पेश किया। इसके अतिरिक्त सुंदर लाल बहुगुणा, बाबा आम्टे, अन्ना हजारे, अरूणा राय इत्यादि ऐसे नाम हैं जिन्होंने सामाजिक क्रिया की विश्वसनीयता को बढ़ाने में अपना अमूल्य योगदान दिया।

2. **स्वीकृति का सिद्धांतः-** जिस समूह या समुदाय के लिए सामाजिक क्रिया की जाती है उसकी वर्तमान स्थिति को स्वीकार करना तथा प्राथमिकताओं के आधार पर उनकी आवश्यकताओं एवं समस्याओं को ध्यान में रखकर उनकी पूर्ति हेतु एक स्वस्थ जनमत तैयार करना, स्वीकृति के सिद्धांत की विशेषता है। समाज या समुदाय का प्रत्येक सदस्य इस बात को स्वीकार कर ले कि नेतृत्व करने वाले वे लोग जो नेतृत्व में शामिल हैं, वे नेक हृदय, ईमानदार तथा सच्चरित्र हैं तथा जनता के कल्याण की भावना उनके पास है। साथ ही साथ वे समाज समूह एवं समुदाय कोउसके स्थिति के आधार पर ही स्वीकार करने की बात करें।
3. **वैधता का सिद्धांत :-** वैधता के सिद्धांत के अंतर्गत संदर्भित समूह या लक्षित समूह एवं आम जनता को यह विश्वास दिलाया जाता है कि जो आंदोलन चलाया जा रहा है, उसका उद्देश्य नैतिक एवं सामाजिक रूप से उचित है। वैधता का नैतिक दृष्टिकोण तब होगा जब आप एक सामाजिक क्रियावादी/ कार्यकर्ता के रूप में जनमत तैयार करते हैं कि कोई विशेष व्यवहार नैतिक रूप से सही है या गलत है। सामाजिक वैधता की स्थापना हेतु आंदोलनकारी, दार्शनिक, वैधानिक, नैतिक आदि विभिन्न मार्गों का चुनाव किया जाता है जिसका ज्ञान जनसामान्य को हो जाता है तथा वह इसके लिए मान्यता दे देता है।
4. **नाटकीयता का सिद्धांत :-** नाटकीय सिद्धांत के अंतर्गतनेतृत्वकर्ता जनसमूह के समक्ष ऐसे कार्यक्रमों को प्रस्तुत करता है जिससे जनता स्वयं संवेगात्मक रूप से जुड़ जाये तथा इसको अत्यंत आवश्यक मानकर उनके साथ लगातार सक्रियता के साथ संबंद्ध रहे। इसके अंतर्गत भावनात्मक अपीलें, सनसनीखेज समाचार, प्रबंधन, अभिजात्य क्रियाविधियाँ, गीत, नारे, भाषण, बहिष्कार आदि का प्रयोग किया जाता है। आम लोगों को संचालित करने वाला लगभग हर नेता नाटकीयता के इस सिद्धांत का प्रयोग करता है। कार्यक्रमों के चयन में नेतृत्वकर्ताओं द्वारा ऐसे रूचिकर नाटकीय कार्यक्रमों का चुनाव किया जाता है जो कि जनता को भावनात्मक रूप से जोड़ने में सफल होता हैं। चुटकीले गाने, जो आंदोलन के उद्देश्य को स्पष्ट करते है,

नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करते हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लोगों के उत्साह को बढ़ाने के लिए, गाने बजाने के लिए स्थानीय प्रतिभाओं की तलाश की जाती थी। कुछ लोगों को प्रशिक्षण दिया गया और इन्होंने अनेक सभाओं मेंसत्याग्रह के गीत गाए। नारे भी सामाजिक क्रिया की नाटकीयता को प्रभावित करते है। उदाहरण के लिए पल्स पोलियो अभियान में नारा दिया गया ''दो बूँद जिन्दगी की''। सर्व शिक्षा अभियान के लिए 'सब पढ़े सब बढ़े' का नारा दिया गया वर्तमान संदर्भ में 'सबका साथ सबका विकास' जैसे नारे समाज में प्रभाव डाल रहे हैं। कभी-कभी जन समूह को प्रेरित करने और नाटकीयता उत्पन्न करने के लिए ऊर्जावान भाषण दिया जाता है। इसके संदर्भ में गांधीजी, विनोबा भावे, डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर, सुभाष चन्द्र बोस आदि नेताओं का नाम उल्लेखनीय है। बहिष्कार जनमत को प्रभावित करने वाला नाटकीय तरीका होता है। यह सफल या असफल दोनों हो सकता है। इसके अंतर्गत घेराव, हड़ताल आदि आते है। इन उपायों का उपयोग गांधी जी द्वारा मुद्दों को नाटकीय बनाने के लिए किया गया। अन्ना हजारे के भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन में भी इसका प्रयोग किया गया।

5. **बहुआयामी रणनीति का सिद्धांत-** इस सिद्धांत के अंतर्गत एक से अधिक रणनीतियों को अपनाया जाता है। बहुआयामी रणनीति के अंतर्गत शिक्षा संबंधी रणनीति, समझाने की रणनीति, सुगमता की रणनीति और शक्ति की रणनीति शामिल होती है। शैक्षिक रणनीति का प्रयोग व्यक्ति समूह तथा जनमानस को शिक्षित करने के लिए किया जाता है। शैक्षिक रणनीति के तहत जागरूकता, प्रदर्शनी, मीडिया इत्यादि माध्यमों का सहयोग लेकर लोगों को ज्ञान प्रदान किया जाता है। अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा आदि इसके उदाहरण हैं। समझने की रणनीति के अंतर्गत किसी दूसरे केदृष्टिकोण को स्वीकार करने से पहले तर्क-वितर्क, अनुरोध आदि प्रक्रियाओं के समुच्चय को अपनाना पड़ता है। सुगमता की रणनीति के अंतर्गत सामाजिक एवं जन आंदोलन में सभी वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। भागीदारी को सुगम बनाने के लिए विभिन्न गतिविधियों एवं क्रिया विधियों को अपनाया जाता है। उदाहरण के तौर पर स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गाँधीवादियों द्वारा इतना साधारण और बिना जोखिम का कार्यक्रम तैयार किया जाता था जिसे अनपढ़ व्यक्ति भी समझ सके और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग ले सके। शक्ति रणनीति के तहत सामाजिक क्रिया के उद्देश्योंको प्राप्त करने के लिए बल प्रयोग करना पड़ता है। बल प्रयोग के रूप में सामाजिक बहिष्कार से लेकर मानहानि, विरोध प्रदर्शन, भूख, हड़ताल तथा धरना आदि शामिल होता है। उदाहरण के रूप में मेधा पाटेकर ने नर्मदा बचाओ आंदोलन के दौरान आमरण अनशन किया जो कि शक्ति रणनीति में से एक था। अन्ना हजारे द्वारा भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के दौरान जंतरमंतर पर आमरण अनशन करना भी शक्ति रणनीति का एक उदाहरण है।
6. **दोहरे दृष्टिकोण का सिद्धांत :-** आनुभाविक सामाजिक क्रिया में कार्यकर्ताओं हेतु संदर्भसमूह की आनुभाविक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए वर्तमानव्यवस्था के विपरीत व्यवस्था विकसित करनी पड़ती है या किसी ऐसी व्यवस्था को अपनाना पड़ता है जो प्राय: मृतप्राय हो गई हो। सामाजिक क्रिया में स्थापित व्यवस्था में परिवर्तन लाने या उसे समाप्त करने की कोशिश की जाती है। लेकिन साथ-ही-साथ इस बात पर महत्व दिया जाता है कि इसके साथ-साथ रचनात्मक व्यवस्था तैयार की जाए। गांधी जी का रचनात्मक कार्यक्रम एक ऐसा ही कार्यक्रम था जो सत्याग्रहियों के द्वन्द्वात्मक कार्यक्रमों के साथ चलता था। अम्बेड़कर का बौद्ध धर्म अपनाना इत्यादि ये कार्यक्रम थे जो दोहरे दृष्टिकोण के सिद्धांत पर आधारित थे।

7. **बहुआयामी कार्यक्रम का सिद्धांत :-** इस सिद्धांत के अंतर्गत जन समूहके संचालन हेतु लक्षित उद्देश्यके साथ अनेक प्रकार के कार्यक्रम चलाये जाते है। जिसे सामान्य तौर पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है:-

अ) सामाजिक कार्यक्रम

आ) आर्थिक कार्यक्रम

इ) राजनीतिक कार्यक्रम

उदाहरण के लिए जलपुरूष डॉ. राजेन्द्र सिंह द्वारा जल संरक्षण का मुद्दा विविध कार्यक्रमों के एक भाग के रूप में उठाया है। उनके संरक्षण में गाँव के लोगों ने महिलाओं की मदद कीजिन्हें कोसों दूर से पानी लाना पड़ता था। जल संरक्षण से फसलों का बेहतर विकास हुआ। बेहतर पशुपालन मेंमदद मिली जिसका निहितार्थ आर्थिक लाभ प्राप्त करना था। इस आन्दोलन के दौरान अनेक स्थानीय नेताओं, पंचायती राज्य संस्थाओं तथा राज्यसरकार के साथ प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष विवाद एवं उनका समाधान शामिल था। इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय आंदोलन, भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन, मजदूर किसान शक्ति संगठन का सूचना का अधिकार आंदोलन इन सभी आंदोलन में ऐसे तीनोंस्तर के कार्यक्रम चलते रहे जिसका लाभ समाज के लोगों को मिला।

8. **मूल्यांकन का सिद्धान्त :–** नेतृत्व के लिए यह आवश्यक होता है कि वह कार्यक्रमों का निरंतर मूल्यांकन करे क्योंकि मूल्यांकन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया होती है। कार्यक्रम की सफलता या असफलता का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। मूल्यांकन के तहत समूह या समुदाय की क्षमताओं-अक्षमताओं सहायता के उपयोग की इच्छा-अनिच्छा, सांस्कृतिक कारक आदि के संबंध में निर्णय लेकरमूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन से इस बात की जानकारी होती है कि कार्यान्वयन में कहाँ-कहाँ कमियाँ रह गई। तत्पश्चात इन कमियों को दूर किया जा सकता है।

4.6 सामाजिक क्रिया का समाज कार्य की अन्य प्रणालियों के साथ संबंध

सामाजिक क्रिया समाज कार्य अभ्यास की प्रणाली होने के कारण समाज कार्य की अन्य प्रणालियों जैसे वैयक्तिक सेवा कार्य, सामूहिक सेवा कार्य, सामुदायिक संगठन, समाज कल्याण प्रशासन, समाज कार्य शोध इत्यादि के साथ परस्पर संबंधित है। समाज कार्य अभ्यास की इन विधियों में कुछ-न-कुछ समानता पायी जाती है। इसके अलावा सामाजिक क्रिया में सामुदायिक अधिकारिता के लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया में समाज कार्य की अन्य प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक क्रियावादी या सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक क्रिया के दौरान इसकी प्रक्रिया में समाज कार्य की अन्य प्रणालियों का इतना अधिक उपयोग करते हैं कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि सामाजिक क्रिया में समाज कार्य की विभिन्न प्रणालियों का ही समावेश कर लिया गया है तथा इसको मान भी लिया जाता है। इस खण्ड का उद्देश्य सामाजिक क्रिया का समाज कार्य की अन्य प्रणालियों के साथ किस प्रकार का संबंध है इससे आपको अवगत कराना है, ताकि सामाजिक क्रिया के संबंध में आपका ज्ञानवर्द्धन हो सके।

सामाजिक क्रिया के साथ सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के संबंध को देखने का प्रयास करेंगे। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य व्यक्ति को अपनी सामाजिक समस्याओं के समाधान एवं निदान का प्रभावी तरीका एवं जीवन को बेहतर विकल्प तैयार करने में मदद करता है। अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान कर व्यक्ति स्वयं आत्मनिर्भर बन सकें, यह प्रयास वैयक्तिक सेवा कार्य का होता है। समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में यह बहुत ही प्रभावपूर्ण तरीके से सहायता प्रदान करने की एक विधि है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की प्रक्रिया के दौरान सामाजिक कार्यकर्ता के समक्ष ऐसी सामाजिक समस्या उत्पन्न हो सकती है जो प्रत्यक्ष रूप से सेवार्थी को प्रभावित करती है। जिससे सामाजिक

कार्यकर्ता यह अनुभव करता है कि उस समय हस्तक्षेप की बेहतर विधि के रूप में सामाजिक क्रिया का प्रयोग किया जाना चाहिए। वैयक्तिक कार्य के दौरान, चिन्हित मनोवैज्ञानिक एवं मनो सामाजिक समस्याएँ उदाहरण के रूप में ये समस्याएँ निम्न प्रकार की हो सकती है जैसे अत्यधिक हताशा या निराशा, समुदाय में हुए दंगे (भागलपुर दंगा, मुजफ्फरपुर, गुजरात दंगा) इत्यादि इनके अलावे इस समस्या में वैसी समस्याएँ भी आ जाती हैं जो राज्य द्वारा संवेदना शून्य होकर पुर्नवास के लिए अपनाई जाती है।

इसके अलावा ग्रामीण बेरोजगारों के लिए चलाये जा रहे ऐसे कार्य जहाँ वैयक्तिक कार्य हो रहा है, जैसे मनरेगा (Mahatma Gandhi Rural Employment Guarantee Act) का काम चल रहा हो, जिसके फलस्वरूप वैयक्तिक कार्यकर्ता को इन मनोसामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए, सामाजिक क्रिया करनी पड़ सकती है। इसके अलावा सेवार्थी के पास ऐसी भी सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती है जिस पर सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक क्रिया के जरिए स्थूल स्तर पर कार्य कर रहा है। इस स्थिति में वैयक्तिक कार्यकर्ता को सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया में हिस्सा लेने के लिए सेवार्थी में विश्वास बनाने और इसमें सहभागी बनाने के लिए तैयार करने की आवश्यकता पड़ती है।

इसके अलावा सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी समूह के सदस्यों के साथ काम करने के दौरान तथा समुदाय में विश्वसनीयता बनाने की प्रारंभिक प्रक्रिया के दौरान वैयक्तिक कार्य करना पड़ सकता है अथवा बाद में सामाजिक क्रिया की विधियों या तरीकों का इस्तेमाल करना पड़ सकता है। जब कोई विचार या मत, नेता या समुदाय का प्रमुख सदस्य सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया को प्रभावित करते हुए इसके विरूद्ध व्यवहार कर रहा हो।

अब हम लोग सामाजिक क्रिया और सामाजिक समूह कार्य के बीच अंतर संबंध को समझेगें। समूह कार्य एक ऐसी विधि या प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्ति सामूहिक गतिविधियों के जरिए एक-दूसरे के साथ एक ऐसा संबंध स्थापित करने की योग्यता विकसित करते हैं जिसकी प्रकृति रचनात्मक हो। मनुष्य की अनिवार्य जरूरत समूह अनुभव होती है। सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया के निर्माण में सामाजिक समूह सहायता करता है। लोकतांत्रिक मूल्यों तथा विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समूह के सदस्य समूह प्रक्रिया में भागीदारी हेतु संगठन, समन्वय, सहयोग, पारस्परिक निर्भरता इत्यादि के साथ काम करना सीखते हैं। समूह कार्य समूह द्वारा नियोजित लक्ष्योंकी प्राप्ति एवं उसकी दिशा में अग्रसर होने के लिए समूह के सदस्यों को दिशा-निर्देश प्रदान तो करता ही है साथ ही साथ यह सदस्यों को सिखाता है कि वे समूह कार्य के दौरान अपनी व्यक्तिगत पसंद-नापसंद, आकांक्षाएं, मान्यताएँ, अहं एवं पूर्वाग्रहों को इनसे दूर रखें तथा निष्पक्ष ढंग से समूह में कार्य करें।

सीखने का यह अवसर सामाजिक परिवर्तन के लिए व्यक्ति को तैयार करना है। साथ ही अगर कोई आंदोलन विफल हो जाता है तो उसकी विफलता के कारण एवं आंतरिक विवादोंकी वजह को समझकर उसे न्यूनतम करने की कोशिश करता है। सामाजिक समूह कार्य की प्रक्रिया को लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए समूह के सदस्यों के बीच से नेतृत्वकर्ता एवं नेतृत्व के गुणों की भी खोज की जाती है और ये नेतृत्वकर्ता ही बाद में सामाजिक क्रिया के दौरान जन-समूह संचालन तथा लक्षित गतिविधियों का उत्तरदायित्व हाथ में लेते हैं। ये समस्त शिक्षा समाज कार्य की प्रक्रिया को बहुत उपयोगी बनाती है जब इसका उद्देश्य समुदाय को सामाजिक रूप से संचालित करना होता है। इसके अतिरिक्त समूह कार्य सामाजिक क्रिया की प्रक्रिया के दौरान कार्यक्रमों का नियोजन एवं प्रबंधन बेहतर तरीके से करता है। साथ ही समूह कार्य सामाजिक कार्यकर्ता की सहायता साझे लक्ष्यों हेतु काम करने वाले विभिन्न व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार करने व्यक्तित्व टकरावों तथा समूह के अंदर के विवादों को समाधान करने, उसके अंदर के कौशलों को ज्यादा

प्रभावपूर्ण बनाने में करता है। जब समुदाय के सभी लोग एक साझे सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं तब एक समूह के साथ अन्य समूहों को जोड़ने एवं उसका प्रबंधन करने में समूह कार्य सहायता करता है।

सामाजिक क्रिया और सामुदायिक संगठन के मध्य अगर हम परस्पर संबंध को देखते हैं तो हम पाते है कि सामाजिक क्रिया तथा सामुदायिक संगठन में अनेक समानताएं है। सामुदायिक संगठन को कुछ विद्वान सामाजिक क्रिया का अभिन्न अंग मानते हैं तो कुछ सामाजिक कार्यकर्ता भी सामाजिक क्रिया को सामुदायिक संगठन का ही एक मॉडल मानते हैं और इस विवाद के पीछे का कारण सिर्फ यही है कि दोनों का संबंध 'समुदाय' शब्द से जुड़ा है। सामुदायिक संगठन सामाजिक क्रिया की रीढ़ होता है।

सामुदायिक संगठन और सामाजिक क्रिया के बीच सेतु का काम लोग, समुदाय अथवा लक्षित जनसंख्या करती है। सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक क्रिया की दोनों विधियों में लोगों द्वारा अपनी समस्याएँ अथवा आवश्यकताएँ महसूस करने तथा अपनी आनुभाविक आवश्यकताओं के हल तलाशने की कोशिश की जाती है। इसके तहत एक ऐसे पर्यावरण का निर्माण किया जाता है जिसमें लोगों को यह विश्वास एवं भरोसा होता है कि वे एक साथ मिलकर अपनी आवश्यकताओं एवं समस्याओं का समाधान कर सकेंगे। सामाजिक क्रिया के तहत सामुदायिक संगठन इस प्रकार से किया जाता है कि जो समस्या लम्बे समय से चली आ रही है, उसको ऐसे केन्द्र बिन्दु पर लाकर खड़ा कर दिया जाता है जहाँ मौजूदा प्राधिकारियों से टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जब सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक क्रिया इन दोनों विधियों में लोगों की भागीदारी हो जाती है उस समय सामाजिक क्रिया की भूमिका बढ़ जाती है।

अब हम समाज कल्याण प्रशासन की समाज कार्य की एक विधि के रूप में संक्षिप्त में ही समझने की कोशिश करेगें। समाज कल्याण प्रशासन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक नीतियों को सामाजिक क्रिया में बदलने के लिए व्यावसायिक कुशलता, निपुणता तथा ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। प्रशासन के विभिन्न अवयव हैं, नियोजन, क्रियान्वयन, निर्देश, निगरानी, संगठन, सहयोग, तथा मूल्यांकन। इन विभिन्न अवयवों के माध्यम से ही सामाजिक कार्यकर्ता समाज के कमजोर वर्गों, अल्पसंख्यकों तथा वंचित समूहों के विकास तथा कल्याण के लिए सेवा प्रदान करता है। उदाहरण के तौर यदि कोई संस्था या एजेंसी बाल श्रम एवं बंधुआ मजदूरी उन्मूलन पर काम कर रही है तो इस व्यवस्था के उन्मूलन तथा उनके पुर्नवास के लिए सामाजिक कार्यकर्ता को सामाजिक क्रिया का सहारा लेना पड़ेगा। सामाजिक क्रिया में ऐसे कौशल भी बहुत उपयोगी हो जाते हैं जो प्रशासक के रूप में सीखे जाते हैं

यहि हम शुरूआती दौर से ही सजग होकर नियोजन करते हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि हमने आधी लड़ाई ऐसे ही जीत ली। सामाजिक क्रिया के लिए वर्तमान समय में कुछ नयी तकनीके जैसे समस्या विश्लेषण, स्वॉट विश्लेषण, संबंधित पक्षों का विश्लेषण, विकल्पों की रचनात्मक खोज इत्यादि इस्तेमाल की जाती है। सामाजिक क्रिया की सफलता को सुनिश्चित करने में प्रबंधकीय कौशल अनिवार्य होते है क्योंकि सही काम के लिए सही व्यक्ति को लगाना, विवादों का प्रबंधन करना, शक्ति तथा प्राधिकारों का उचित इस्तेमाल, प्रशिक्षण इत्यादि एक प्रबंधक ही कर सकता है क्योंकि उसके पास ये सभी गुण एवं तत्व मौजूद होते है। प्रबंधकीय या प्रशासकीय कौशल सामाजिक क्रिया के लक्ष्य तक पहुँचने में हमारी भरपूर सहायता करते हैं।

अब हम समाज कार्य शोध एवं सामाजिक क्रिया के बीच के संबंध को समझेगें। समाज कार्य शोध द्वारा सामाजिक समस्याओं का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। समाज कार्य शोध का उद्देश्य उस ज्ञान का उत्पादन या पुनरूत्पादन करना होता है जिसका उपयोग नियोजन तथा सामाजिक क्रिया सहित समाज कार्य के कार्यक्रमों के संचालन हेतु किया जाता है। समाज कार्य शोध द्वारा सामाजिक समस्या एवं उसकी गहनता एवं व्यापकता, सामाजिक

समस्या के आकस्मिक कारकों, लक्षित समूह या जनसंख्या पर इसका प्रभाव, लोगों के सामाजिक आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को भी समझने में सहायता मिलती है यही कारण है कि सामाजिक क्रिया के जरिए लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक समस्याओं का व्यवस्थित अध्ययन करना पड़ता है तथा समाज कार्य मध्यस्थता के माध्यम से उपचार को ढूँढ़ना भी अनिवार्य हो जाता है। समाज कार्य शोध के अभाव में सामाजिक नियोजन एवं सामाजिक क्रिया निष्प्रभावी हो सकती है। समाज कार्य शोध के माध्यम से समुदाय की आवश्यकताओं का संतोषजनक आकलन किया जाता है, सामाजिक मध्यस्थताओं एवं कार्यक्रमों कोअत्यंत प्रभावी, अर्थपूर्ण एवं उपयोगी बनाया जा सकता है। सामाजिक कार्यकर्ता समाज कार्य शोध के निष्कर्षों को समूह के माध्यम से समुदाय के लोगों के साथ साझा करता है तब जाकर जनभागीदारी के माध्यम से सामाजिक क्रिया हेतु स्पष्ट तथा लाभदायी कार्यक्रमों को तैयार किया जाता है। सामाजिक कार्यकर्ता या क्रियावादी को समाज कार्य शोध के माध्यम से सामाजिक समस्या की सही तस्वीर प्राप्त होती है जो सामाजिक क्रिया के लक्ष्यों की प्राप्ति एवं सामाजिक क्रिया की सफलता के लिए अनिवार्य होती है।

4.7 सामाजिक आंदोलन के साथ संबंध

अगर हम भारतीय इतिहास पर गौर करे तो हम यह समझ सकते हैं कि भारत में सामाजिक आंदोलन की एक समृद्ध परम्परा रही है। आंदोलन अपने लक्ष्य के साथ-साथ प्रक्रिया की दृष्टि से सामाजिक क्रिया से बहुत समान है। आंदोलन के माध्यम से समाज के वंचितों एवं शोषितों ने अपने अधिकारों के उल्लंघन के विरूद्ध अपनी आवाज को उठाने की कोशिश की है क्योंकि राज्य, सरकार या शासन, इन उपेक्षित एवं वंचितों के जीवन तथा अधिकारों की रक्षा करने में असफल रहा है। ब्लूमर ने सामाजिक आंदोलन की परिभाषा ‘जीवन की एक नयी व्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से एक सामूहिक उद्यम के दावे’ के रूप में दी है। इस परिभाषा को अगर हम देखें तो स्पष्ट होता है कि सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक आंदोलन दोनों कालक्ष्य एक जैसा ही है। दोनों ही समानता और सामाजिक न्याय हेतु वर्तमान व्यवस्था में एवं उसकी संरचना में बदलाव लाने की कोशिश करते है। सामाजिक क्रियाएवं सामाजिक आंदोलन दोनों की प्रक्रियाएँ निष्पक्ष, समता एवं सामाजिक न्याय पर आधारित समाज के दलित उपेक्षित वंचित एवं शोषित वर्गों के लोगों को अधिकार दिलाने पर केन्द्रित हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं कामुख्य पहलू जन समूह का संचालन है। कृषक आंदोलन, जनजातीय आंदोलन, दलित आंदोलन, पिछड़ी जाति का आंदोलन, महिलाओं के आंदोलन, श्रमिक वर्ग के आंदोलन, छात्र आंदोलन, मध्यम वर्ग के आंदोलन, मानव अधिकार और पर्यावरणात्मक आंदोलन तथा ऐसे ही कुछ उदाहरण सामाजिक आंदोलन के उदाहरण है।

अगर हम कुछ प्रमुख सामाजिक आंदोलनो को देखें तोप्राचीन काल में बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म के आंदोलनों को देखा जा सकता है जब महावीर तथा बुद्ध ने अपने उपदेशोंमें उस समय समाज में उपस्थित सामाजिक बुराईयों की निंदा की। मध्यकाल में कबीर तथा नानक ने भी महावीर तथा बुद्ध की तरह कार्य किया तथा समाज में व्याप्त सामाजिक बुराईयों की निंदा की। आधुनिक काल में समाज सुधार आंदोलन का प्रारंभ भारत में राजाराम मोहन राय द्वारा किया गया। राजाराम मोहन राय ने महिलाओं की आवाज को उठाने के लिए सती प्रथा उन्मूलन जैसे कार्यक्रम चलाये तथा 1829 में सती प्रथा निषेध अधिनियम भी बनवाया। साथ ही आधुनिक समाज सुधार आंदोलन के दौरान विधवा पुनर्विवाह, महिला शिक्षा, जाति-भेदभाव, अस्पृश्यता, जाति आधारित व्यवसाय से जुड़ना आदि अनेक ऐसी कुरीतियों पर ध्यान दिया गया। धीरे-धीरे सामाजिक सुधार आंदोलनों का विलय भारत के स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन में किया जाने लगा। भारत के स्वतंत्र होने के बाद भी अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओं नेजनसंख्या के सुविधा विहीन वर्गों के अन्याय और शोषण से संबंधित अनेक मुद्दे उठाए और आंदोलन चलाए। मानव-प्रकृति के आपसी संबंध पर्यावरणीय आंदोलनों के केन्द्र रहे हैं। गुहा और गाड़गिल ने पर्यावरणीय आंदोलन को परिभाषित करते हुए लिखा है

कि ये संगठित सामाजिक क्रिया- कलाप है जो सजगभाव से प्राकृतिक संसाधनों के संपोषक उपयोग को बढ़ाने, पर्यावरणीय क्षय रोकने और पर्यावरण का पुनरूद्धार करने के लिए किए जाते हैं। पश्चिम में पर्यावरणीय आंदोलन प्राकृतिक संसाधनों के उत्पादक उपयोग और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण या बचाव पर जोर देते हैं। भारत में यह आंदोलन उपयोग और वैकल्पिक प्रयोग के साथ-साथ नियंत्रण पर आधारित है। 1968 में टिहरी गढ़वाल (वर्तमान उत्तराखण्ड एवं उस समय के उत्तर प्रदेश) में चिपको आंदोलन को भारत के पहले पर्यावरणीय आंदोलन के रूप में देखा जाता है। उस समय उस क्षेत्र में वनों की अंधाधुध कटाई का मुद्दा था। सरकार ने वहाँ के गरीब निवासियों की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया तथा उनके प्रति उदासीन रवैया अपनाए रखा। वनोत्पाद पर उनकी आर्थिक निर्भरता थी उनके लिए कोई उपाय नहीं किए गए। निजी ठेकेदार, लकड़ी व्यवसायी तथा वन आधारित उद्योगों के मालिक दशकों तक वनों का शोषण करते रहे। वनों की इस अंधाधुंध कटाई के कारण 1970 ई. में. अलकनंदा नदी में बाढ़ आ गयी जिससे फसले संपत्ति इत्यादि के साथ –साथ लोगों के मकान तक बह गए। जिसके कारण वहाँ की महिलाओं ने ठेकेदारों, लकड़ी व्यवसायियों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया जिनमें महिलाओं ने पेड़ों से चिपककर 'चिपको आंदोलन' शुरू किया तथा नारा दिया कि 'मेरे पेड़ से पहले मुझे काटो' तथा बड़ी संख्या में पेड़ों को बचाया गया। उत्तराखण्ड में 2013 में में आयी बाढ़ की त्रासदी का भी कारण कहीं न कहीं विकास के नाम पर पर्यावरण के साथ-साथ छेड़-छाड़ करना रहा है। इसके अतिरिक्त भारत में अन्य उल्लेखनीय सामाजिक आंदोलन रहे है जिनका संबंध सामाजिक क्रिया के साथ-साथ पर्यावरणीय आंदोलन से रहा है। जिनके अंतर्गत केरल में मछुआरों का आंदोलन, सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन इत्यादि।

इसके अतिरिक्त मेधा पाटेकर द्वारा गुजरात में नर्मदा नदी पर बाँध बनाए जाने से प्रभावित ग्रामीणों के साथ खड़े होने की पहल नर्मदा बचाओ आंदोलन के रूप में सामने आई। नर्मदा बचाव आंदोलन को योजना के खिलाफ कार्य करने की तत्परता के कारण कुछ सीमा तक एक आंदोलन के रूप में अपने लक्ष्य को निश्चित करते समय गांधीवादी सिद्धांतों पर आधारित एक वैकल्पिक राजनीतिक संस्कृति की रचना के साथ समझौता करना पड़ा। विरोधाभास और फलदायक संयोजन इसकी समूह जटिलता होते हुए भी घाटी में संघर्ष को ऐसे नगरीयकृत बुद्धिजीवियों द्वारा सर्वथा अलग ढंग से समझा और उचित मानागया जो आंदोलन के प्रतिनिधित्व के रूप में चिन्तित थे। इस आंदोलन के भद्दे हिस्से को उनके द्वारा दूर किया गया। उदाहरणार्थ पट्टीदारों की उपस्थिति या पारिस्थितिकीय संपोषकता की अनुपस्थिति। यह प्रदर्शित करने के लिए कि आंदोलन विकासीय राज के लिए सैद्धांतिक दृष्टि से संतोषजनक चुनौती होता है।

पर्यावरणीय आन्दोलन जंगल, खेती, औद्योगिक प्रदूषण, परमाणु परीक्षण,पर्यटन आदि जैसे ग्रामीण और नगरीय दोनों क्षेत्रों से जुड़े अनेक मुद्दों को उठाते हैं। कई ऐसे गैरसरकारी संगठन हैं जो पर्यावरणीय पतन और जोखिमों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन करते हैं। राजनीतिक अधिकारियों और उद्योगपतियों, नियोजकों आदि जैसे प्रभु समूहों पर दबाव डालने के अतिरिक्त ये संगठन पर्यावरण के मुद्दों पर लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए अभियान भी चलाते हैं।

इन सबके अतिरिक्त अगर हम सामाजिक आंदोलन और सामाजिक क्रिया के बीच अन्तर स्थापित करते हैं तो हमें इनके बीच अन्तर दिखाई पड़ता है। विलकिंसन ने सामाजिक आन्दोलन और सामाजिक क्रिया के बीच अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा कि सामाजिक आन्दोलन किसी भी दिशा में किसी भी तरीके से परिर्वतन को प्रोत्साहित करने का एक संकल्पित सामूहिक प्रयास होता है, जिसमें हिंसा, अवैधता, क्रान्ति अथवा आदर्श शामिल हो सकता है। जबकि सामाजिक क्रिया में किसी भी अवैध हिंसक उपाय को उसकी रणनीतियों में शामिल करने से बिल्कुल मना

किया जाता है। इस तथ्य के बावजूद सामाजिक क्रिया, सामाजिक व्यवस्था या संरचना के मौजूदा संयोजन के साथ अथवा कार्यप्रणाली के साथ टकराव करती है। यह हिंसा और रक्तपात को निरस्त करती है। विरोध व असंतोष की अभिव्यक्ति के लिए शांतिपूर्ण उपाय अपनाए जाते हैं। पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ता एक नेता की बजाय एक साहूकार की भूमिका निभाता है और समाज कार्य के मूल्यों, नैतिकताओं तथा सिद्धान्तोंमें दृढ़ विश्वास दिखाता है। इसके विपरीत सामाजिक आन्दोलन अक्सर स्थानीय नेताओं द्वारा चलाया जाता है जो लक्ष्यकी प्राप्ति के लिए अपने आन्दोलन को हिंसक और गैरकानूनी गतिविधियों के मार्ग पर ले जा सकतेहैं और नहीं भी। विचारधारा की लड़ाई में निजी अहं छद्म रूप में टकराते हैं जिससे सामाजिक आन्दोलन को क्षति पहुँच सकती है, जैसा कि हमने चिपको आन्दोलन के मामले में इसके दो नेताओं सुंदरलाल बहुगुणा और चंडी प्रसाद भट्ट के बीच देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्ना का भष्टाचार आंदोलन भी इसका उदाहरण हैं। इसमें अरविंद केजरीवाल, प्रशांत भूषण का गुट अलग हो गया, किरन बेदी का गुट अलग और स्वयं अन्ना हजारे इसमें अलग थलग पड़ गये। सामाजिक कार्यकर्ता के पास जनता को संचालित करने और धारणीयता बनाए रखने की विशेषज्ञता होतीहै जो सामाजिक आन्दोलन के नेताओं जो प्राय: समाज कार्य व्यवसाय से इतर होते हैं, के पास नहीं होती।

4.8 सारांश

इस इकाई में हमें सामाजिक क्रिया का ज्ञान समाज कार्य की विधि या तरीके के रूप में हुआ। सामाजिक क्रिया का उद्देश्य समुदाय, विशेषतया समाज के वंचित वर्गों के लिए सामाजिक न्याय और उनको उनके अधिकार दिलाना है। सामाजिक क्रिया सामाजिक न्याय एवं समानता के सिद्धांत पर टिकी होती है और इसका लक्ष्यसमाज के वंचित एवं उपेक्षित वर्गों के हितों की रक्षा करना है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में सामाजिक क्रिया के विभिन्न सिद्धांतों को उदाहरण सहित समझाया गया है।

समाज कार्य की एक विधि होने के कारण सामाजिक क्रिया का समाज कार्य की अन्य विधियों के साथ समानताओं का वर्णन किया गया है। साथ ही सामाजिकक्रिया की प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाओं में इनविधियों का प्रयोग कैसे किया जाता है? यह भी समझाने की कोशिश की गई है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य तथा समूह कार्य को सामाजिक क्रिया का आधार माना जाता है क्योंकि प्राधिकारियों से टकराव के लिए लोगों को संचालित करने में इसकी सहायता ली जाती है। सामाजिक क्रिया का समाज कार्य की अन्य प्रणालियों के साथ क्या संबंध है इसे भी समझाया गया है। सामाजिक क्रिया की सामाजिक आन्दोलनों के साथ क्या समानताएँ व असमानताएँ है इसकी भी व्याख्या की गई है। समाज कार्य अभ्यास की एक विधि के रूप में यह इकाई सामाजिक क्रिया की एक विस्तृत तस्वीर प्रस्तुत करती है।

4.9 बोध प्रश्न

1. सामाजिक क्रिया समाज कार्य की एक विधि के रूप में कार्य करती हैं। समझाइए।
2. सामाजिक क्रिया के मूल्य तथा उसके सिद्धांतों कोस्पष्ट कीजिए।
3. सामाजिक क्रिया एवं सामुदायिक संगठन के अंतर संबंध कोस्पष्ट करें।
4. सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक आंदोलन के बीच समानताओं एवं असमानताओं कोस्पष्ट करें।

4.10 सन्दर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

1. अहमद, मिर्जा रफीउद्दीन (1967):*समाज कार्य दर्शन एवं प्रणालियाँ* लखनऊ : ब्रिटिश बुक डिपो

2. दोषी एस.एल. एवं त्रिवेदी एम.एस.(2013): *उच्चतर समाज शास्त्रीय सिद्धांत* जयपुर: रावत पब्लिकेशन
3. सिंह, सुरेन्द्र एवं मिश्र पी.डी. (2010): *समाज कार्य इतिहास दर्शन एवं प्रणालियाँ* लखनऊ : न्यू रॉयल बुक कंपनी।
4. सिंह, ए.एन. एवं सिंह ए.पी.(2007) :*समाज कार्य* लखनऊ : रैपिड बुक सर्विस।
5. गुप्ता, एम एल. एवं शर्मा,डी डी.(1998):*समाजशास्त्र* आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन
6. इग्नू ,एम एस डब्ल्यू 003 *सामुदायिक विकास के लिए समुदाय संगठन का प्रबंधन*नई दिल्ली :इग्नू
7. Siddiqui, H.Y. (1984): *Social Work and social Action* New Delhi: Harnam Publication.
8. Arthur, Hillman (1954): *Community organization and Planning* New York : Macmillan Company.
9. Moorthy, M.V. (1966): *Social Action* Mumbai : Asia Publishing House.
10. Samuel John (2000) : Social Action : An Indian Panorama New Delhi: Voluntary Action *Network India.*
11. Singh, Surendra (1986): Horizons of Social Work (Edited) By Surendra Sing and K.S. Soodan. Lucknow: Jyotsana Publication
12. Davis, Martin (2000) :*The Blackwell Encyclopedia of Social Work (Edited)* Massachusetts : Blackwell Publication.
13. Friedlander, Walter. A. (1977): *Introduction to Social Welfare* New Jersey: Prentice Hall.
14. Foran, J. (2003): *The Future of Revolutions* London : Zed Books.
15. D. Paul Chowdhry (1964): *Introduction to Social work History Concepts methods And Fields* Delhi : Atma Ram and Sons.
16. Pathak S.H. (1971) : *Social Welfare and Family Planning* New Delhi :Planning Commission GoI
17. Ogburn & Nimkoff (1957): *A Hand Book of Sociology* Landon : Rutledge and Kegan pall Limited.
18. Aptheker Herber (1941*): Basic Concepts in Social Work* North Carolina : Press Chappel Hill.